Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०३१८८

जे० कृष्णमूर्ति

गरुड़ की उड़ान

R
021
136

कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

103/88

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
6C9
936

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............ आगत संख्या..1.0.3188

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुड़ की उड़ान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन्दन, एम्स्टरडम, पेरिस तथा सानन (स्विट्ज़रलैंड)
में हुई वार्ताओं एवं परिचर्चाओं का प्रामाणिक विवरण

उड़ान भरता हुआ गरुड़ अपने पीछे कोई चिह्न नहीं छोड़ता, परन्तु वैज्ञानिक अपने हर प्रयास के पीछे एक चिह्न छोड़ जाता है। स्वतन्त्रता और मुक्ति के प्रश्न की छानबीन करने के लिए न केवल वैज्ञानिक जैसा अवलोकन होना चाहिए बल्कि गरुड़ जैसी उड़ान भी होनी चाहिए—गरुड़ जो अपने पीछे कोई चिह्न नहीं छोड़ता!

जे० कृष्णमूर्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
DONATION

गरुड़ की उड़ान

KRISHNAMURTI FOUNDATION INDIA
UTTARKASHI EDUCATION CENTRE
BOOK DISTRIBUTION UNIT
2nd Floor Munilal Vohra Bldg
Near State Bank of India
Chitra Cinema Street
Haridwar-249401

लेखक
जे. कृष्णमूर्ति

103189

अनुवादक
सुन्दरलाल मल्हारा

जे. कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद्
कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया
राजघाट, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुड़ की उड़ान

प्रकाशक

कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया

राजघाट शिक्षा संस्थान

राजघाट फ़ोर्ट, वाराणसी - 221 001

© कृष्णमूर्ति फ़ाउंडेशन इंडिया

द्वितीय संस्करण : 1992

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी - 221 001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

वार्ताएँ एवं प्रश्न

खंड 1

1. **स्वतंत्रता** 1
   विचार, सुख और दुःख ।
2. **विखंडन** 17
   विभाजन—चेतन तथा अचेतन मन, 'ज्ञात' के प्रति मरना ।
3. **ध्यान** 31
   खोज का अर्थ : अभ्यास और नियंत्रण में निहित समस्याएँ, मौन की गुणवत्ता ।

खंड 2

4. **क्या मानव बदल सकता है ?** 46
   ऊर्जा, द्वंद्व में इसका अपव्यय ।
5. **हम शान्ति की अवस्था में क्यों नहीं जी सकते ?** 60
   भय, यह कैसे पैदा होता है, समय और विचार—अवधान : सजग रहना ।
6. **जीवन की अखंडता** 74
   समझने की प्रयोजन-रहित उत्कटता ।

खंड 3

7. **भय** 88
   प्रतिरोध, ऊर्जा एवं अवधान ।
8. **परात्पर** 97
   यथार्थता में प्रवेश : ध्यान की परम्परा, यथार्थता और निश्चल मन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संवाद

खंड 4

9. हिंसा 108

हिंसा क्या है ? मानसिक हिंसा की जड़ों पर आरोपण—अवलोकन की आवश्यकता ।

10. आमूल परिवर्तन 127

वह उपकरण क्या है जो देखता है ?

11. देखने की कला 139

समय के अन्तराल से मुक्त सजगता : बाघ के द्वारा बाघ का पीछा ।

12. अज्ञात में प्रवेश 154

दमन, निश्चलता से उत्पन्न कर्म, स्वयं के भीतर यात्रा, झूठी यात्राएँ एवं प्रक्षेपित 'अज्ञात' ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुड़ की उड़ान

जे० कृष्णमूर्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1

स्वतंत्रता
विचार, सुख और दुःख

हममें से अधिकांश व्यक्तियों के लिए स्वतंत्रता एक विचार मात्र है, न कि वास्तविकता। जब कभी हम इसके सम्बन्ध में चर्चा करते हैं तो हमारा मतलब बहुधा बाह्य स्वतंत्रता से होता है, जिसका अर्थ है अपनी इच्छानुसार कुछ कार्य करना, यात्रा करना, स्वयं को विभिन्न ढंग से अभिव्यक्त करना अथवा अपनी इच्छानुसार सोचना। स्वतंत्रता की इस बाह्य अभिव्यक्ति का महत्त्व विशेषकर उन देशों में अत्यधिक है जहाँ तानाशाही या निरंकुश शासन-प्रणालियाँ हैं। इसके विपरीत, जिन देशों में यह बाह्य स्वतंत्रता सुलभ है वहाँ व्यक्ति अधिकाधिक सुख व अधिकाधिक स्वामित्व के पीछे भाग रहा है।

अगर हम इस पर गहराई से सोचना चाहें कि स्वतंत्रता वस्तुतः क्या है—पूरी तरह से, आंतरिक रूप में स्वतंत्र होना क्या है—ऐसी स्वतंत्रता क्या है जो अपने-आपको बाह्य रूप से पूरी तरह से समाज में तथा परस्पर सम्बन्धों में प्रकट करती है—तो, मुझे लगता है कि हमें यह पूछना पड़ेगा कि इन भारी संस्कारों से लदा हुआ मानव-मन क्या सच ही पूर्णरूपेण स्वतंत्र हो भी सकता है ? क्या इसे हमेशा अपने ही संस्कारों की सीमाओं के अंदर ही रहना और काम करना होगा ताकि तनिक भी स्वतंत्रता की संभावना ही न रह जाय ? ऐसा लगता है कि मन, यह जानते हुए कि इस पृथ्वी पर आंतरिक या बाह्य स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं है, वह किसी दूसरी दुनिया में स्वतंत्रता का आविष्कार करने लगता है, एक भावी मुक्ति, स्वर्ग-लोक आदि का आविष्कार करने लगता है।

पहले आप स्वतंत्रता अथवा मुक्ति के सम्बन्ध में अपनी सारी सैद्धान्तिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वैचारिक धारणाओं को एक ओर रख दें ताकि हम इसकी छानबीन कर सकें कि क्या हमारा मन, आपका मन और मेरा मन, कभी वस्तुतः मुक्त हो सकता है या नहीं। भय से, चिन्ता से, निर्भरता से और अनगिनत समस्याओं से, चेतन और गहरे अचेतन, दोनों स्तरों पर मुक्त हो सकता है ? क्या ऐसी पूर्ण मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता संभव है ताकि मानव-मन किसी ऐसी वस्तु को पा सके जो कालबद्ध नहीं हो, जो विचार के द्वारा निर्मित नहीं हो, फिर भी जो दैनन्दिन जीवन के यथार्थ से पलायन नहीं हो ?

जब तक मानव-मन आंतरिक रूप से, मनोवैज्ञानिक रूप से, पूर्णतया मुक्त नहीं होता, तब तक उसके लिए यह संभव नहीं कि वह देख सके कि सत्य क्या है, यह देख सके कि क्या कोई ऐसा यथार्थ है जिसका जन्म भय से नहीं हुआ हो और जो हमारी संस्कृति एवं समाज द्वारा निर्मित नहीं हो और जो रोज़मर्रा जीवन की एकरसता, ऊब, अकेलेपन, निराशा और चिन्ता से पलायन नहीं हो। यह जानने के लिए कि क्या सचमुच ऐसी स्वतंत्रता है, हमें अपने संस्कारों, अपनी समस्याओं, अपने दैनंदिन जीवन के नीरस छिछलेपन, खालीपन, अभाव और सबसे बढ़कर अपने भय के प्रति सजग होना पड़ेगा। हमें अपने प्रति अंतर्निरीक्षण या आत्मविश्लेषण के द्वारा नहीं, बल्कि अपने प्रति यथार्थ रूप से सजग होना पड़ेगा। उसके प्रति सजग होना पड़ेगा जैसा कि 'हम हैं', और यह भी देखना पड़ेगा कि क्या हम उन सारी चीजों से पूरी तरह मुक्त हो सकते हैं जिन्होंने हमारे मन को जकड़ रखा है ?

किसी चीज की जाँच-पड़ताल करने के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है, अंत में नहीं बल्कि शुरू से ही। बिना स्वतंत्रता के कोई गहराई में प्रवेश नहीं कर सकता; खोज अथवा परीक्षण नहीं कर सकता। गहरे अवलोकन के लिए स्वतंत्रता के साथ अनुशासन भी आवश्यक है क्योंकि स्वतंत्रता व अनुशासन साथ-साथ चलते हैं। ऐसा नहीं कि स्वतंत्र होने के लिए किसी को पहले अनुशासित होना चाहिए। 'अनुशासन' का हम यहाँ 'सीखने' के अर्थ में प्रयोग करेंगे न कि इसके परम्परागत अर्थ में, जिसके अनुसार इसका अर्थ है—अनुसरण, अनुकरण, दमन तथा किसी निश्चित मार्ग का अवलम्बन। 'सीखना' और 'स्वतंत्रता' दोनों साथ-साथ चलते हैं। अनुशासन थोपा नहीं जा सकता, अपितु स्वतंत्रता स्वयं अपना अनुशासन लाती है। ये दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीजें—स्वतंत्रता और सीखने की क्रिया—अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । यदि कोई स्वतंत्र नहीं है तो वह अपने बारे में नहीं सीख सकता, जिसका अर्थ है बिना किसी निश्चित सिद्धांत, ढाँचे व नियम के 'जो है' उसका अवलोकन करना । इस प्रकार का अवलोकन अथवा निरीक्षण ही एक ऐसे अनुशासन को जन्म देता है, जिसमें अनुरूपता, अनुकरण, अथवा दमन नहीं है—और इसी में है अद्‌भुत सौन्दर्य ।

यह एक वास्तविकता है कि हमारा मन संस्कारों से बोझिल है, फिर चाहे वे संस्कार किसी संस्कृति अथवा समाज से सम्बन्धित हों या अनेक प्रभावों अथवा हमारे आपसी सम्बन्धों के दबावों या तनावों के परिणाम हों या फिर वे हमारी आर्थिक, भौगोलिक, शैक्षणिक व धार्मिक मान्यताओं के कारण हों । हमारे मन को इस प्रकार प्रशिक्षित किया गया है कि वह भय को स्वीकार करे और अगर सम्भव हो तो उससे पलायन करे, बजाय इसके कि भय के स्वरूप और उसकी संरचना को समझकर उससे मुक्त हो । अतः सर्वप्रथम प्रश्न यह है कि क्या हमारा मन, जो इतनी बुरी तरह से बोझिल है—केवल संस्कारों से ही नहीं, अपितु भय से भी—पूरी तरह संस्कारों और भय से—मुक्त हो सकता है ? क्योंकि भय के कारण ही मनुष्य संस्कारों को स्वीकार करता है ।

आप कृपया इन ढेर सारे शब्दों और विचारों को, जिनका सचमुच कुछ भी मूल्य नहीं है, केवल सुनकर ही न रह जायें, अपितु इस सुनने तथा अवलोकन की क्रिया के माध्यम से आप अपने मन की अवस्थाओं का निरीक्षण भी करें और पूछें कि क्या यह कभी स्वतंत्र हो सकता है ? परन्तु वहाँ न भय का स्वीकार हो, न उससे पलायन हो और न साहस व विरोध के प्रयास हों । वहाँ तो बस पूर्ण सजगता हो, उस भय के प्रति जिसमें मन फँसा है । जब तक व्यक्ति भय से पूर्णतया मुक्त नहीं हो जाता, तब तक यह निश्चित है कि वह स्पष्टता तथा गहराई से देख नहीं सकता, और जब तक भय है, तब तक प्रेम का आगमन सम्भव नहीं ।

अतः क्या मन कभी सचमुच भय से मुक्त हो सकता है ? मेरी दृष्टि में प्रत्येक गम्भीर व्यक्ति के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में से एक है, जो अवश्य पूछा जाना चाहिए और जिसका समाधान होना चाहिए । भय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक भी हो सकता है और शारीरिक भी । शारीरिक भय का सम्बन्ध दैहिक पीड़ा से है जब कि मानसिक भय के अनेक रूप हैं—अतीत के दुःखों की स्मृति तथा भविष्य में उन्हीं की पुनरावृत्ति की सम्भावना का भय, वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय, भौतिक असुरक्षा, आनेवाले कल की अनिश्चितता, असफलता तथा निराशा का भय, सामाजिक अपमान, नुकसान तथा अकेलेपन का भय, प्रेम न कर सकने या प्रेम न पाने का भय तथा इस प्रकार के अन्य चेतन व अचेतन मन के ढेर सारे भय । अब प्रश्न यह है कि क्या हमारा मन इन समस्त भयों से पूर्ण रूप से मुक्त हो सकता है ? यदि मन कहता है कि यह सम्भव नहीं है तो इसका अर्थ यह हुआ कि इसने पहले से ही स्वयं को असमर्थ तथा विकृत बना लिया है और ऐसा मन प्रत्यक्ष बोध और समझ के लिए अक्षम तथा शांति और मौन के लिए असमर्थ हो जाता है । ऐसा मन अँधेरे में भटकता हुआ प्रकाश की खोज कर रहा है, जिसे वह कभी पा नहीं सकता और इसीलिए वह शब्दों, सिद्धान्तों व धारणाओं के प्रकाश का आविष्कार किये जा रहा है । ऐसा मन, जो इतनी बुरी तरह से भय के बन्धनों में फँसा है क्या कभी स्वतन्त्र हो सकता है ? अथवा इस भय को एक अनिवार्य वस्तु समझकर मनुष्य इसे स्वीकार कर ले जैसा कि हममें से अधिकांश व्यक्ति करते हैं और इसीके साथ जीते हैं । इस सम्बन्ध में हम क्या करें ? कैसे हम एक मनुष्य के नाते इस भय से मुक्त हों—किसी भयविशेष से ही नहीं अपितु भयमात्र से मुक्त हों ?

भय क्या है ? (मेरा सुझाव है कि मैं जो कह रहा हूँ उसे आप स्वीकार न करें क्योंकि मैं इस विषय का विशेषज्ञ या शिक्षक या गुरु नहीं हूँ । यदि मैं गुरु हूँ तो आप मेरे अनुयायी होंगे और एक बार आप अनुयायी बने कि आप स्वयं को व मुझे भी ले डूबेंगे) । हम अपनी पूरी शक्ति से यह खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं कि क्या हम भय को पूर्ण रूप से समझ सकते हैं ताकि हमारा मन कभी भयभीत नहीं हो और वह सभी निर्भरता से आन्तरिक व मानसिक रूप से पूर्णतया मुक्त हो जाय । स्वतंत्रता का सौन्दर्य इसीमें है कि वह पीछे कोई निशान न छोड़े । गरुड़ अपनी उड़ान में कोई भी चिह्न नहीं छोड़ता, जब कि वैज्ञानिक छोड़ता है । स्वतंत्रता के प्रश्न को गहराई से समझने के लिए दोनों जरूरी हैं—एक ओर वैज्ञानिक अवलोकन और दूसरी ओर गरुड़ की उड़ान—एक ऐसी उड़ान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अपने पीछे कोई निशान न छोड़े । इस खोज में शाब्दिक व्याख्या की भी आवश्यकता है और शब्दातीत अनुभूति की भी, क्योंकि व्याख्या स्पष्टतः वह 'वस्तु' नहीं हैं जिसकी व्याख्या की गयी है । शब्द कभी वस्तु नहीं हो सकते ।

यदि यह सब कुछ पूर्णतया स्पष्ट है तो फिर हम आगे बढ़ें । अब हम यह मालूम कर सकते हैं—वक्ता या उसके शब्दों, विचारों या कल्पनाओं के माध्यम से नहीं बल्कि स्वयं के भीतर झाँककर कि क्या हमारा मन भय से पूर्ण रूप से मुक्त हो सकता है ।

वार्ता का यह प्रथम भाग कोई भूमिका नहीं है । यदि आपने इसे स्पष्टता से नहीं सुना और नहीं समझा तो आप दूसरे भाग की ओर नहीं बढ़ सकते ।

छानबीन करने के लिए अवलोकन की स्वतंत्रता आवश्यक है, जिसका अर्थ है पूर्वाग्रहों से, निष्कर्षों से, धारणाओं से, आदर्शों से मुक्ति—ताकि आप स्वयं ठीक-ठीक देख सकें कि यह भय क्या है । जब आप अत्यन्त निकटता से, गहरी आत्मीयता से देखते हैं तब क्या वहाँ भय विद्यमान रहता है ? दूसरे शब्दों में इसे यों कहें कि जब 'द्रष्टा' ही 'दृश्य' बन जाता है तभी आप निकटतापूर्वक और गहराईपूर्वक देख सकते हैं कि भय क्या चीज है ।

अब हम देखें कि भय क्या है । इसका जन्म कैसे होता है ? जहाँ तक शारीरिक भय का प्रश्न है वह आसानी से समझा जा सकता है, जैसे कि शारीरिक खतरे के उपस्थित होते ही उससे बचाव के लिये तत्काल प्रतिक्रिया होती है । ऐसे भय को समझना आसान है । अतः इस सम्बन्ध में अधिक छानबीन की आवश्यकता नहीं । परन्तु हमें यह देखना है कि यह मानसिक भय कैसे पैदा होता है ? उसका मूल कहाँ है ? और यही असली प्रश्न है । कल जो घटित हुआ, उससे हम भयभीत हैं तथा आज अथवा कल फिर वही घटित न हो जाय उससे भी हम भयभीत हैं । एक भय 'ज्ञात' का है और दूसरा है 'अज्ञात' का, भविष्य का । इस प्रकार कोई भी यह स्पष्ट रूप से देख सकता है कि भय का जन्म विचार के ढाँचे से होता है । कल जो घटित हुआ उसके बारे में या भविष्य में वही फिर घटेगा यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचकर मन भयभीत है। विचार ही भय को जन्म देता है। क्या यह सच नहीं है? वक्ता जो कह रहा है, उसे कृपया मान न लें। आप स्वयं इस सम्बन्ध में सोचें और स्पष्ट रूप से देखें कि क्या विचार ही भय का कारण नहीं है। उस दुःख—मानसिक दुःख—जिसे हमने कुछ समय पूर्व भोगा है, के बारे में सोचना कि कहीं वह फिर न आ जाय और इसके सम्बन्ध में सोचते रहना क्या भय को जन्म नहीं देता? जब तक हम इस प्रक्रिया को पूर्णतया नहीं समझ लेते तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते। उस घटना, अनुभव अथवा अवस्था के बारे में, जो परेशानी, खतरा, दुःख अथवा पीड़ा से सम्बन्धित है, का विचार करने का अर्थ है भय को आमंत्रित करना। विचार एक मनोवैज्ञानिक सुरक्षा का निर्माण करता है और वह नहीं चाहता कि इस पर आँच आये और ज्योंही इस पर आँच आती है तो खतरा उत्पन्न हो जाता है और जहाँ खतरा है, वहाँ भय है।

इस प्रकार हमने देखा कि विचार, भय का कारण है। यही विचार सुख का कारण भी है। आपने सुख का अनुभव किया। फिर आपका मन इसके बारे में सोचेगा और इसे कायम रखने का प्रयत्न करेगा और जब उसे कायम रखना सम्भव न होगा तब वह प्रतिरोध करेगा, क्रोध करेगा, निराश होगा, भयभीत होगा। अतः विचार भय और सुख दोनों का कारण है। क्या ऐसा नहीं है? यह कोई शाब्दिक निष्कर्ष अथवा भय से पीछा छुड़ाने का नुसखा नहीं है। दूसरे शब्दों में, जहाँ सुख है वहाँ दुःख और भय है, जो विचार द्वारा पैदा होते हैं। सुख और दुःख दोनों साथ-साथ चलते हैं। दोनों अविभाज्य हैं और विचार इन दोनों के लिए ज़िम्मेदार है। यदि कल न हो, भविष्य का कोई क्षण न हो, जिसके बारे में भय या सुख की भाषा में सोचा जा सके तब इन दोनों का कोई अस्तित्व ही नहीं होगा। क्या अब हम आगे बढ़ें? यह केवल कोई कल्पना नहीं है, यह वस्तुस्थिति है, जिसकी आपने स्वयं खोज की है और इसलिए आप अब कह सकते हैं—"मेरे देखे, विचार ही सुख और भय को जन्म देता है।" आपने काम-सुख का अनुभव किया, फिर आप अपनी कल्पना में, इसके बारे में सोचते हैं और इसी विचार-प्रक्रिया से आप उस सुख को और अधिक शक्ति प्रदान करते हैं, और फिर जब कोई आपसे वह सुख छीनता है तो आप चिन्तित, दुखी, भयभीत और परेशान हो जाते हैं। तब आप अत्यन्त ईर्ष्यालु,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रुद्ध व क्रूर हो जाते हैं । मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप सुख की चाह ही न करें ।

आनन्द कोई सुख नहीं है । यह विचारों से नहीं लाया जा सकता । यह तो पूर्णतया एक अलग ही वस्तु है । आप इसे तभी प्राप्त कर सकते हैं जब आप पूरी तरह विचार के स्वरूप को समझ लें, जो सुख और भय दोनों को जन्म देता है ।

अब प्रश्न यह उठता है : क्या कोई विचार को रोक सकता है ? यदि विचार भय, सुख और साथ ही दुःख को जन्म देता है तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है—क्या विचार समाप्त हो सकता है ? जिसका यह अर्थ नहीं कि सौन्दर्य-दृष्टि तथा सौन्दर्य का आनन्द ही समाप्त हो जाय । यह ऐसा ही है जैसे कि एक बादल, अथवा वृक्ष के सौन्दर्य को देखना, समग्रता से, परिपूर्णता से उस सौन्दर्य के आनन्द का अनुभव करना । लेकिन विचार जब उस अनुभव, उस आनन्द को जिसे उसने कल एक बादल या वृक्ष या पुष्प या किसी सुन्दर व्यक्ति के चेहरे को देखकर पाया था, पुनः-पुनः प्राप्त करना चाहता है, तब वह निराशा, दुख, भय और सुख को आमंत्रित करता है ।

अतः क्या विचार का अंत हो सकता है ? या यह प्रश्न ही गलत है ? वस्तुतः यह प्रश्न ही गलत है, क्योंकि हम उस आनन्द, परम आनन्द, को अनुभव करना चाहते हैं, जो सुख नहीं है । हम आशा करते हैं कि विचार को समाप्त कर हम एक ऐसी अवस्था को पा लेंगे जो असीम है, जो सुख तथा भय की उपज नहीं है । अतः सही प्रश्न यह है कि विचार का जीवन में क्या स्थान है, न कि यह कि विचार को कैसे समाप्त करें । कर्म और अकर्म के साथ विचार का क्या संबंध है ? जहाँ कर्म आवश्यक है वहाँ विचार का उससे क्या संबंध है ? जहाँ केवल सौन्दर्य का पूर्ण आनन्द लेने का प्रश्न है वहाँ विचार की आवश्यकता ही क्या है ? यदि वहाँ विचार नहीं आता तो कल के लिए चिन्ता ही नहीं होती । यदि मैं किसी पर्वत, किसी सुन्दर चेहरे या पानी की सतह के सौन्दर्य का अपने पूरे प्राणों से आनन्द लेना चाहूँ तब विचार क्यों मेरे इस सौन्दर्य-दर्शन में दखल दे और कहे "मैं यही आनन्द कल फिर से पाना चाहूँगा ।" मुझे यह पता लगाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा कि विचार का कर्म से क्या संबंध है । यह भी देखना होगा कि जहाँ विचार की कतई आवश्यकता नहीं है वहाँ भी क्या विचार का दखल देना उचित है ? मैं एक सुन्दर वृक्ष को देखता हूँ, जिस पर एक भी पत्ता नहीं है और जो आसमान के सामने पूरे गौरव से खड़ा है । मैं इसकी अनूठी सुन्दरता जी भर के देख लूँ, बस । तब भला विचार क्यों बीच में आए और कहे, "मैं इसी आनन्द को कल फिर प्राप्त करूँगा !" साथ ही मैं यह भी देखता हूँ कि कर्म में विचार को अपनी भूमिका निभानी चाहिए । कर्म में कुशलता विचार में कुशलता है । अतः हम देखें कि विचार और कर्म का वास्तविक संबंध क्या है । साधारणतया हमारा कर्म कल्पनाओं और धारणाओं पर अवलम्बित रहता है । इस संबंध में कि मुझे क्या करना चाहिए, मेरी एक धारणा या कल्पना होती है और जो भी मैं करता हूँ वह उस धारणा, आदर्श या कल्पना के करीब होता है । इसका अर्थ है कि कर्म और आदर्श के बीच एक विभाजन है और इस विभाजन में द्वंद्व है । कोई भी मानसिक विभाजन द्वंद्व को जन्म देता है । अतः विचार और कर्म में क्या संबंध है, यह देखना जरूरी है । यदि कर्म और विचार में विभाजन है तो कर्म अपूर्ण होगा । क्या ऐसा कोई कर्म है जिसमें विचार तत्क्षण कुछ देखता है और तत्काल जो भी करना है उसे कर लेता है, जहाँ कोई भी विचारधारा या आदर्श नहीं है, जिसका कि अलग से अनुकरण करना पड़े । क्या ऐसा कोई कर्म है जिसमें कि देखना ही कर्म हो तथा सोचना ही कर्म हो । हमने देखा कि विचार भय और सुख को जन्म देता है और यह भी देखा कि जहाँ सुख है वहाँ दुःख है और जहाँ दुःख है वहाँ उससे बचाव के प्रयत्न हैं । मैं यह सब स्पष्ट रूप से देखता हूँ और यह देखना ही तत्क्षण कर्म है । इस देखने में विचार का समावेश है, इसीमें तर्क तथा चिन्तन समाहित है, फिर भी यह देखना स्वतःस्फूर्त है और यह कर्म भी स्वतःस्फूर्त है और इसलिए इससे मुक्ति है ।

क्या हम सचमुच परस्पर संवाद कर रहे हैं ? कृपया जल्दबाजी न करें, इसे सही ढँग से समझें । यदि सचमुच आप इसे स्वीकार कर लेते हैं तो इस स्थान को छोड़ते समय आपको भय से मुक्त होकर ही जाना चाहिए । साधारणतया आपकी स्वीकृति इस बात की द्योतक है कि आपने शाब्दिक और बौद्धिक स्तर पर समझा है, जिसका कोई महत्त्व नहीं है । इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम भय के प्रश्न की छानबीन कर रहे हैं और जब आप यहाँ से जाएँगे तब आपको भय से पूर्णतया मुक्त होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि आप एक मुक्त मानव, एक अनूठे मानव बन गये हैं। आप पूर्णतया बदल चुकें हैं—अभी, इसी समय, न कि कल। आप स्पष्ट रूप से देखते हैं कि विचार भय और सुख को जन्म देता है। हमारे सारे मूल्य भी भय और सुख पर आधारित हैं, फिर चाहे वे नैतिक हों, सामाजिक हों, धार्मिक हों, या आध्यात्मिक। यदि आप इस कथन की सचाई को देखें—अत्यन्त सजगता से, विवेक से, समझदारी से, शान्ति से, विचार के एक-एक पहलू को देखें, तो यह देखना ही अपने-आप में पूर्ण कर्म होगा और इसलिए जब आप यहाँ से जाएँगे तो भयमुक्त होकर। अन्यथा आप कहेंगे, "मैं इस भय से कल कैसे मुक्त होऊँगा ?"

कर्म में विचार अवश्य सक्रिय हो। जब आपको अपने घर जाना हो तब आप अवश्य विचार करें, अथवा जब आपको बस या रेल पकड़ना हो, आफिस जाना हो, तब विचार अत्यन्त कुशलता, वस्तुनिष्ठता, निर्वैयक्तिकता से तथा बिना भावनावश हुए कार्य करें। वहाँ पर विचार अत्यन्त आवश्यक है। परंतु जब विचार हमारे भूतकालीन अनुभवों को स्मृति के माध्यम से भविष्य में ले जाता है तब यह क्रिया अपूर्ण होगी और इसलिए इससे विरोध आदि पैदा होंगे।

अब हम अगले प्रश्न को लें। विचार का मूल क्या है और विचार करनेवाला कौन है ? कोई भी व्यक्ति यह देख सकता है कि विचार हमारे ज्ञान तथा हमारे अनुभव जो हमारी स्मृति में संगृहीत हैं, की प्रतिक्रिया है, और इसी पृष्ठभूमि से विचार किसी चुनौती का उत्तर बनकर निकलता है। जैसे, आपसे किसीने पूछा, "आप कहाँ रहते हैं ?" तो आप तत्काल अपनी स्मृति के कोष से उत्तर देंगे। स्मृति, अनुभव, ज्ञान, पृष्ठभूमि है जहाँ से विचार आते हैं। अतः विचार कभी नया नहीं हो सकता। यह हमेशा पुराना होता है। विचार कभी स्वतंत्र भी नहीं हो सकता, क्योंकि यह हमेशा अतीत से बँधा रहता है और इसीलिए यह कभी किसी नूतन वस्तु को नहीं देख सकता। जब मैं यह अच्छी तरह से, स्पष्टता से समझ लेता हूँ तब मन एकदम शान्त हो जाता है। जीवन हमारे संबंधों में क्षण-क्षण घटित होनेवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक गति है और विचार उस गति पर कब्जा करके उसे अतीत और स्मृति का रूप देने के लिए प्रयत्नशील है और इसीलिये भयग्रस्त है ।

हमने यह देखा कि जाँच-पड़ताल के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है और यह जाँच-पड़ताल एकदम स्पष्ट हो इसके लिए चाहिए अनुशासन—एक ऐसा अनुशासन जिसका संबंध सीखने से हो, न कि दमन या अनुकरण से । हमने यह भी देखा कि हमारा मन समाज तथा अतीत के द्वारा कितना संस्कारित है । ऐसी अवस्था में हमें स्पष्ट रूप से अनुभव होगा कि हमारे मन से जो भी विचार उठ रहे हैं, वे पुराने हैं और इसीलिए वे किसी नयी चीज को समझने में असमर्थ हैं । यह सब हम यदि गहराई से समझ लेते हैं तो हमारा मन पूर्णतया मौन हो जाता है, बिना किसी नियंत्रण या जबरदस्ती के । मन के इस मौन के लिये न कोई विशेष विधि है न जापान या भारत की कोई विशिष्ट साधना-प्रणाली । मन के ही द्वारा मन को शान्त करने के लिए किसी पद्धति या विधि का सहारा लेना एकदम मूर्खतापूर्ण है । यह सब देखने और प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने के साथ ही अचानक एक सहज क्रिया घटित होती है—देखने की वह घटना ही भय से पूर्णतया मुक्त होने की क्रिया बन जाती है । भय के उत्पन्न होने की स्थिति में तत्काल उसका दर्शन होता है और उसका अंत होता है ।

प्रेम क्या है ? हममें से अधिकांश व्यक्तियों के लिए प्रेम सुख है, और इसलिए भय है, जब भय और सुख को पूरी तरह से समझ लिया जाता है तब प्रेम क्या है ? और इस प्रश्न का उत्तर कौन देगा ? क्या वक्ता या धर्मगुरु या कोई पुस्तक ? क्या कोई बाहरी सत्ता आपको यह बतायेगी कि अच्छा कर रहे हो, आगे बढ़ते रहो, अथवा इस सुख, भय और दुःख की सम्पूर्ण प्रक्रिया को गहराई से देख कर, समझकर व समग्रता से उसे जाँचकर ही हम यह जान पायेंगे कि द्रष्टा व विचारकर्ता विचार के ही भाग हैं । यदि विचार-प्रक्रिया नहीं है तो विचारकर्ता भी नहीं है । दोनों अविभाज्य हैं । विचारकर्ता ही विचार है । इसे देखने और समझने में सौन्दर्य है, सूक्ष्मता है । अब वह मन ही कहाँ रहा जो भय के प्रश्न की छानबीन के लिए निकला था ? क्या आप इसे समझ रहे हैं ? अभी आपके मन की क्या अवस्था है, जिसने इतना सारा देखा और समझा ? क्या अब भी यह वैसा ही है, जैसा इस छानबीन से पहले था ? इसने बड़ी निकटता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार, भय और सुख को उसके यथार्थ रूप में देख और समझ लिया है। अब उसकी अवस्था कैसी है ? निश्चित ही इसका उत्तर दूसरा कोई भी नहीं दे सकता—सिवाय आपके। यदि सचमुच आपने यथार्थ में यह सब कुछ जान व समझ लिया है तो आप देखेंगे कि यह पूर्णतः रूपांतरित हो गया है।

प्रश्नकर्ता : अस्पष्ट।

कृष्णमूर्ति : प्रश्न पूछना बहुत ही आसान है। सम्भवतः आपमें से कुछ व्यक्ति अपने प्रश्न के ही बारे में सोच रहे थे जब वक्ता बोल रहा था। सुनने की अपेक्षा प्रश्न पूछने में हमारी अधिक दिलचस्पी है। हमें स्वयं से ही प्रश्न करना है, केवल यहीं नहीं, हर जगह। सही प्रश्न पूछना अधिक महत्त्वपूर्ण है न कि उसका उत्तर प्राप्त करना। किसी समस्या का समाधान उसे ठीक तरह से समझ लेने में ही निहित है। उत्तर समस्या के बाहर नहीं, बल्कि उसीमें निहित है। यदि कोई अपनी समस्या के हल के संबंध में ही अधिक चिन्तित है तो वह समस्या को सही ढंग से समझ नहीं सकता। हममें से अधिकांश व्यक्ति अपनी समस्या को बिना समझे उसके हल को पा लेने को आतुर हैं। और समस्या को समझने के लिए चाहिए ऊर्जा, तीव्रता, उत्कटता, न कि अकर्मण्यता व आलस। हम चाहते हैं कि कोई दूसरा समस्या हल कर दे। हमारी कोई भी समस्या, चाहे वह राजनैतिक हो, धार्मिक हो या मनोवैज्ञानिक कोई दूसरा नहीं हल कर सकता। समस्या को देखने के लिए अत्यधिक जीवंतता, उत्कटता तथा तीव्रता की आवश्यकता है और जब आप उस ढंग से समस्या को देखते हैं तो स्पष्टतः वहीं पर समाधान मिल जाता है।

इसका यह अर्थ नहीं कि आप प्रश्न न पूछें। लेकिन आप लोगों के द्वारा (जिनमें वक्ता भी शामिल है) कही गयी प्रत्येक बात पर सन्देह करें।

प्रश्नकर्ता : क्या व्यक्तिगत समस्याओं की छानबीन करने में अन्तरावलोकन का खतरा है ?

कृष्णमूर्ति : खतरा क्यों न होना चाहिए ? गली को पार करने में भी तो खतरा है ? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि हमें देखना नहीं चाहिए क्योंकि देखना खतरनाक है ? मुझे याद है, एक बार एक बहुत धनी व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे पास आया और कहने लगा—आप जो कुछ कह रहे हैं उसके प्रति मेरी गहरी दिलचस्पी है, और मैं अमुक समस्या को सुलझाना चाहता हूँ। मैंने कहा—"ठीक है श्रीमान्, हम उस संबंध में चर्चा करें।" वह कई बार मेरे पास आया। दूसरे सप्ताह के बाद एक दिन जब वह आया तो कहने लगा—"मुझे भयानक स्वप्न आने लगे हैं। मुझे उनमें दिखायी देता है कि मेरे चारों ओर की वस्तुएँ लुप्त हो रही हैं, तरह-तरह की घटनाएँ घट रही हैं। सम्भवतः यह स्वयं की छानबीन करने का ही खतरनाक परिणाम हो।" इसके बाद वह फिर कभी नहीं आया।

हम सभी सुरक्षा चाहते हैं। हम अपनी छोटी-सी तथाकथित सुरक्षित, सुव्यवस्थित दुनिया में—जो वस्तुतः अव्यवस्थित है—सुरक्षित रहना चाहते हैं। हमने अपने कुछ खास रिश्तों का—पति-पत्नी का—एक अदना-सा घेरा बना रखा है, जिसमें हम एक-दूसरे को मजबूती से पकड़े हुए हैं, जहाँ दुःख है, अविश्वास है, भय है, खतरा है, द्वेष है, क्रोध है, अधिकार-भावना है और इस तरह के परस्पर संबंधों में भी हम नहीं चाहते कि किसी तरह का व्यवधान पैदा हो।

हम अपने-आपको सही ढँग से देखें—बिना किसी भय तथा बिना किसी खतरे के देखें। इस अवलोकन में किसी प्रकार की आत्मनिंदा या आत्मसमर्थन न हो—व्याख्या, निर्णय या मूल्यांकन न हो, केवल देखने की क्रिया हो, इस अवलोकन में मन यथार्थ को समझने के लिये तत्पर हो। 'जो है', उसमें खतरा कैसा ? मानव हिंसक है। यही है वस्तुतः 'जो है'। और उसने संसार में जो खतरे पैदा किये हैं वे सभी इसी हिंसा के परिणाम हैं। और यह हिंसा पैदा होती है भय से। इसे देखने में तथा इसे पूर्णतया समाप्त करने में किस बात का खतरा है ? हो सकता है इससे एक अलग समाज का, अलग मूल्यों का जन्म हो। अवलोकन में बड़ा सौंदर्य है। किसी भी वस्तु को उसके यथार्थ रूप में देखने, गहराई से देखने का यह अर्थ नहीं कि हम उसे उसी रूप में स्वीकार अथवा अस्वीकार कर लें या उसके बारे में कुछ करें। यथार्थ का सही अवलोकन ही एक क्रान्ति को जन्म देता है। परन्तु इसके लिए देखने की कला को जानना जरूरी है, जिसका अर्थ आत्मपरीक्षण अथवा आत्मविश्लेषण नहीं है बल्कि चुनावरहित होकर केवल अवलोकन क़रना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : क्या भय स्वाभाविक नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप उसे भय कहेंगे ? जब आप जलती हुई आग देखते हैं, अथवा गहरा गड्ढा देखते हैं, तब छलाँग लगाकर उससे दूर हो जाना क्या भय है ? जब आप कोई जंगली जानवर या साँप देखते हैं तो क्या भाग नहीं खड़े होते हैं ? इसे आप भय कहेंगे या प्रज्ञा ? यह प्रज्ञा आपके संस्कारों का परिणाम हो सकता है क्योंकि आपको पता है कि गड्ढे में गिरने से जीवन का अन्त हो सकता है । अतः आपकी प्रज्ञा आपको सावधान रहने के लिए कहती है । क्या आप इसे भय कहेंगे ? लेकिन जब हम स्वयं को अलग-अलग राष्ट्रीयताओं में अथवा धार्मिक समुदायों में बाँट लेते हैं और परिणामस्वरूप स्वयं को दूसरों से अलग कर लेते हैं तब इसे आप क्या प्रज्ञा कहेंगे ? जो व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करती है, जो युद्धों को जन्म देती है, जो विभाजन करती है, उसे हम प्रज्ञा कहेंगे या भय ? निश्चित ही यह भय है, न कि प्रज्ञा । दूसरे शब्दों में, हमने स्वयं को विभाजित कर लिया है । आवश्यकता पड़ने पर हमारा एक भाग प्रज्ञापूर्वक कार्य करता है, जैसे कि गड्ढे से अथवा तेजी से आती हुई गाड़ी से बच निकलना, परन्तु इस प्रज्ञा का उपयोग हम राष्ट्रीयता के खतरों को अथवा मानव-विभाजन के दूरगामी परिणामों को देखने में नहीं करते हैं । इस प्रकार हमारा एक भाग—एक छोटा-सा भाग प्रज्ञावान् है, जब कि शेष भाग नहीं है । जहाँ भी विखंडन और विभाजन है वहाँ दुःख तथा द्वंद्व अवश्यंभावी हैं । द्वंद्व का मूल ही विभाजन है, हमारी आन्तरिक विसंगति है । इस विसंगति को समग्रता का रूप नहीं दिया जा सकता । यह भी हमारी स्वभावगत विचित्र विशेषताओं में से एक है कि हम स्वयं को समग्र बनाना चाहते हैं । यह मेरी समझ में नहीं आता कि वस्तुतः इसका अर्थ क्या है । वह कौन है जो दो परस्पर विभाजित व विरोधी स्वभावों को एक करेगा ? क्या वह एक करनेवाला 'स्वयं' इस विभाजन का एक भाग नहीं है ? लेकिन जब कोई इसकी समग्रता को देखता है, जब कोई बिना चुनाव के इसका गहराई से अवलोकन करता है, तब यह विभाजन ही विसर्जित हो जाता है ।

प्रश्नकर्ता : क्या सही विचार और सही कर्म में कोई अन्तर है ?

कृष्णमूर्ति : जब आप विचार और कर्म के साथ 'सही' शब्द का प्रयोग करते हैं तब सही कर्म गलत कर्म हो जाता है । क्या ऐसा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता ? जब आप 'सही' शब्द का प्रयोग करते हैं तब पहले से ही आपने सही क्या है' इसकी एक धारणा बना रखी है । जब आप 'सही क्या है' क सम्बन्ध में कोई धारणा रखते हैं तो फिर वह ग़लत हो जाता है । क्योंकि सही' सम्बन्धी आपकी वह धारणा आपके पूर्वाग्रह, संस्कार, आपके भय, आपकी संस्कृति व सभ्यता, आपकी स्वभावगत विचित्रता, आपकी धार्मिक मान्यता आदि पर आधारित है । आप अपने सामने कोई मानदंड, कोई ढाँचा रखते हैं जो अपने आप में गलत है, अनैतिक है । सामाजिक नैतिकता वस्तुतः अनैतिकता है । क्या आप इससे सहमत हैं ? यदि हाँ, तो आपने सामाजिक नैतिकता को अस्वीकृत कर दिया है, अर्थात् आपने लोभ, महत्त्वाकांक्षा, राष्ट्रीयता, उच्च वर्ग की पूजा आदि को तत्काल अस्वीकृत कर दिया है । सामाजिक नैतिकता अनैतिक है, क्या आप इसे सचमुच समझ रहे हैं, अथवा यह सब मात्र शब्द-जाल है ? सचमुच नैतिक या सच्चरित्र होना जीवन की असाधारणतम चीजों में से एक है और उस नैतिकता का हमारे सामाजिक व परिवेशात्मक व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं है—सही अर्थों में सद्‌गुणी होने के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है और यदि आप लोभ, ईर्ष्या, स्पर्धा, सफलता-पूजा आदि से युक्त सामाजिक नैतिकता का, जिसका धर्म ने भी पोषण किया है, अनुगमन करते हैं तो आप स्वतंत्र नहीं हैं ।

प्रश्नकर्ता : यह हममें घटित हो इसके लिए क्या हमें प्रतीक्षा करनी होगी या इसके लिए कुछ अभ्यास करना होगा ?

कृष्णमूर्ति : इस बात को स्पष्ट रूप से अनुभव करने के लिए कि देखना ही वस्तुतः करना है क्या हमें अभ्यास की जरूरत है ?

प्रश्नकर्ता : क्या आप शान्त मन के बारे में बताएँगे ? क्या यह किसी अभ्यास का परिणाम है ?

कृष्णमूर्ति : श्रीमान्, कृपया इसे समझें । एक सैनिक कवायद के मैदान पर बहुत शान्त है । उसकी पीठ एकदम सीधी, उसके हाथ की बन्दूक एकदम सही अवस्था में है । वह रोज़-रोज़ क़वायद करता आ रहा है, उसके लिए स्वतंत्रता नाम की कोई चीज नहीं रह गयी है । वह बहुत शान्त है । लेकिन क्या हम उसे सच ही शान्त कहेंगे ? अथवा एक बच्चा किसी खिलौने में खोया हुआ है । क्या वह शान्त है ? आप उससे खिलौना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले लें, वह पुनः वैसा ही हो जाएगा । अतः क्या अनुशासन और अभ्यास (कृपया इसे आप पूरी तरह से समझ लें—यह बड़ा सरल है) शान्ति ला सकता है ? इससे जड़ता अथवा स्थिरता भले ही आ जाय परन्तु वह शान्ति नहीं आ सकती जिसका अर्थ है अत्यन्त सक्रिय, पर साथ ही एकदम शान्त !

प्रश्नकर्ता : श्रीमान्, आप हम लोगों से इस संसार में क्या काम करवाना चाहते हैं ?

कृष्णमूर्ति : श्रीमान्, सबसे पहले तो मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं कुछ भी नहीं चाहता । आप इस संसार में पूरी तरह से जीएँ । यह संसार अत्यंत अद्‌भुत रूप से सुंदर है । यह हमारा संसार है, यह हमारी पृथ्वी है, यह हमारे रहने के लिए है । परन्तु हम सही ढँग से जीते नहीं, हम संकीर्ण हैं, विभाजित हैं, चिन्तित और भयभीत इन्सान हैं और इसलिए हम न सही अर्थों में जीते हैं, न सही अर्थों में सम्बन्धित हैं । हम अलगाव और निराशा से पीड़ित मानव हैं । हम नहीं जानते कि हर्ष और आनन्द से जीने का क्या अर्थ है । मेरी दृष्टि में कोई भी व्यक्ति इस ढंग से तभी जी सकता है जब वह जीवन की समस्त नासमझियों से मुक्त हो जाए और यह तभी सम्भव है जब हम अपने सम्बन्धों के प्रति—फिर चाहे वे मानव के साथ हों या विचारों या निसर्ग या अन्य चीज के साथ हों—पूर्ण रूप से सजग हों । उन संबंधों के माध्यम से ही हम स्वयं को, अपने भय को, अपनी चिन्ताओं तथा निराशाओं को, अपने अकेलेपन व प्रेम की कमी को समझ सकेंगे । व्यक्ति सिद्धान्तों, शब्दों तशा अन्य लोगों के द्वारा दिये गये ज्ञान से भरा है, पर वह स्वयं के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता और इसीलिए वह नहीं जानता कि किस तरह जिये ।

प्रश्नकर्ता : मानव-मस्तिष्क के रूप में चेतना के विभिन्न स्तरों की व्याख्या आप कैसे करते हैं ? मस्तिष्क एक भौतिक वस्तु प्रतीत होती है, परन्तु मन नहीं; साथ ही मन के दो भाग हैं—एक चेतन व दूसरा अचेतन । इन सभी भिन्न धारणाओं के होते हम स्पष्टता से कैसे देख सकते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप यह पूछ रहे हैं कि मस्तिष्क और मन में क्या अन्तर है ? वस्तुतः मस्तिष्क हजारों वर्षों के विकास का परिणाम है, जिसमें पुरातन स्मृतियाँ, ज्ञान व अनुभव विद्यमान हैं । क्या यह मस्तिष्क हमारे, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय, मन का ही एक भाग नहीं है, जिसमें चेतन व अचेतन ये दो अवस्थाएँ हैं ? इस प्रकार क्या यह स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों एक ही नहीं हैं ? क्या हमने ही इसे चेतन एवं अचेतन मन में विभाजित नहीं कर दिया है ? क्या हम एक सम्पूर्ण इकाई की भाँति इसे नहीं देख सकते ?

क्या अचेतन मन चेतन मन से बहुत भिन्न है या ये एक पूर्ण के ही भाग नहीं हैं ? हमने इसे विभाजित कर दिया है और इसीसे प्रश्न उठता है कि चेतन मन अचेतन मन के प्रति कैसे सजग रहे । क्या हमारा प्रत्यक्ष मन, जो सतत क्रियाशील है, जो सारे दिन कुछ-न-कुछ करता रहता है, अचेतन मन को देख सकता है ?

क्या इस विषय में गहराई से प्रवेश करने के लिए आपके पास समय है ? क्या आप थके नहीं हैं ? कृपया इस अत्यन्त गम्भीर चर्चा को मनोरंजन का एक साधन न बनने दें । हम यहाँ पर अत्यन्त गम्भीर प्रश्नों पर विचार कर रहे हैं और यदि आपने परिश्रम किया है, जो कि करना ही चाहिए, तो आप थक गये होंगे । मस्तिष्क एक सीमा से ज्यादा ग्रहण नहीं कर सकता और इस अचेतन तथा चेतन मन के प्रश्न की छानबीन करने के लिये अत्यन्त तीक्ष्ण व स्पष्ट मन द्वारा अवलोकन की आवश्यकता है । मुझे इसमें संदेह है कि करीब एक-डेढ़ घण्टे तक सुनने के बाद आप ऐसा करने में समर्थ हैं । अतः यदि आप सहमत हों तो क्या हम इस प्रश्न पर बाद में चर्चा कर सकते हैं ?

लन्दन, मार्च 16,1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2

विखंडन

विभाजन—चेतन तथा अचेतन मन
'ज्ञात' के प्रति मरना

आज की संध्या हम मन की चेतन तथा अचेतन अवस्थाओं—मन की ऊपरी तथा गहरी परतों—के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे। मुझे आश्चर्य है, हम जीवन को अलग-अलग खंडों में—व्यावसायिक जीवन, सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, धार्मिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन आदि में—क्यों बाँट देते हैं ? यह विभाजन केवल हमारे आंतरिक जीवन तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह हमारे सामाजिक जीवन में भी व्याप्त है—जैसे 'हम' और 'वे', 'आप' और 'मैं', प्रेम और घृणा, जीवन और मृत्यु आदि। आज हम इस प्रश्न की गहराई से छानबीन करें और पता लगायें कि क्या एक ऐसी जीवन-शैली सम्भव है जिसमें किसी भी प्रकार का विभाजन न हो—जीवन और मृत्यु का, चेतन और अचेतन का, व्यावसायिक और सामाजिक जीवन का, पारिवारिक व व्यक्तिगत जीवन का।

देश-देश, धर्म-धर्म, जाति-जाति के बीच विभाजन तथा हमारे अन्दर जो अलगाव है उसमें कितनी विसंगतियाँ हैं, विरोधाभास हैं, फिर भी हम हैं कि ऐसा जीवन जिये चले जा रहे हैं। यह विभाजन ही भयंकर पीड़ा, संघर्ष और युद्ध को जन्म देता है। यही हमारी बाहरी और भीतरी असुरक्षा के लिए जिम्मेदार है। इस विभाजन के अनेक रूप हैं—देव और दानव, अच्छा और बुरा, 'जो होना चाहिए' और 'जो है'।

मैं सोचता हूँ, आज की संध्या इस विषय पर चर्चा करना उचित होगा कि क्या जीने का ऐसा भी कोई मार्ग है—सैद्धान्तिक या बौद्धिक रूप में नहीं, अपितु वास्तविक रूप में—जहाँ किसी प्रकार का विभाजन ही न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, जहाँ कोई भी क्रिया खण्डित न हो, अपितु एक सतत प्रवाह हो और जहाँ प्रत्येक क्रिया अन्य सारी क्रियाओं से संबंधित हो ।

एक ऐसे जीवन की खोज करने के लिये, जिसमें किसी भी प्रकार का विखंडन न हो, हमें 'प्रेम' और 'मृत्यु' को गहराई से समझना होगा । इसको समझ लेने पर हम एक ऐसे जीवन का साक्षात्कार कर सकते हैं जो खंडित नहीं है, बल्कि एक सतत प्रवाह है और अत्यधिक प्रज्ञावान् है । लेकिन खण्डित मन में प्रज्ञा का अभाव होता है । एक व्यक्ति जो आधा दर्जन जीवन जीता है वह समाज द्वारा भले ही बड़ा नैतिक माना जाए, परन्तु सही अर्थों में वह प्रज्ञावान् नहीं है ।

मेरी दृष्टि में यह सोचना कि अनेक खंडों को एक साथ रख देने का अर्थ ही एकत्व है, वस्तुतः नासमझीपूर्ण है । क्योंकि इसमें यह मान लिया गया है कि इन अलग-अलग खंडों को जोड़नेवाली कोई सत्ता है, लेकिन वह सत्ता जो यह जोड़ने का प्रयत्न कर रही है स्वयं उस खंड का ही तो एक भाग है ।

हमें जरूरत है एक ऐसी प्रज्ञा की, ऐसी उत्कटता की, कि जिससे व्यक्ति के जीवन में एक आमूल क्रान्ति आये ताकि वहाँ कोई विसंगतिपूर्ण क्रिया न हो, अपितु एक अखंड, निर्बाध गति हो । मनुष्य के जीवन में ऐसा परिवर्तन घटित हो इसके लिये आवश्यकता है—तीव्र उत्कंठा की, लगन की । यदि व्यक्ति जीवन में कुछ भी अर्थपूर्ण करना चाहता है तो उसमें प्रचंड आवेग का होना जरूरी है, जिसका अर्थ सुख नहीं है । ऐसी क्रिया को, जो विखंडन तथा विसंगति से पूर्णतया मुक्त है, समझने के लिए इसी तीव्र आवेग की आवश्यकता है । व्यक्ति का जीवन बौद्धिक धारणाओं एवं मान्यताओं से नहीं बदलेगा, वह बदलेगा 'जो है' की समझ से और इसके लिए आवश्यक है एक तीव्रता, एक उत्कटता ।

यह पता लगाने के लिए कि एक ऐसा जीवन संभव है या नहीं—मैं आपके रोजमर्रा के जीवन के बारे में कह रहा हूँ, किसी बैरागी के जीवन के बारे में नहीं—जिसमें उत्कटता और प्रज्ञा की यह गुणवत्ता हो, हमें सुख के स्वरूप को समझना होगा । हमने पिछली वार्ता में सुख के प्रश्न पर चर्चा की थी और देखा था कि किस प्रकार विचार हमारे अनुभव को, जिसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षण भर के लिए हमें आनंद दिया था, पकड़े रखता है और बार-बार उसके बारे में सोचने से सुख बना रहता है। लेकिन जहाँ भी सुख है वहाँ निश्चित रूप से दुःख और भय होगा ही। अब प्रश्न यह उठता है—क्या प्रेम सुख है ? हममें से अधिकतर लोगों के नैतिक मूल्य सुख पर आधारित हैं। यहाँ तक कि हमारा आत्म-बलिदान और हमारा आत्म-संयम भी सुख की अभिलाषा के कारण ही है, चाहे इस सुख को हम अधिक महान् या अधिक उच्च कह लें। क्या प्रेम का सम्बन्ध सुख से है ? यह 'प्रेम' शब्द अत्यन्त बोझिल है। हर कोई—राजनेता से पति-पत्नी तक—इसका उपयोग करता है। और गहनतम अर्थ में जो प्रेम है, वही एक ऐसी जीवन-शैली को जन्म दे सकता है जहाँ किसी भी प्रकार का विखंडन नहीं है। भय सुख का ही अंग है। अतः हमारे सम्बन्धों में जहाँ भी भय की छाया है वहाँ निश्चित रूप से विखंडन होगा, विभाजन होगा।

यह सचमुच अत्यन्त गम्भीर विषय है कि मानव-मन ने स्वयं को क्यों विभाजित कर डाला है, उसने स्वयं को क्यों दूसरों के विरोध में खड़ा कर लिया है, जिसका परिणाम हुआ एक हिंसक समाज का निर्माण। हम मानवों ने एक ऐसी जीवन-प्रणाली अपनायी है जो हमें युद्ध की ओर ले जाती है और साथ ही हम शांति चाहते हैं, स्वतंत्रता चाहते हैं। यह शांति केवल एक विचार या आदर्श मात्र है। हम जो कुछ भी करते हैं वह हमें संस्कारों में जकड़ लेता है।

समय को हमने मनोवैज्ञानिक रूप से अतीत, वर्तमान व भविष्य में विभाजित कर दिया है और यदि हम विभाजन से रहित जीवन को समझना चाहते हैं तो यह जरूरी है कि हम समय के प्रश्न की छानबीन करें। हमें यह देखना होगा कि कहीं यह मनोवैज्ञानिक समय यानी अतीत, वर्तमान व भविष्य—ही विभाजन का कारण तो नहीं ? कहीं यह विभाजन हमारी स्मृति का ही, जो हमारे मस्तिष्क का ही भाग है, परिणाम तो नहीं ? अथवा यह विभाजन इसलिए तो नहीं कि 'द्रष्टा', 'अनुभवकर्ता' तथा 'विचारकर्ता' स्वयं को 'दृश्य', 'अनुभव' व 'विचार' से अलग मानता है, या कहीं यह हमारी उस अहंपूर्ण स्वकेन्द्रित गतिविधि का परिणाम तो नहीं है जो 'मैं' तथा 'तुम' के रूप में विरोध पैदा कर रही है। इस विभाजन-प्रक्रिया की छानबीन करने के लिए हमें इन सभी चीजों को—समय, सुख तथा 'द्रष्टा' और 'दृश्य' के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच अलगाव एवं अनुभवकर्ता तथा अनुभव के बीच अलगाव को—समझना होगा और यह देखना होगा कि क्या इन सभी का प्रेम से कोई संबंध है ?

क्या वस्तुतः, 'कल' का कोई अस्तित्व है ? अथवा इसका आविष्कार विचार ने किया है ? कालक्रम के अनुसार यह सच है कि 'कल' है, परन्तु मनोवैज्ञानिक रूप से, आन्तरिक रूप से क्या सचमुच 'कल' है, यदि हम वैचारिक रूप से 'कल' मान लेते हैं, तब क्रिया अपूर्ण होगी और इससे विभाजन तथा विसंगति जन्म लेंगे । जब हम चीजों को पूर्ण स्पष्टता से 'अभी' नहीं देखते हैं तो उसे अधिक स्पष्टता से 'कल' देख सकने की आशा करते हैं । यह हमारे आलसी मन की एक तरकीब है जिसमें न तो उत्कटता है और न खोज के लिए आवश्यक गहरी दिलचस्पी । विचार ही इस धारणा का आविष्कार करता है : 'अन्ततः हम पहुँच जायेंगे', 'अन्ततः हम समझ पायेंगे', अतः उसके लिए 'समय' की, अनेक 'दिनों' की आवश्यकता होती है । पर क्या समय समझ ला सकता है ? क्या यह किसी वस्तु को एकदम स्पष्ट रूप में देखने में मदद करता है ?

क्या मन के लिए यह सम्भव है कि वह 'कल' से मुक्त हो जाये ताकि वह समय से बँधा न रहे । कल का अर्थ है 'ज्ञात' । क्या 'ज्ञात' से मुक्त हुआ जा सकता है ? क्या ऐसी कोई क्रिया हो सकती है जो 'ज्ञात' से बँधी न हो ?

सबसे कठिन बातों में एक बात है, संवाद करना । निश्चित है कि संवाद शाब्दिक स्तर पर ही होता है, परन्तु संवाद का एक गहरा स्तर भी है जहाँ वक्ता व श्रोता दोनों समान उत्कटता और समान गहनता के साथ एक ही स्तर पर मिलते हैं और तभी दोनों में सुसंवाद घटित होता है, जो शाब्दिक चर्चा से बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है । और चूँकि हम एक अत्यन्त पेचीदे विषय पर चर्चा कर रहे हैं, जो हमारे दैनिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता है, अतः यह जरूरी है कि हममें एक सुसंवाद हो, न कि केवल शाब्दिक चर्चा । हम एक ऐसी आमूल मनोवैज्ञानिक क्रान्ति के बारे में चर्चा कर रहे हैं जो किसी सुदूर भविष्य में नहीं, अपितु 'आज', 'अभी' घटित होनी चाहिए । हमें यह गहरी खोज करनी है कि यह मानव-मन, जो इतना ज्यादा संस्कारों से लदा है, क्या तत्काल बदल सकता है ? ताकि इसकी सारी क्रियाएँ अखंड हो सकें; जिनमें पश्चात्ताप, निराशा, पीड़ा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय, चिन्ता, अपराध-भावना, आत्मग्लानि आदि का स्पर्श तक न हो ? किस प्रकार हमारा मन इन सभी को विसर्जित कर एकदम ताजा, युवा और निर्दोष हो जांय ? असली प्रश्न यही है । मेरी दृष्टि में यह आमूल क्रान्ति तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कि 'द्रष्टा' और 'दृश्य', 'अनुभवकर्ता' और 'अनुभव' में विभाजन है । यह विभाजन ही द्वंद्व का कारण है । हर प्रकार का विभाजन निश्चित रूप से द्वंद्व को जन्म देता है और इस द्वंद्व, संघर्ष तथा युद्ध के माध्यम से कोई गहरा मानसिक परिवर्तन सम्भव नहीं । हाँ, सतही परिवर्तन भले ही आ जायँ । अतः प्रश्न यह है, हमारा मन, हृदय एवं मस्तिष्क एक साथ किस प्रकार इस विभाजन की समस्या का सामना करें ?

0318

इसके पहले कि हम चेतन तथा अचेतन मन की परतों में प्रवेश करें हम जान लें कि इस चेतन मन—जो हमारे दैनिक क्रियाकलापों, चिन्ताओं, समस्याओं, छिछले सुखों, जीविकोपार्जन के कार्यों से भरा है—तथा अचेतन मन—जो अदृश्य उद्देश्यों, आकांक्षाओं, अनिवार्य माँगों तथा भय से परिपूर्ण है—के बीच क्यों विभाजन है । इनमें यह विभाजन क्यों है ? क्या यह इसलिए है कि हम सदैव छिछली तथा अन्तहीन बकबक में, सतत छिछले मनोरंजन के साधनों की माँगों में तथा धार्मिक एवं अन्य सुखद संवेगों की खोज में बहुत ज्यादा व्यस्त हैं ? चूँकि ऊपरी मन सम्भवतः स्वयं में गहराई से प्रवेश नहीं कर सकता है इसी कारण यह विभाजन है ।

मन की गहरी परतों में आखिर क्या संगृहीत है ? इसे आप कैसे जानेंगे, बिना उसे पढ़े, जो इस संबंध में फ्रॉयड तथा अन्य मनोविज्ञानियों ने लिखा है ? आप यह कैसे जानेंगे कि आपका अचेतन मन आखिर क्या है ? क्या आप स्वयं इसका निरीक्षण करेंगे ? अथवा आप इसे जानने के लिए अपने सपनों की व्याख्या करवाते रहेंगे ? आपके सपनों की व्याख्या कौन करेगा ? क्या वे विशेषज्ञ जो स्वयं अपनी ही धारणाओं से बँधे हैं ? क्या यह सम्भव है कि स्वप्न बिलकुल ही न आयें—उन दुःस्वप्नों को छोड़कर जो गलत भोजन के कारण या शाम को अधिक भोजन करने से आते हैं ?

यह अचेतन मन किससे बना है ? निश्चित रूप से यह अतीत, समस्त जातिगत चेतना, जातिगत अवशेष, पारिवारिक परम्पराओं, भिन्न-भिन्न धार्मिक व सामाजिक संस्कारों आदि के अप्रकट और अनुद्घाटित अँधेरे से पूर्ण है । क्या बिना सपना देखे अथवा बिना मनोविश्लेषक की मदद के यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब जाना जा सकता है, उद्घाटित किया जा सकता है ? ताकि मन सोने से पूर्व एकदम मौन हो सके, न कि सतत निर्बाध क्रियाशील। और चूँकि मन पूर्णतया मौन है, अतः इस मौनावस्था में क्या एक अनूठी गुणवत्ता नहीं आ जाती है, जो रोज़ाना की चिन्ताओं, व्याकुलताओं, भय, समस्याओं तथा माँगों से पूर्णतया भिन्न है ? क्या यह सम्भव है कि स्वप्न बिलकुल ही न आएँ, ताकि प्रातः जब मन जागे तब एकदम ताज़गीपूर्ण व एकदम नया हो और यह तभी हो सकता है जब हम दिन में सजग हों, मन के इशारों और संकेतों के प्रति सावधान हों । यह सब आप संबंधों के माध्यम से ही कर सकते हैं । जब आप दूसरों के साथ अपने संबंधों को बिना निन्दा किये, बिना निर्णय तथा मूल्यांकन किये, बिना किसी चुनाव के सहज सजग होकर देखते हैं और यह निरीक्षण करते हैं कि आप कैसे व्यवहार करते हैं, आपकी प्रतिक्रियाएँ क्या हैं तभी अचेतन में जो छिपा है, अप्रकट है, प्रकट हो सकता है ।

हम इस अचेतन मन को इतना महत्त्व तथा अर्थ क्यों देते हैं, जब कि यह भी उतना ही क्षुद्र है जितना कि चेतन मन ? यदि चेतन मन अत्यन्त सृजनशील है, होशपूर्ण है, सतत देख रहा है, सुन रहा है, अवलोकन कर रहा है तब यह अचेतन की तुलना में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है । तथा इस सजग अवस्था में अचेतन मन की अंतर्वस्तुएँ प्रकाश में आने लगती हैं और इस प्रकार मन की भिन्न-भिन्न परतों का विभाजन समाप्त हो जाता है । यदि आप अपनी पतिक्रियाओं का, जब आप बस में बैठे हों या अपनी पत्नी या अपने पति से बात करते हों अथवा अपने ऑफिस में कुछ लिखते हों, या कभी एकदम अकेले हों, निरीक्षण करें तो आप पायेंगे कि इस अवलोकन की प्रक्रिया से, जिसमें द्रष्टा व दृश्य का कतई विभाजन नहीं है, समस्त विसंगतियाँ तिरोहित हो जाती हैं ।

इस चेतन और अचेतन मन के विषय को समझने के बाद हम अब प्रश्न करें : प्रेम क्या है ? क्या प्रेम सुख है ? क्या प्रेम ईर्ष्या है ? क्या प्रेम स्वामित्व अथवा अधिकार है—पति का पत्नी पर तथा पत्नी का पति पर अधिकार है ? निश्चित ही इनमें से कोई भी प्रेम नहीं है । फिर भी हम इन सारी बातों से भरे हैं और अपनी पत्नी या अपने पति को या अन्य लोगों को कहे जा रहे हैं, "मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ ।" हममें से अधिकांश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में ईर्ष्यालु हैं। ईर्ष्या का जन्म तुलना, माप तथा 'जो है' उससे अलग होने की इच्छा करने से होता है। क्या हम ईर्ष्या को उसके सही रूप में देख सकते हैं ताकि हम उससे सदा के लिए मुक्त हो जायें ? अन्यथा प्रेम का अस्तित्व सम्भव नहीं। प्रेम समय के परे है। प्रेम किया नहीं जा सकता। यह कोई सुख या संवेदना भी नहीं है।

मृत्यु क्या है ? प्रेम और मृत्यु के बीच क्या संबंध है ? जब हम मृत्यु के अर्थ को समझ लेंगे तब निश्चित रूप से यह भी समझ लेंगे कि जीवन क्या है ? वस्तुतः यह जीना क्या है ? मैं रोजमर्रा के जीवन की बात कर रहा हूँ, न कि उस आदर्श अथवा बौद्धिक जीवन की जो वस्तुतः झूठा है और जिसे आप सही मान बैठे हैं। यथार्थ रूप में हमारा यह दैनिक जीवन क्या है, जिसमें द्वंद्व, निराशा, अकेलापन तथा अलगाव है ? हमारा जीवन मात्र एक युद्धभूमि है और उससे बचने के लिए सोते-जागते हम संगीत, कला, संग्रहालय, धार्मिक तथा दार्शनिक मनोरंजन एवं विविध विचार-प्रणालियों का सहारा ले रहे हैं। परन्तु हम इस द्वंद्व और युद्धपूर्ण जीवन से, जिसमें चारों ओर दुःख ही दुःख है, मुक्त होने का कभी प्रयत्न ही नहीं करते।

क्या हमारे दैनिक जीवन के दुःख समाप्त हो सकते हैं ? जब तक कि हमारा मन पूर्णतया रूपान्तरित नहीं हो जाता तब तक हमारा जीना केवल आफिस में रोजाना जाने, आजीविका कमाने, कुछ पुस्तकें पढ़ने, दूसरों द्वारा कही गई बातों को दुहराने, ढेर सारी जानकारी बटोरने तक ही सीमित रहेगा। ऐसे खाली-खाली जीवन का भी कोई अर्थ है ? और जब कोई इस अवस्था के प्रति जागता है और जीवन के अर्थ को खोजने तथा इसके महत्त्व को समझने का प्रयत्न करता है तब वह बुद्धिमान् और ज्ञानी व्यक्तियों की खोज में लग जाता है, जो उसके जीवन को अर्थ और मक़सद दे सकें। यह भी एक प्रकार का पलायन ही है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारा यह पूरा जीवन ही सही रूप में रूपान्तरित हो।

हम मृत्यु से भयभीत क्यों हैं ? वस्तुतः हम किससे भयभीत हैं ? कृपया आप मृत्यु से संबंधित अपने सारे भय को देखें—इसका अर्थ है अपने इस संघर्षों से भरे जीवन के अंत हो जाने का भय। हम अज्ञात से भयभीत हैं कि बाद में न जाने क्या हो ? हम ज्ञात को—वस्तुएँ, परिवार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें, घर, फर्नीचर, हमारे निकट के व्यक्ति—इन सबको छोड़ने से भयभीत हैं। और यह ज्ञात क्या है ? यह ज्ञात है—दुःख, पीड़ा और निराशा से परिपूर्ण जीवन, जिसमें यदा-कदा ही खुशी की झलकें मिलती हैं। जीवन के इस सतत चलनेवाले संघर्ष का कोई अन्त नहीं और इसे ही हम जीवन माने बैठे हैं और इसे छोड़ने से हम भयभीत हैं। क्या यह 'मैं' जो इस सम्पूर्ण संग्रह का परिणाम है, इस बात से भयभीत है कि मृत्यु से इसका अन्त हो जानेवाला है और इसीलिए यह भविष्य में आशा पालता है और पुनर्जन्म की कल्पना करता है ? पूरब के देश इस पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। उनका सोचना है कि व्यक्ति अगले जन्म में विकास की ऊँची स्थिति को प्राप्त करता है। यदि आप इस जन्म में प्लेट धोनेवाले हैं तो अगले जन्म में आप राजकुमार या और कोई बड़े आदमी होंगे और कोई दूसरा व्यक्ति आपकी प्लेटें धोयेगा। उनके लिए, जो पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं, इस जीवन का बड़ा महत्त्व होता है। क्योंकि आपने इस जीवन में क्या किया, कैसा बर्ताव किया, आपके विचार कैसे हैं, आपके कार्य कैसे हैं, इसके आधार पर ही आपको अगला जीवन मिलेगा, पुरस्कार या सजा मिलेगी। लेकिन वस्तुतः उन्हें इस बात की किंचित् मात्र भी चिन्ता नहीं है कि उनका व्यवहार कैसा है। यह भी उनके लिए अन्य विश्वासों की तरह "है" जैसे कि स्वर्ग है, ईश्वर है आदि। यह केवल एक विश्वास बनकर रह गया है। वस्तुतः महत्त्व इस बात का है कि आप अभी क्या हैं ? आज क्या हैं ? आपका व्यवहार कैसा है—केवल बाहर से ही नहीं, अपितु अन्दर से भी ? पश्चिम ने भी मृत्यु के बारे में अपने तरीकों से सान्त्वना पाने का तर्कसंगत प्रयत्न किया है। इसके भी अपने अलग धार्मिक संस्कार हैं।

अतः क्या है मृत्यु ? मृत्यु का अर्थ है समाप्ति। शरीर वृद्धावस्था, बीमारी अथवा दुर्घटना से एक-न-एक दिन समाप्त होनेवाला ही है। लोगों में बहुत ही कम लोग वृद्धावस्था में सुन्दर रह पाते हैं, क्योंकि वे दुःख द्वारा सताये गये हैं और यह दुःख उनके चेहरे पर अंकित हो जाता है, साथ ही वृद्धावस्था की भी अपनी पीड़ा है—अतीत की वस्तुओं को याद करने से उत्पन्न पीड़ा।

क्या मनुष्य मानसिक रूप से अपनी समस्त ज्ञात वस्तुओं के प्रति रोज-रोज मर सकता है ? जब तक इस ज्ञात से मुक्ति नहीं होती तब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम उसे नहीं पा सकते जो हमारी परम संभावना है। हमारी संभावना ज्ञात के क्षेत्र में ही सीमित है। ज्ञात से मुक्ति के साथ ही संभावना भी विराट् हो जाती है। क्या कोई मानसिक रूप से अपने पूरे अतीत के प्रति, समस्त भय, चिंताओं, आसक्तियों के प्रति, घमंड और अहंकार के प्रति पूर्णतया मर सकता है ताकि वह कल सुबह एक नये, मुक्त इन्सान की भाँति जागे ? आप पूछेंगे, "यह कैसे किया जाय ? इसका तरीका क्या है ?" इसके लिए कोई तरीका नहीं है—क्योंकि तरीका कल को जन्म देता है, जिसका अर्थ है कि आप उस तरीके का अभ्यास करें और अन्त में अनेकों 'कल' के बाद आप सफलता की सोचें। क्या आप यह तत्काल यथार्थ रूप में—सैद्धान्तिक रूप में नहीं—समझ सकते हैं कि मन तब तक ताजा, निर्दोष, युवा, सशक्त तथा आवेगपूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि वह मानसिक रूप से अतीत की प्रत्येक वस्तु से मुक्त नहीं हो जाता। परन्तु हम हैं कि अतीत को छोड़ना नहीं चाहते क्योंकि हम स्वयं अतीत हैं, बासी हैं, हमारे सारे विचार अतीत पर आधारित हैं। हमारा सारा ज्ञान अतीत का है। अतः हमारा मन अतीत से चिपका रहता है। यदि कभी वह इससे मुक्त होने का प्रयत्न करता भी है तो वह भी अतीत का ही एक हिस्सा है अर्थात् अतीत द्वारा कुछ उपलब्ध करने की आशा करना।

यह बहुत ही आवश्यक है कि मन असाधारण रूप से शान्त हो, मौन हो और यह असाधारण रूप से शान्त हो सकता है यदि इसके लिए वह कोई अभ्यास न करे, कोई रुकावट न डाले, अपितु वह इस पूरी समस्या को देख और समझ ले। मनुष्य हमेशा अमरता को खोजता रहा है। वह एक चित्र बनाता है और उस पर अपना नाम अंकित करता है। यह अमरता का ही एक रूप है, जिसका अर्थ हुआ कि अपने पीछे अपना नाम छोड़ना। मनुष्य ने हमेशा से यह चाहा है कि वह अपना नाम अपने पीछे छोड़े। तकनीकी ज्ञान के अतिरिक्त मनुष्य के पास अपना खुद का कहने जैसा है भी क्या, जो वह दूसरे को देना चाहता है ? क्या है वह ? आप और मैं क्या हैं मनोवैज्ञानिक रूप से ? आपका बैंक एकाउण्ट बड़ा हो सकता है, आप मुझसे ज्यादा चतुर हो सकते हैं इत्यादि परन्तु मानसिक रूप से हम क्या हैं—शब्दों, स्मृतियों, अनुभवों का एक अम्बार मात्र। और क्या यही सब हम अपने बच्चों को देना चाहते हैं ? इसे ही किसी पुस्तक या चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अंकित करना चाहते हैं ? हमारे लिए यह 'मैं' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आप जानते हैं न, यह 'मैं' समाज के विरोध में खड़ा है। यह 'मैं' स्वयं की विश्व को पहचान कराना चाहता है। अपने आपको भरना चाहता है। महान् बनना चाहता है। यदि आप इस 'मैं' का निरीक्षण करें तो आपको दिखेगा कि यह स्मृतियों की एक गठरी और खाली शब्दों का ढेर है जिसे हम कसकर पकड़े हुए हैं और यह पकड़ ही इस आप और मेरे बीच के अलगाव का मूल कारण है।

जब आप यह सब समझें, तो किसी दूसरे के माध्यम से नहीं, अपितु स्वयं ही अवलोकन करें, इसे अत्यन्त निकटता से, बिना किसी निर्णय, मूल्यांकन अथवा दमन किये, सहजता से देखें तब आपको ज्ञात होगा कि प्रेम वहीं संभव है जहाँ मृत्यु है। प्रेम कोई स्मृति या सुख नहीं है। यह भी कहा गया है कि प्रेम कामवासना से संबंधित है। इस प्रकार हम फिर प्रेम का 'पवित्र प्रेम' और 'दूषित प्रेम' में विभाजन कर देते हैं। इनमें से एक को हम स्वीकार करते हैं और दूसरे की निंदा करते हैं। सचमुच इनमें से कोई भी प्रेम नहीं है। कोई भी व्यक्ति इस प्रेम का पूर्णता से, समग्रता से, तब तक साक्षात्कार नहीं कर सकता जब तक वह अतीत के प्रति पूर्णतया मृत न हो जाय—जिसका अर्थ है समस्त बीती यातनाओं, द्वंद्वों और दुःखों के प्रति मर जाना।

जैसा कि मैंने आपसे पहले कहा, प्रश्न पूछना बड़ा आसान है, लेकिन ऐसे प्रश्न का कोई अर्थ भी नहीं है। महत्त्व तो उसी प्रश्न का है जो किसी उद्देश्य से पूछा जाय और जब तक वह हल नहीं हो जाता तब तक उसका पीछा किया जाय। अब आप प्रश्न पूछ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि 'जो है' और 'जो होना चाहिए' का विभाजन समाप्त हो जाय तो क्या मनुष्य आत्मतुष्ट तथा चारों ओर घट रही भयंकर घटनाओं के प्रति बेपरवाह नहीं हो जायेगा ?

कृष्णमूर्ति : इस 'जो होना चाहिए' की क्या वास्तविकता है ? क्या इसकी कोई वास्तविकता है ? मनुष्य हिंसक है परन्तु उसे शांतिपूर्ण होना चाहिए। इस 'होना चाहिए' का क्या अर्थ है ? और हम इसे क्यों महत्त्व दें ? यदि यह 'जो है' और 'जो होना चाहिए' का विभाजन समाप्त हो जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो क्या मानव आत्मतुष्ट हो जायेगा ? क्या वह हर बात स्वीकार कर लेगा ? क्या इसका यह अर्थ है कि यदि मैं अहिंसा का आदर्श न रखूँ तो हिंसक हो जाऊँगा ? अहिंसा का उपदेश—किसीको मत मारो, दया करो आदि—बहुत प्राचीन काल से दिया जाता रहा है और सच्चाई यह है कि मनुष्य हिंसक है। यदि मनुष्य इसे अपरिहार्य समझकर स्वीकार कर ले तब वह आत्मतुष्ट हो जायेगा, जैसा कि वह आज है। उसने युद्ध को जीवन का एक ढंग समझकर स्वीकार कर लिया और वह लड़े जा रहा है जब कि धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य हजारों संघटन कह रहे हैं—'मनुष्य को ही नहीं, अपितु किसी भी प्राणी को मत मारो।' फिर भी मनुष्य भोजन के लिए प्राणियों को मारे जा रहा है और युद्ध किये जा रहा है। ऐसी अवस्था में यदि उसके सामने कोई आदर्श ही नहीं होता तो वह 'जो है' उसके साथ रहता। तब क्या वह आत्मतुष्ट बन जाता या 'जो है' उसका समाधान करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति, अभिरुचि और ऊर्जा को जुटाता ? क्या अहिंसा का आदर्श हिंसा से, जो वास्तविकता है, पलायन नहीं है ? जब मन पलायन नहीं करता, अपितु हिंसा का—'जो है'—उसका बिना किसी मूल्यांकन या निंदा के सामना करता हैं तब उसमें एक विशेष गुणवत्ता कार्य करती है और तब हिंसा विसर्जित हो जाती है। ऐसा मन हिंसा को स्वीकार नहीं करता। हिंसा का अर्थ केवल किसी को कष्ट पहुँचाना या उसकी हत्या करना ही नहीं है, अपितु सामाजिक नैतिकता अथवा अपनी ही विशिष्ट नैतिकता का अनुसरण करना, दूसरों का अनुकरण करना तथा उनके पीछे चलना भी हिंसा के ही रूप हैं। हर प्रकार का नियंत्रण तथा दमन विकृति है और विकृति हिंसा है। 'जो है' उसे समझने के लिए प्रचण्ड ऊर्जा और क्षण-क्षण सजगता आवश्यक है। वस्तुत: मनुष्य ने राष्ट्रीयता के नाम पर विभाजन किया है और यही विभाजन युद्ध का प्रमुख कारण है। हमने इसे स्वीकार कर लिया है। हम झंडे की पूजा करते हैं। धर्म के द्वारा भी विभाजन किये जाते हैं—ईसाई, बौद्ध आदि। क्या हम 'जो है' के यथार्थ का अवलोकन कर उससे मुक्त हो सकते हैं ? आप इससे तभी मुक्त हो सकते हैं जब हमारा मन जो भी देखता है उसे वह विकृत न करे।

प्रश्नकर्ता : वास्तविक अवलोकन व वैचारिक अवलोकन में क्या अन्तर है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : क्या आप एक वृक्ष को वैचारिक रूप से देखते हैं या उसे वास्तविक रूप से देखते हैं ? जब आप किसी फूल को देखते हैं तब आप उसे सीधे देखते हैं या उसे अपने वनस्पति-ज्ञान या अन्य संबंधित जानकारी अथवा उससे मिलनेवाले सुख के माध्यम से देखते हैं ? आप उसे कैसे देखते हैं ? यदि आप उसे किसी धारणा के माध्यम से देखते हैं तो यह विचारों से देखना हुआ । क्या यह सही देखना है ? क्या आप अपनी पत्नी को या पति को देखते हैं या उसकी छवि को, जो आपने मन में बना रखी है, उसको ही देखते हैं ? वह छवि एक धारणा है । उसके माध्यम से देखने का अर्थ हुआ वैचारिक रूप से देखना । परन्तु जब आप बिना किसी छवि के माध्यम से देखते हैं तब आपका देखना वास्तविक होता है, तभी आप वस्तुत: संबंधित होते हैं ।

अत: वह कौन सा रचना-तंत्र है, जो इन छवियों का निर्माण करता है, जिसके कारण हम किसी वृक्ष को, पत्नी या पति को या मित्र या अन्य किसीको सही रूप में देखने से वंचित रह जाते हैं ? निश्चित रूप से मेरे बारे में भी आपने एक छवि बना रखी है (क्षमा करें, मैं ग़लत भी हो सकता हूँ), नहीं बना रखी है क्या ? यदि आपने वक्ता की सचमुच एक छवि बना रखी है तो आप उसे कतई नहीं सुन रहे हैं और जब आप अपनी पत्नी या पति को किसी छवि के माध्यम से देखते हैं तो आप उसे नहीं, अपितु उसकी छवि को देख रहे होते हैं । इस प्रकार का देखना वास्तविक देखना नहीं है और इसलिए वहाँ 'संबंध' नाम की कोई वस्तु नहीं है, भले ही आप कहते चले जाएँ "मैं तुमसे प्यार करता हूँ"—लेकिन इसका कोई अर्थ नहीं है ।

क्या मन, छवि बनाना, जिसकी हमने चर्चा की है, बन्द कर सकता है ? यह तभी संभव है जब मन क्षण-क्षण पूर्ण रूप से सजग हो, चुनौती तथा किसी भी प्रभाव के क्षणों में एकदम सावधान हो । उदाहरण के लिए किसीने आपकी खुशामद की जो आपको पसन्द आयी और वह पसन्द ही एक छवि बन गयी । लेकिन यदि आप उस खुशामद को पूरी सजगता से, उसे न तो पसन्द करते हुए और न नापसन्द करते हुए, समग्रता से सुनें तो कोई छवि ही न बनेगी । ऐसी अवस्था में आप उसे न मित्र कहेंगे, न शत्रु । छवियों का निर्माण सजगता के अभाव में होता है । जहाँ सजगता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वहाँ छवि नहीं बनती । आप यह करके देखें । यह बड़ा आसान है । इस प्रकार जब आप किसी वृक्ष, या फूल या बादल को पूर्ण होश के साथ देखते हैं तब वहाँ न तो आपकी कोई धारणा होती है और न आपका वनस्पति-शास्त्र का ज्ञान ही । वहाँ तो सिर्फ देखना मात्र रहता है, जिसका अर्थ यह नहीं कि आप खुद वृक्ष बन जाते हैं । यदि आप अपनी पत्नी या पति या मित्र को बिना किसी छवि के देखते हैं तब हमारे संबंधों का कुछ दूसरा ही अर्थ होता है । तब उनमें विचार प्रवेश नहीं करते और इसीलिए वहाँ प्रेम की संभावना होती है ।

प्रश्नकर्ता : क्या स्वतंत्रता और प्रेम साथ-साथ होते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या हम बिना स्वतंत्रता के प्रेम कर सकते हैं ? यदि हम स्वतंत्र नहीं हैं तो क्या हम प्रेम कर सकते हैं ? यदि हम ईर्ष्यालु हैं, भयभीत हैं तो क्या हम प्रेम कर सकते हैं ? अथवा हम दिनभर अपनी किसी विशेष महत्त्वाकांक्षा के पीछे रहें और शाम को घर आकर पत्नी से कहें, 'प्रिये, मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ'—क्या वह प्रेम है ? हम अपने ऑफिस में क्रूरता और धूर्तता का व्यवहार करें और घर पर नम्र और प्रेमपूर्ण बनने का प्रयत्न करें, क्या यह सभव है ? एक हाथ से हत्या करना और दूसरे से प्यार करना क्या संभव है ? क्या कोई महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति कभी प्रेम कर सकता है ? क्या कोई प्रतिस्पर्धा से भरा व्यक्ति कभी यह जान सकता है कि प्रेम का अर्थ क्या है ? हम तो सारी की सारी सामाजिक नैतिकता स्वीकार कर लेते हैं । अत: जब तक हम पूर्णतया अपनी समग्रता से इस तथाकथित सामाजिक नैतिकता को अस्वीकार न कर दें तब तक हम सही अर्थों में नैतिक नहीं हो सकेंगे । परंतु हम ऐसा कभी नहीं करते । हम सामाजिक व नैतिक दृष्टि से प्रतिष्ठित बने रहना चाहते हैं । अत: हम यह नहीं जान पाते कि प्रेम क्या है । बिना प्रेम के न तो हम यह जान पाते हैं कि सत्य क्या है और न यह खोज पाते हैं कि परमात्मा है या नहीं । इस प्रेम को हम तभी जान पाते हैं जब हम मरना जान लेते हैं—कल से संबंधित प्रत्येक वस्तु के प्रति मर जाना, सुख, कामवासना तथा अन्य इच्छाओं की समस्त प्रतिमाओं के प्रति मर जाना । जहाँ प्रेम है वहीं सदाचार है, नैतिकता है, धार्मिकता है और तभी उस सत्य का आगमन हो सकता है जो असीम और अनन्त है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : समाज की रचना करनेवाला व्यक्ति अशांति में है। समाज को बदलने के लिए क्या आप व्यक्ति को समाज से अलग होने के लिए कह रहे हैं ताकि वह समाज पर आश्रित न रहे ?

कृष्णमूर्ति : क्या व्यक्ति ही समाज नहीं है ? इसकी रचना हमने ही अपने लोभ, अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपनी राष्ट्रीयता, अपनी स्पर्धा, क्रूरता और हिंसा से की है और यही हमारा बाहरी रूप है क्योंकि हम अन्दर से भी ऐसे ही हैं। वियतनाम में जो युद्ध चल रहा है उसके लिये आप और हम वस्तुत: जिम्मेदार हैं –क्योंकि हमने युद्ध को जीवन के एक ढँग के रूप में स्वीकार कर लिया है। क्या आप चाहते हैं कि आप समाज से अलग हो जायें ? आप स्वयं को स्वयं से कैसे अलग कर सकते हैं ? आप इस सम्पूर्ण अव्यवस्था और अराजकता के एक अंग हैं और आप इस कुरूपता, हिंसा आदि से तभी मुक्त हो सकेंगे जब आप इन सबको अपने अन्दर ही देखना और समझना सीखेंगे। आप स्वयं को स्वयं से अलग नहीं कर सकते। क्योंकि वह सत्ता कौन है जो मुझे मुझसे या मुझे समाज से अलग करेगी ? क्या वह मेरा ही एक अंग नहीं है ? यह सब समझना—यह समझना कि 'द्रष्टा' 'दृश्य' से अलग नहीं है—ध्यान है। इसके लिए आवश्यक है स्वयं में अत्यन्त गहरे उतरने की प्रचण्ड शक्ति। वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, प्रकृति तथा सम्पत्ति के साथ के अपने संबंधों में स्वयं की प्रतिक्रियाओं का सजगता से अवलोकन करने पर ही एक गहरी आन्तरिक स्वतंत्रता का आगमन होता है।

लन्दन, मार्च 20,1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3

ध्यान

खोज का अर्थ : अभ्यास और नियंत्रण में निहित समस्याएँ, मौन की गुणवत्ता

मैं आज एक ऐसी चीज के बारे में आपसे चर्चा करना चाहूँगा जो मेरी दृष्टि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और जिसे समझ लेने से सम्भवत: हम जीवन को उसके समग्र रूप में देख सकेंगे तथा प्रत्येक कार्य पूर्णता, स्वतंत्रता और आनन्द के साथ कर सकेंगे ।

हम सदैव किसी रहस्य की खोज में रहते हैं, क्योंकि हम अपने जीवन जीने के ढंग एवं अपनी छिछली क्रियाओं से, जिनका वस्तुत: कोई अर्थ नहीं है, अत्यधिक असन्तुष्ट हैं । हम इन्हें कुछ अर्थ, कुछ महत्त्व देने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु यह मात्र एक बौद्धिक कार्य होने के कारण अन्तत: छिछला और अर्थहीन होकर रह जाता है । हम जानते हैं कि हमारे सारे सुख एक दिन समाप्त हो जानेवाले हैं तथा हमारे रोजाना के कार्य यांत्रिक तथा हमारी समस्याएँ कभी हल नहीं होनेवाली हैं । हमारा परम्परागत मूल्यों में, शिक्षकों तथा गुरुओं में, धर्म तथा समाज की स्वीकृतियों में कतई विश्वास नहीं है । हममें से अधिकांश व्यक्ति एक ऐसी वस्तु की खोज में प्रयत्नशील हैं जो सचमुच कीमती हो, जिसे हमारे विचार स्पर्श न कर सकें और जिसमें एक अनूठी सुन्दरता हो, गहरा आनन्द हो । हममें से बहुत से व्यक्ति एक ऐसी वस्तु की तलाश में हैं जो कभी समाप्त न हो सके, जो दूषित न की जा सके । हम ऊपरी बातों को एक ओर रख दें तो देखेंगे कि हमारे अन्तर में एक गहरी प्यास—मात्र भावुकता अथवा भाव-प्रवणता नहीं—एक गहरी जिज्ञासा विद्यमान है, जो किसी ऐसे रहस्य का उद्घाटन कर सकती है, जिसे हमारे विचार न माप सके तथा जिसको किसी विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास या श्रद्धा की श्रेणी में न रखा जा सके। परन्तु क्या इस खोज या प्रयास का कोई अर्थ है ?

आज हम ध्यान के प्रश्न पर चर्चा कर रहे हैं, जो अत्यन्त जटिल है और इसकी छानबीन करने के पूर्व हमें यह स्पष्ट रूप से जान लेना जरूरी है कि सत्य को पाने के लिए की जानेवाली इस खोज के क्या मानी हैं ? हमें इस खोज, इस चाह का अर्थ समझना होगा। हमें उस बौद्धिक भटकन को समझना होगा जो किसी ऐसी वस्तु को लेकर है, जिसे समय स्पर्श नहीं कर सकता और हमारी माँगों, जरूरतों तथा निराशाओं की उपज नहीं है। क्या सत्य कभी खोजने से मिल सकता है ? और मिल जाने पर क्या यह पहचाना जा सकता है ? यदि किसीको 'सत्य' मिल गया तो क्या वह कह सकता है—'यही सत्य है', 'यही यथार्थ है ?' क्या खोज का वस्तुतः कोई अर्थ है ? हमारे अधिकांश धार्मिक व्यक्ति सत्य की खोज के संबंध में सदैव चर्चा करते हैं और हम पूछ रहे हैं कि क्या 'सत्य' को खोजा जा सकता है ? इस खोज के विचार के साथ ही पहचानने का विचार भी जुड़ा है कि जिसे मैं प्राप्त कर लूँ, उसे पहचान लूँ। क्या इस पहचान से यह नहीं ध्वनित होता कि पानेवाले को पहले से ही उस वस्तु का ज्ञान है ? यदि सत्य का पहले से ही ज्ञान है और वह पुनः पहचाना जा सकता है तो फिर सत्य की खोज का महत्त्व ही क्या रहा ? और यदि इसका कोई महत्त्व नहीं तो क्या अवलोकन तथा श्रवण का महत्त्व है ? जब सतत अवलोकन किया जाता है तब समय की गति रुक जाती है। अवलोकन का अर्थ है—साफ-साफ़ देखना। स्पष्ट अवलोकन के लिए आवश्यक है : क्रोध तथा शत्रुता से मुक्ति, पूर्वाग्रह, ईर्ष्या तथा समस्त स्मृतियों से मुक्ति। जब हमारा अवलोकन इतना गुणवत्तापूर्ण व स्वतंत्र होता है जो केवल बाहरी जगत् के प्रति ही नहीं, अपितु आन्तरिक जगत् के प्रति भी सतत जागृत होता है और जो देखता है कि कहाँ क्या घटित हो रहा है, तब इस खोज की आवश्यकता ही क्या रह जाती है ? क्योंकि वहाँ सब कुछ विद्यमान है—'जो है', 'सत्य' है, और उसका अवलोकन हो रहा है। लेकिन ज्योंही हम 'जो है' को किसी दूसरे में बदलना चाहते हैं त्योंही विकृति की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। बिना किसी विकृति, बिना किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यांकन, बिना सुख की किसी इच्छा के स्वतंत्रतापूर्वक किये गये अवलोकन से 'जो है' उसका रूपान्तरण हो जाता है ।

हममें से अधिकांश व्यक्ति अपने जीवन को ज्ञान, मनोरंजन, आध्यात्मिक आकांक्षाओं तथा विश्वास से भरने का प्रयत्न किया करते हैं—जिसका कोई महत्त्व नहीं है । हम कुछ ऐसी अनुभूति चाहते हैं जो श्रेष्ठतम हो, सांसारिक वस्तुओं से परे हो, विराट् हो, देश और काल के परे हो । उस अनन्त का अनुभव करने के लिये हमें अनुभव के अर्थ को समझना होगा । हम अनुभव चाहते ही क्यों हैं ?

पुस्तकालय

वक्ता जो कुछ कह रहा है कृपया आप उसे न तो स्वीकार करें और न अस्वीकार । आप उसकी बातों की जाँच करें । हम इसे फिर से दुहरा दें कि वक्ता का कोई महत्त्व नहीं है । वह तो एक टेलिफोन जैसा है । आप उसे सुनते हैं । आप उसका आज्ञा-पालन नहीं करते । यदि आप केवल ध्यान से सुनें, जिसका अर्थ है : बिना सहमति अथवा असहमति के प्रेम से सुनना, यह जानने के लिये सहज रूप से सुनना कि वक्ता का कथन सारपूर्ण है भी या नहीं । आप न तो उसे मान लें, न उसे इन्कार कर दें । आप तो केवल देखें और सुनें—जो कहा जा रहा है केवल उसे ही नहीं, अपितु उसे भी जो आपके भीतर घटित हो रहा है । आप देखें कि आपकी प्रतिक्रियाएँ, आपकी विकृतियाँ, आपके पूर्वाग्रह, आपके मत, आपकी प्रतिमाएँ, आपके अनुभव किस प्रकार आपको सुनने और देखने से रोक रहे हैं ?

हम पूछ रहे हैं—अनुभव का क्या महत्त्व है ? क्या सचमुच ही इसका कोई महत्त्व है ? क्या अनुभव उस मन को जगा सकता है जो सोया हुआ है, जो किन्ही निष्कर्षों पर पहुँच चुका है और उनसे स्वयं ही बँध चुका है ? क्या अनुभव ऐसे मन को जगा सकता है ? उसके ढाँचे को गिरा सकता है ? वह मन जो स्वयं संस्कारों से बुरी तरह बँधा है, अपनी अनगिनत समस्याओं, निराशाओं, दुखों से लदा है, क्या किसी नयी चुनौती का उत्तर दे सकता है ? और यदि वह देता भी है तो क्या वह उत्तर अपर्याप्त न होगा तथा और अधिक संघर्षों को पैदा न करेगा ? अतः अधिक विशाल, अधिक गहन तथा अलौकिक अनुभव की खोज करने का अर्थ होगा स्वयं से, स्वयं की वास्तविकताओं से, स्वयं के संस्कारबद्ध मन से पलायन करना । ऐसा मन, जो असाधारण रूप से सजग है, बुद्धिमान्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, मुक्त है, भला किसी अनुभव की इच्छा ही क्यों करेगा ? प्रकाश तो प्रकाश है, वह ज्यादा प्रकाश क्यों चाहेगा ? अतः अधिक अनुभव की इच्छा करने का अर्थ है यथार्थ से यानी 'जो है' उससे पलायन ।

यदि हम इस कभी न समाप्त होनेवाली खोज से तथा इस किसी अद्‌भुत अनुभव की चाह व माँग से मुक्त हो जायें तो हम यह पता लगा सकते हैं कि ध्यान क्या है । 'ध्यान' शब्द भी 'प्रेम', 'मृत्यु', 'सौन्दर्य', 'आनन्द', शब्दों की ही तरह एक बोझिल शब्द है । विश्व में ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं जो आपको 'ध्यान' सिखाती हैं । परन्तु ध्यान को ठीक-ठीक समझने के लिए नेक आचरण की नींव रखना जरूरी है । नेक आचरण की नींव के बिना ध्यान आत्मसम्मोहन का एक रूप बन जाता है । बिना क्रोध, स्पर्धा, ईर्ष्या, लोभ, स्वामित्व, घृणा, सफलता की इच्छा आदि से मुक्त हुए तथा बिना सही-सही रूप में विकृति, भय, चिन्ता, लोभ से मुक्त जीवन जिये ध्यान की नींव नहीं रखी जा सकती और इस नींव के बिना ध्यान का कोई अर्थ नहीं । अत: सदाचार क्या है ? नैतिकता क्या है ? इस पर विचार करना जरूरी है । कृपया आप यह न सोचें कि ये प्रश्न अर्थहीन हैं उस समाज में जो अराजक और स्वेच्छाचारी है । उस समाज से हमारा कोई लेना-देना नहीं है । हमारा संबंध तो एक ऐसे जीवन से है जो पूर्णतया भय से मुक्त हो और असीम और गहरे प्रेम का सामर्थ्य रखता हो । इसके बिना ध्यान एक पलायन है और कोई उत्तेजक औषधि लेने जैसा ही है, जैसा कि बहुत से लोग करते हैं और कुछ समय के लिए अनूठा अनुभव प्राप्त करते हैं परंतु एक छिछला जीवन जीते हैं । यह सम्भव है कि जो लोग ऐसे ड्रग लेते हैं उन्हें कुछ अनोखे अनुभव होते हों, उन्हें कुछ अधिक रंग दिखते हों, वे कुछ अधिक संवेदनशील हो जाते हों और उस रासायनिक अवस्था में वे सम्भवत: 'द्रष्टा' और 'दृश्य' के बीच के अन्तराल के बिना देख पाते हों । लेकिन जब यह रासायनिक प्रभाव समाप्त हो जाता है तब वे पुन: अपने भय और नीरसता भरे जीवन में लौट आते हैं । अत: उन्हें बार-बार ये ड्रग लेने पड़ते हैं ।

जब तक सदाचार की नींव नहीं रखी जाती तब तक ध्यान केवल मन को नियंत्रित व शान्त करने की तथा इसे एक निश्चित प्रणाली के अनुसार चलाने की युक्ति मात्र बनकर रह जाता है । लेकिन ऐसा मन, चाहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कुछ भी करें, चाहे कितनी ही पद्धतियों का अनुसरण करें, क्षुद्र, छिछला और संस्कारबद्ध ही रहेगा। अतः हमें यह छानबीन करनी चाहिए कि सम्यक् आचरण क्या है। क्या यह आचरण हमारे आसपास के परिवेश के संस्कारों का परिणाम है जिसमें हम बड़े होते हैं और उसीके अनुसार बर्ताव करते हैं ? क्या यह सदाचार है ? अथवा क्या सदाचार इस लोभ, ईर्ष्या और स्पर्धायुक्त सामाजिक नैतिकता से, जो अत्यन्त सम्माननीय मानी जाती है, मुक्ति पाने में है ? क्या सदाचार साधा जा सकता है ? और यदि साधा जा सकता है तो क्या यह एक यांत्रिक वस्तु मात्र नहीं रह जाएगी, जिसका कुछ भी अर्थ नहीं है ? सदाचार एक ऐसी वस्तु है जो जीवन्त है, प्रवहमान है तथा जो क्षण-क्षण स्वयं को नूतन किये जा रही है। इसे समय की धारा में नहीं बाँधा जा सकता। जिस प्रकार नम्रता साधी नहीं जा सकती, उसी प्रकार सदाचार भी नहीं साधा जा सकता। आप नम्रता साधने के लिये कितना भी प्रयत्न कीजिए फिर भी आप अहंकारी ही रहेंगे। यदि हमने एकदम स्पष्टता से अपने 'अहंकार' तथा 'गर्व' को देखा तो इस देखने में ही अहंकार और गर्व विसर्जित हो जाते हैं और नम्रता का आगमन होता है। क्या आपने यह सब समझ लिया है ? यदि हाँ, तो फिर ध्यान के संबंध में चर्चा करें। यदि आप यह सब अत्यन्त गम्भीरता से, समग्रता से नहीं समझ लेते तो फिर ध्यान के संबंध में चर्चा करने का कुछ भी अर्थ नहीं होगा। ध्यान क्या है ? यदि इसे आप समझ लेते हैं तो यह एक अदभुत बात होगी; लेकिन आप इसे सम्भवतः तभी समझ सकेंगे जब आप इस खोज, भटकन व चाह से मुक्त हो जाएँगे तथा हर प्रकार की पकड़ को छोड़ देंगे। आप ध्यान को तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि आप अनुभव की माँग करते रहेंगे तथा अपनी भीतरी गड़बड़ी व अव्यवस्था को पूरी तरह समझ नहीं लेंगे। अव्यवस्था के समग्र अवलोकन से एक ऐसी व्यवस्था का आगमन होता हैं जो कोई ढाँचा नहीं है। यह अवलोकन ध्यान का ही अंग है। यदि आपने यह सब समझ लिया तब हम ध्यान क्या है यह जान सकते हैं और साथ-साथ यह भी जान सकते हैं कि ध्यान क्या नहीं है; क्योंकि असत्य की अस्वीकृति के साथ ही सत्य का उद्घाटन होता है।

कोई भी प्रणाली या तरीका जो आपको ध्यान सिखाता है, निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से गलत है। यदि आप बुद्धि तथा तर्क का उपयोग करें तो आपको ज्ञात होगा कि यदि कुछ पाने के लिए किसी प्रणाली का, चाहे वह कितनी ही उत्तम, कितनी ही प्राचीन अथवा कितनी ही प्रसिद्ध क्यों न हो बार-बार अभ्यास करें तो आप स्वयं को यांत्रिक बना लेंगे। ध्यान में साध्य साधन से भिन्न नहीं है, जब कि प्रणाली आपको कुछ देने का आश्वासन देती है। वह किसी साध्य का साधन है। यदि साधन यांत्रिक है तो साध्य भी यांत्रिक होगा। अत: ध्यान के लिए आपको समस्त प्रणालियों तथा साधनों से पूर्णतया मुक्त होना होगा। यह अस्वीकृति ही—असत्य की अस्वीकृति—ध्यान का प्रारम्भ है। अनेक व्यक्ति हैं जो सजगता का भी अभ्यास करते हैं। क्या आप सजगता का अभ्यास कर सकते हैं? यदि आप सजगता का अभ्यास करते हैं तो आप पूरे समय असजग ही बने रहेंगे। अत: आप सजगता का अभ्यास न कर अपनी असजगता के प्रति सजग रहें। असजगता के प्रति सजग रहने से सजगता का आगमन होगा। सजगता अभ्यास की वस्तु नहीं है। कृपया इसे आप अच्छी तरह समझ लें। यह बहुत ही स्पष्ट और आसान है। इसके लिए आपको बर्मा, चीन या भारत जाने की आवश्यकता नहीं है। वे देश भले ही आपको आकर्षित करें, पर वहाँ वास्तविकता नहीं है। मुझे याद है—मैं एक बार भारत में कुछ व्यक्तियों के साथ कार से यात्रा कर रहा था। मैं आगे चालक के पास बैठा हुआ था। पीछे तीन व्यक्ति बैठे हुए थे, जो सजगता के संबंध में बहस कर रहे थे और चाह रहे थे कि मैं भी उसमें भाग लूँ। कार बहुत तेज भाग रही थी। एक बकरी सड़क पर थी और चालक ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। कार उस बेचारे जानवर को कुचलती हुई निकल गयी। मेरे पीछे बैठे लोग तब भी सजगता पर चर्चा किये जा रहे थे। उन्हें मालूम ही नहीं पड़ा कि क्या घटित हुआ। आप भले ही हँसें, पर हम सभी वही किये जा रहे हैं। हम बौद्धिक रूप से भले ही सजगता से सरोकार रखते हों, भले ही इसके संबंध में हम बड़ी-बड़ी चर्चाएँ कर लें, परन्तु वस्तुत: जो घटित हो रहा है हम उसके प्रति सजग नहीं हैं।

ध्यान तो एक जीवन्त वस्तु है। उसका अभ्यास से कोई संबंध नहीं। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि विचारों को कैसे नियन्त्रित करें? विचार सभी ओर भटकते रहते हैं। आप किसी वस्तु पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करना चाहते हैं और विचार दूसरी ओर चले जाते हैं । आपको कहा जाता है कि आप विचारों को नियंत्रित करने का अभ्यास करें । आप किसी चित्र, किसी वाक्य अथवा किसी अन्य वस्तु के बारे में ही सोचें, एकाग्र हों, परन्तु आपका मन दूसरी ओर भाग-भाग जाता है । और आप हैं कि उसे पुन:-पुन: खींच लाते हैं । यह संघर्ष चलता रहता है । अत: प्रश्न यह उठता है—इन विचारों को नियंत्रित करने की क्या सचमुच आवश्यकता है ? और वह कौन है जो विचारों को नियन्त्रित करना चाह रहा है ? कृपया इसे आप अच्छी तरह समझ लें । जब तक आप यह प्रश्न नहीं समझ लेते, तब तक आप ध्यान का अर्थ भी नहीं समझ सकते । जब कोई कहता है—"मुझे अपने विचारों को नियंत्रित करना ही है" तब यह 'नियंत्रक' यह 'द्रष्टा' कौन है ? क्या 'द्रष्टा' उस वस्तु से भिन्न है, जिसे वह नियंत्रित करना चाहता है, एक विशिष्ट आकार देना चाहता है या उसे बदलना चाहता है ? क्या वे दोनों एक ही नहीं हैं ? जब 'विचारकर्ता' यह देख लेता है कि वही स्वयं 'विचार' है, जैसा कि वह वस्तुत: है ही, तब क्या घटित होता है ? जब अनुभवकर्ता स्वयं ही 'अनुभव' है तब करने को रह भी क्या जाता है ? क्या आप प्रश्न समझ रहे हैं ? 'विचारकर्ता' ही 'विचार' है और विचार भटक रहा है, तब विचारकर्ता स्वयं को अलग समझकर कहता है—"मैं विचार को नियंत्रित करके ही रहूँगा ।" क्या 'विचारकर्ता', 'विचार' से अलग है ? यदि 'विचार' नहीं है तो क्या 'विचारकर्ता' रहेगा ?

जब 'विचारकर्ता' यह देख लेता है कि वही 'विचार' है तब क्या घटित होता है ? जब 'विचारकर्ता' ही 'विचार' है, 'द्रष्टा' ही 'दृश्य' है, तब सचमुच क्या घटित होता है ? उस अवस्था में कोई अलगाव नहीं है, कोई विभाजन नहीं है और इसीलिए वहाँ न कोई द्वंद्व है, और न विचार-नियंत्रण का प्रश्न । तब क्या घटित होता है ? तब क्या विचारों की भाग-दौड़ रह जाती है ? पहले विचार पर नियंत्रण था, विचार के प्रति एकाग्रता थी, और विचारकर्ता तथा विचार में संघर्ष था; और विचार की भाग-दौड़ लगातार चल रही थी । तब अचानक एक सचाई का उद्घाटन होता है—'विचारकर्ता' और 'विचार' दोनों एक ही हैं तब हमें पहली बार यह ज्ञात होता है कि विचार नाम की ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है जो भटकती है । यह तो तभी प्रकट होता है जब 'विचारकर्ता' स्वयं को 'विचार' से अलग समझता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन जब 'विचारकर्ता' यह समझ लेता है कि वही 'विचार' है तब भटकने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? कृपया आप इसकी गहराई में प्रवेश करें । इसे स्वीकार न कर लें । इसे आप स्वयं देखें । जब कभी प्रतिरोध होता है, तब द्वंद्व शुरू हो जाता है । यह प्रतिरोध पैदा करता है'विचारकर्ता' जो स्वयं को 'विचार' से अलग समझे बैठा है । परन्तु जब 'विचारकर्ता' यह समझ लेता है कि वही 'विचार' है तब प्रतिरोध का प्रश्न ही नहीं उठता । तब 'विचार' की भाग-दौड़ का भी प्रश्न नहीं उठता ।

इस पकार नियंत्रण तथा एकाग्रता की धारणा ही पूर्णतया बदल जाती है और तब रह जाती है केवल सजगता, जो इससे पूर्णतया भिन्न है । यदि कोई इस सजगता के सही रूप को समझे तो उसे स्पष्ट दिखाई देगा कि यह एकाग्रता से, जो मात्र पृथकता है, सर्वथा भिन्न है । तब आप पूछेंगे—क्या मैं बिना एकाग्रता के कुछ कर सकता हूँ ? क्या कुछ करने के लिए एकाग्रता की कोई जरूरत नहीं है ? क्या आप सजगता से कोई काम नहीं कर सकते ? सजगता का अर्थ है—पूर्णता से, अपने समग्र अस्तित्व से, अपने पूरे शरीर व समस्त ज्ञान-तंतुओं से, आँखों और कानों से, अपने समग्र मन व सम्पूर्ण हृदय से सुनना, समझना और देखना । इस प्रकार की पूर्ण सजग अवस्था में, जहाँ न कोई अलगाव है न कोई प्रतिरोध, आप जो चाहें कर सकते हैं । अब प्रश्न यह है कि क्या मन शांत हो सकता है, जिसमें मस्तिष्क समाविष्ट है—मस्तिष्क जो संस्कारों से बँधा है, मस्तिष्क जो सहस्त्रों-सहस्त्रों वर्षों के विकास का परिणाम है, मस्तिष्क जो स्मृतियों का भण्डार है । यह तभी सम्भव है जब हमारा पूरा मन ही शांत हो, चुप हो और तभी बोध तथा स्पष्ट अवलोकन सम्भव है । हमारा मन कैसे शांत हो, कैसे चुप हो ? शायद कभी आपने स्वयं यह महसूस किया हो कि किसी सुन्दर वृक्ष को अथवा किसी खूबसूरत बादल को, जो प्रकाश के तेज से आलोकित है, देखने का अर्थ है उसे पूर्णतया मौन होकर देखना । अन्यथा आप उसे सीधे-सीधे नहीं देख पायेंगे, आप उसे किसी प्रतिमा या सुख या किसी भूतकालीन स्मृति के माध्यम से देखेंगे, न कि यथार्थ रूप में ।

अत: प्रश्न यह है कि क्या मस्तिष्क के साथ समग्र मन पूर्णतया शांत हो सकता है ? गम्भीर और बड़े-बड़े विचारक भी यह प्रश्न पूछते हैं । वे भी इस प्रश्न को हल नहीं कर पाये हैं । वे इसके लिए कई युक्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकालते हैं—वे कहते हैं कि कुछ शब्दों को दोहराने से मन शान्त हो जाता है । क्या आपने कभी यह करके देखा है ? क्या 'आवे मैरिया' या संस्कृत के किसी शब्द या मन्त्र का जप करने से मन सचमुच शांत हो जाता है ? इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि शब्द कौन सा है— 'कोका कोला' हो या कोई दूसरा शब्द—आप उसमें लय पैदा कीजिये और दुहराते चले जाइयें । आप देखेंगे कि आपका मन शांत हो गया है; लेकिन यह जड़ मन है, न कि संवेदनशील, सृजनशील, सजग, प्रखर, जीवंत और आवेगपूर्ण मन । मन्द मन भले ही कहे कि "मुझे अलौकिक अनुभव हुआ है", वस्तुत: वह स्वयं को धोखा दे रहा है ।

अत: शब्दों को पुन:-पुन: दोहराने से, अथवा मन के दमन से, अथवा अन्य युक्तियों से मन सही रूप में शांत नहीं हो सकता । लेकिन जब कोई गहराई से अपने भीतर यह सब समझ लेता है तो मन सहज ही शांत हो जाता है और वहाँ वास्तविक बोध का जन्म होता है ।

हमारा यह समग्र मन, जिसमें मस्तिष्क शामिल है, कैसे पूर्णतया मौन हो ? कुछ लोग कहते हैं—अच्छी तरह से साँस लो, गहरी साँस लो, अधिक प्राणवायु अन्दर लो । रोज-रोज गहरी साँस लेने से क्षुद्र मन भले ही शांत हो जाये, फिर भी वह क्षुद्र ही रहेगा । अथवा आप मौन के लिए योग का अभ्यास करें जिसमें कई चीजें शामिल हैं । योग का अर्थ है कार्य में कुशलता । इसका संबंध केवल कुछ व्यायामों से ही नहीं है, यद्यपि इसकी आवश्यकता शरीर को स्वस्थ, सशक्त व संवेदनशील बनाये रखने के लिए है, अपितु जिसका संबंध सही खानपान से भी है, मांस इत्यादि नहीं खाना । अर्थात् कार्य में कुशलता के लिए आवश्यक है अत्यधिक संवेदनशीलता, शरीर का हल्कापन और सही भोजन का सेवन ।

हम देखते हैं कि हम आंतरिक और बाहरी अव्यवस्था में जी रहे हैं । हमारे लिए व्यवस्था आवश्यक है—एक ऐसी व्यवस्था जो गणित जैसी सुव्यवस्थित हो । और यह तभी सम्भव है, जब हम स्वयं इस अव्यवस्था को देखें, न कि व्यवस्था का कोई बना-बनाया ढाँचा स्वीकार कर लें, जिसे किसी दूसरे ने बनाया हो, अव्यवस्था के अवलोकन से—होशपूर्ण अवलोकन से—ही व्यवस्था का आगमन होता है । साथ ही हमारा मन असाधारण रूप से शांत हो, संवेदनशील हो, सजग हो, किसी शारीरिक तथा मानसिक आदत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बँधा न हो । मन इतना शांत कैसे बने ? यह प्रश्न कौन पूछ रहा है? क्या यह प्रश्न वही मन कर रहा है जो सतत बकबक कर रहा है ? जो इतना ज्ञान से भरा है ? क्या मन यह सब समझ रहा है ? मन तभी एकदम स्पष्ट देख सकता है जब वह स्वयं अत्यधिक शान्त हो । अत: मन का शांत होना बहुत जरूरी है । फिर मन पूछता है—मैं कैसे शांत होऊँ ? वस्तुत: यह प्रश्न ही गलत है । क्योंकि इस प्रश्न के पूछते ही मन किसी प्रणाली को ढूँढ़ने लग जाता है और इस प्रकार हमारी पूरी जाँच-पड़ताल ही समाप्त हो जाती है । मन जब ज़ोर-ज़बरदस्ती से शांत नहीं किया जाता है तब वह असाधारण रूप से सृजनशील, संवेदनशील और सजग होता है । परन्तु जब आप 'किस प्रकार' पूछते हैं तब द्रष्टा और दृश्य में विभाजन खड़ा हो जाता है ।

जब आप यह अच्छी तरह से समझ लेते हैं कि कोई साधन, कोई प्रणाली, कोई मंत्र, कोई गुरु तथा विश्व की अन्य कोई भी शक्ति आपको शांत नहीं कर सकती और जब आप इस सचाई को पूर्णतया समझ लेते हैं कि शांत मन समग्रता से देख सकता है, तब मन अद्‌भुत रूप से शांत हो जाता है । यह ऐसा ही है जैसे कि हम किसी खतरे को देखते हैं उससे अपना बचाव करते हैं । इसी प्रकार इस बोध के साथ ही कि मन का पूर्णतया शांत होना जरूरी है, मन शांत हो जाता है ।

मौन की 'गुणवत्ता' का बड़ा महत्त्व है । अत्यन्त छोटा-सा मन अत्यंत शांत हो सकता है । इसका एक छोटा-सा अन्तराल है और उसमें ही इसकी शांति है, जो बड़ी निर्जीव चीज है । आप जानते हैं न ? परन्तु वह मन, जिसका अन्तराल असीम है, जिसकी शांति एवं निश्चलता अनन्त है, जो 'मैं' अथवा 'द्रष्टा' के केन्द्र से मुक्त है, ऐसा मन पूर्णतया अलग ही गुणवत्ता लिये हुए होता है । उस मौन में 'द्रष्टा' कतई नहीं है । मौन की ऐसी गुणवत्ता में विशाल अन्तराल है । यह समस्त सीमाओं से परे और प्रचंड रूप से क्रियाशील है । मौन की वह क्रियाशीलता स्वकेन्द्रित क्रियाशीलता से सर्वथा भिन्न है । यदि मन वहाँ तक पहुँच जाए तो सम्भवत: वह, जिसे आप चाहें 'सत्य' कह लें अथवा 'ईश्वर' या 'अनन्त' या 'अमापनीय' या 'वर्णनातीत' या 'समयातीत' कह लें, जिसकी मनुष्य सदियों से खोज करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है, बिना आमन्त्रण के ही उपस्थित हो जाता है। ऐसा मनुष्य धन्य है, क्योंकि उसके लिए सत्य और आनंद उपस्थित है।

क्या हम इस चर्चा को जारी रखें या आप प्रश्न पूछना चाहेंगे ? संभवतः आप मुझसे पूछेंगे—"इस सबका हमारे रोजाना के जीवन में क्या उपयोग है ? मुझे जीवन जीना है, ऑफिस जाना है, मेरा परिवार है, मेरे वरिष्ठ अधिकारी हैं, प्रतिस्पर्धा है। इन सभी से इस चर्चा का क्या संबंध है ?" यदि सचमुच आप ऐसा प्रश्न करते हैं तो मैं कहूँगा कि जो कुछ आज कहा गया है उसे आपने समझा ही नहीं है। ध्यान हमारे दैनंदिन जीवन से कोई अलग वस्तु नहीं है। कमरे के एक कोने में जा बैठना और दस मिनट तक ध्यान करके बाहर आना और कसाई बन जाना—चाहे अपने काम से या अपने लक्षणों से—कतई ध्यान नहीं है। ध्यान जीवन की अत्यन्त गम्भीर चीजों में से एक है। आप इसे सारे दिन करते हैं—जब आप ऑफिस में या अपने परिवार के साथ हैं, जब आप किसीसे कहते हैं—"मैं तुमसे प्रेम करता हूँ" जब आप अपने बच्चों की फिक्र करते हैं, जब आप उन्हें सैनिक बनने की, मरने या मारने की, या राष्ट्रभक्त बनने की, या झंडे को पूजने की या उन्हें आधुनिक समाज के ढाँचे में प्रवेश करने की शिक्षा देते हैं तब यह सब करते हुए 'स्वयं' का तथा स्वयं की गतिविधि का अवलोकन करना ध्यान का ही अंग है। और जब आप इस प्रकार ध्यान करेंगे तो आप इसमें एक असाधारण सौन्दर्य पायेंगे। तब आपसे प्रति क्षण सही काम होगा और यदि किसी क्षण आप चूक भी गये तो पश्चात्ताप में समय न खोकर आप उसे तुरन्त दूसरे ही क्षण ठीक कर लेंगे। ध्यान जीवन का—रोजाना के जीवन का—ही एक अंग है, जीवन से अलग-थलग नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्या आप हमें आलस्य के बारे में बताएँगे ?

कृष्णमूर्ति : पहले तो हम यह देखें, आलस्य में क्या बुराई है ? हम फुरसत को कहीं आलस्य न समझ लें। हममें से अधिकांश व्यक्ति दुर्भाग्य से आलसी हैं, मन्द हैं, इसलिये हम स्वयं को सक्रिय बनाने के लिए बाध्य करते हैं। इससे हम और आलसी हो जाते हैं। मैं आलस्य का जितना ज्यादा प्रतिरोध करता हूँ उतना ही ज्यादा आलसी हो जाता हूँ। इसके विपरीत, प्रातः जगने पर आप अपने भारी आलस को—काम न करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा को—देखें और खोजें कि आपका शरीर इतना आलसी क्यों हो गया है। हो सकता है कि अधिक भोजन करने से, अधिक यौन-सुखोपभोग करने से या पिछले दिन बहुत अधिक कार्य करने से, आपका शरीर बेहद सुस्ती महसूस कर रहा हो और कह रहा हो—"परमात्मा के लिये मुझे थोड़े समय के लिए अकेला छोड़ दो।" परन्तु आप तो उसे फटकारते हैं और बाध्य करते हैं, उसे सक्रिय करते हैं। इसके बजाय कि आप अपने जीने का ढँग सुधारें, आप सक्रिय बने रहने के लिए गोलियों का सेवन किये चले जाते हैं। लेकिन यदि आप अवलोकन करें तो आपको ज्ञात होगा कि शरीर की भी अपनी एक चेतन प्रज्ञा है। शरीर की प्रज्ञा का अवलोकन करने के लिए अत्यधिक प्रज्ञा होनी चाहिए हमारे पास। हम अपने शरीर के साथ बड़ी जबरदस्ती करते हैं; हम मांस खाते हैं, शराब पीते हैं, धूम्रपान करते हैं और न जाने क्या-क्या करते हैं और इस प्रकार हमारा शरीर अपनी स्वाभाविक आधारभूत प्रज्ञा खो देता है। हमारा शरीर प्रज्ञापूर्वक काम कर सके इसके लिये यह जरूरी है कि हमारा मन प्रज्ञावान् बने तथा वह शरीर के साथ हस्तक्षेप न करे।

फुरसत के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। आज लोगों को अत्यधिक फुरसत मिल रही है—विशेषकर उन्हें जो समृद्ध हैं। इस फुरसत का उपयोग कैसे किया जाय, यह एक समस्या बन गयी है। अधिक-से-अधिक मनोरंजन, अधिक सिनेमा, अधिक टेलीविजन, अधिक पुस्तकें, अधिक गपशप, अधिक नौका-विहार, अधिक क्रिकेट आदि-आदि हमारे फुरसत के समय को भर रहे हैं। धार्मिक जगत् कहता है : "आप प्रार्थना करें और इस रिक्तता को भगवान् से भरें।" यह भी एक प्रकार का मनोरंजन ही तो है। कुछ लोग फुरसत का उपयोग अन्तहीन चर्चाओं में करते हैं। आपके पास फुरसत है। आप इसका उपयोग कैसे करेंगे—आन्तरिक जगत् में प्रवेश करने के लिये या बाहरी जगत् में प्रवेश करने के लिए। परन्तु जीवन केवल आंतरिक नहीं है, वह तो एक प्रवाह है जो सतत अन्दर व बाहर की ओर गतिमान् है। क्या इस फुरसत का उपयोग आप अधिक ज्ञान अर्जित करने में, पुस्तकों को उद्धृत करने में, व्याख्यान देने में (जैसा कि मैं दुर्भाग्य से कर रहा हूँ) करेंगे या अपने ही भीतर बहुत गहरे प्रवेश करने में? अन्दर गहराई से प्रवेश कर सकने के लिये बाहर को समझ लेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरी है । जितना ज्यादा आप बाहरी विश्व को समझ सकेंगे—जिसका अर्थ केवल चन्द्रमा की दूरी जान लेना अथवा तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर लेना ही नहीं है, अपितु समाज तथा देशों की बाहरी गतियाँ—युद्ध, घृणा आदि को भी जानना है—उतना ही ज्यादा आप भीतर भी जा सकेंगे और उस भीतरी गहराई की कोई सीमा नहीं है । आप यह न कहें कि मेरी यात्रा पूरी हो गयी, ज्ञान मिल गया । ज्ञान किसी दूसरे द्वारा दिया नहीं जा सकता । ज्ञान का आगमन तो तब होता है जब हम भ्रांति को समझ लेते हैं और भ्रांति को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम उसे देखें ।

प्रश्नकर्ता : जब आप कहते हैं कि विचारकर्ता और विचार अलग-अलग नहीं हैं और दूसरा सोचता है कि वे अलग हैं तब संघर्ष उत्पन्न होता है और इससे मन अशान्त हो जाता है । अशान्त मन यह नहीं समझ सकता कि विचारक ही विचार है । कृपया बतायें कि यह विभाजन प्रारम्भ कैसे होता है ? विचार अपने विरुद्ध कैसे लड़ सकता है ? और यदि कोई सोचता है कि विचारकर्ता अलग है तथा इस तरह वह विचार को नियंत्रित करने की कोशिश करता है, जो वस्तुत: संघर्ष और मन की जटिलता को ही उत्पन्न करता है और इससे मन की निश्चलता नहीं आ सकती, तो जो बात मेरी समझ में नहीं आती वह यह है कि यदि विचारकर्ता ही विचार है तो विचारकर्ता और विचार के बीच यह अलगाव पैदा ही कैसे होता है ।

कृष्णमूर्ति : जब विचारकर्ता और विचार दोनों वस्तुत: एक ही हैं तो उनके बीच यह अलगाव कैसे पैदा हो जाता है ? क्या आपके साथ ऐसा घटा है ? विचारकर्ता व विचार दोनों क्या सचमुच ही आपके लिए एक हैं ? या आप सोच रहे हैं कि ये एक होने चाहिए । यह समझनें के लिए बहुत ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता है । जिसका अर्थ है : जब आप किसी वृक्ष को देखें तो आप इतनी शक्ति से देखें कि वहाँ आप और वृक्ष में किसी भी प्रकार का अलगाव ही न रहे । इसके लिये प्रचण्ड ऊर्जा की आवश्यकता है । तब वहाँ न तो विभाजन होता है, न संघर्ष और न ही नियंत्रण । परन्तु हममें से अधिकांश व्यक्ति यह मान लेते हैं कि विचारकर्ता विचार से भिन्न है और इसीसे द्वंद्व पैदा होता है ।

प्रश्नकर्ता : हम स्वयं को इतना जटिल क्यों पाते हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : इसलिये कि हमारा मन अत्यन्त पेचीदा है । है न ? हम सरल व्यक्ति नहीं हैं जो सरलता से वस्तुओं को देखते हों । हमारा मन जटिल है और समाज भी हमारी ही तरह अधिकाधिक जटिल बनता जा रहा है । किसी बहुत पेचीदा वस्तु को समझने के लिए बहुत सरल होना जरूरी है । जब हम किसी अत्यंत कठिन समस्या को समझना चाहते हैं, तब हम केवल उस समस्या को देखें, न कि सारे निष्कर्ष, सारे उत्तर, सारे अनुमान और तमाम सिद्धान्तों को बीच में लायें । जब आप समस्या का अवलोकन करते हैं और जानते हैं कि समाधान समस्या में ही निहित है तब आपका मन एकदम सरल हो जाता है । सरलता अवलोकन में है, न कि समस्या में, जो अत्यन्त जटिल हो सकती है ।

प्रश्नकर्ता : मै किसी वस्तु को, प्रत्येक वस्तु को पूणता में कैसे देखूँ ?

कृष्णमूर्ति : मनुष्य का स्वभाव ही वस्तुओं को आंशिक रूप से देखने का हो गया है । वह वृक्ष को, पत्नी को, ऑफिस के अधिकारी को, प्रत्येक वस्तु को अलग-अलग रूप में, अलग-अलग टुकड़े में देखता है । पूछा गया है—"मैं कैसे इस विश्व को, जिसका मैं भी एक अंग हूँ, बिना किसी अलगाव के पूर्णता से, समग्रता से देखूँ ?" अब कृपया आप जरा ध्यान से सुनें—इस प्रश्न का उत्तर कौन देगा ? कौन आपको बताएगा कि आप कैसे देखें ? क्या वक्ता ? आपने प्रश्न पूछा और अब आप इसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर किससे ? यदि आपका प्रश्न सचमुच अत्यन्त गम्भीर है (मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आपका प्रश्न गलत है) तो कृपया देखें कि समस्या क्या है । समस्या है—"मैं वस्तुओं को पूर्णता से नहीं देख सकता क्योंकि मैं प्रत्येक वस्तु को खंडित रूप में देखता हूँ" । मन वस्तुओं को खंडित रूप में क्यों और कब देखता है ? पत्नी से प्रेम और अपने वरिष्ठ अधिकारी से नफरत क्यों ? आप समझ रहे हैं ? यदि मैं पत्नी से प्रेम करता हूँ तो प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करूँगा । नहीं ? आप हाँ न कहें ! क्योंकि आप ऐसा नहीं करते । आप अपनी पत्नी तथा बच्चों को प्यार नहीं करते हैं, भले ही आप इस संबंध में बातें करें । यदि आप अपनी पत्नी व बच्चों को प्यार करते होते तो आप उन्हें एक अलग प्रकार की शिक्षा देते, आप उनकी चिंता करते—आर्थिक नहीं, परंतु एक अलग प्रकार की । जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम है वहाँ अलगाव नहीं है; आप समझ रहे हैं श्रीमान् ? जब आप किसी से नफरत करते हैं तब वहाँ अलगाव है; तब आप चिंतित, लोभी, ईर्ष्यालु, क्रूर तथा हिंसक होते हैं। प्रेम कोई शब्द नहीं है, प्रेम कोई सुख नहीं है, प्रेम मन द्वारा नहीं किया जा सकता। जब आप सचमुच प्रेम करते हैं तब सुख, कामवासना इत्यादि की एक अलग गुणवत्ता होती है। ऐसे प्रेम में कोई अलगाव ही नहीं होता। अलगाव तभी पैदा होता है जब भय होता है। जब आप प्रेम करते हैं तब वहाँ 'मैं', 'तुम', 'हम', 'वे', नहीं रह जाते हैं। तब भय का प्रश्न नहीं उठता। अब आप पूछेंगे—"मैं कैसे प्रेम करूँ ? मैं उस खुशबू को कैसे प्राप्त करूँ ?" इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर है—आप स्वयं को देखें, स्वयं की ओर ध्यान दें, स्वयं को सज़ा नहीं दें, केवल अवलोकन करें और इसी अवलोकन से—"जो है" उसके ही अवलोकन से—सम्भवत: आप उस प्रेम को पा सकेंगे। परन्तु इसके लिए बहुत अधिक श्रम करना होगा—अवलोकन का श्रम, जहाँ आलस्य और असावधानता का कतई स्थान नहीं है।

लन्दन, मार्च 23, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4

क्या मानव बदल सकता है ?
ऊर्जा, द्वंद्व में इसका अपव्यय

हम विश्व की वर्तमान परिस्थितियों का अवलोकन करें और देखें कि क्या घट रहा है—विद्यार्थियों के उपद्रव, जातीय विद्वेष, गोरों के खिलाफ कालों का संघर्ष, युद्ध, राजनैतिक उपद्रव तथा राष्ट्रीय एवं धार्मिक विघटन् । साथ ही हम द्वंद्व, संघर्ष, चिंता, अकेलापन, निराशा, प्रेम का अभाव तथा भय से भी भलीभाँति परिचित हैं । हम क्यों यह सब स्वीकार कर लेते हैं ? हम क्यों इस सामाजिक परिवेश को, इसकी नैतिकता को मान लेते हैं जब कि हमें यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि यह सब वस्तुत: एकदम अनैतिक है ? और यह सब कुछ देखते हुए और पूर्णतया समझते हुए भी, हम क्यों इस प्रकार का जीवन जीते हैं ? हमारी शिक्षक-प्रणाली सम्यक् मानव तैयार करने के बजाय क्यों केवल ऐसे यांत्रिक व्यक्तित्व तैयार किये जा रही है जो केवल किसी विशिष्ट व्यवसाय के लिए तथा अन्त में मर जाने के लिए प्रशिक्षित किये जाते हैं ? शिक्षा, विज्ञान तथा धर्म हमारी एक भी समस्या हल नहीं कर सके हैं ।

इस पूरी अराजकता को देखने के बाद भी हममें से प्रत्येक व्यक्ति इस सम्पूर्ण भीतरी प्रक्रिया को, जो इसका कारण है, समाप्त करने के बजाय उसे स्वीकार व उसका अनुगमन क्यों किये जा रहा है ? मेरा खयाल है, आप यह प्रश्न स्वयं से पूछें—शांति से इसका अवलोकन करते हुए, इसी पर आँखें जमाये हुए तथा किसी प्रकार का मूल्यांकन व निर्णय न करते हुए पूछें—न कि केवल बुद्धि-विलास के लिए, या किसी परमात्मा अथवा मोक्ष पाने की चाह से, अथवा अपनी किसी व्यक्तिगत खुशी के लिए, जो अन्तत: विविध पलायन की ओर ले जाते हैं । एक समझदार व्यक्ति की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह हम स्वयं से पूछें—"हम ऐसा जीवन क्यों जीते हैं जिसमें संघर्ष और मृत्यु के सिवाय कुछ भी तो नहीं ?" और जब हम इस प्रकार का प्रश्न अत्यधिक गम्भीरता तथा दृढ़ निश्चय से साथ पूछते हैं तो वहाँ किसी सिद्धांत, किसी तत्वज्ञान, या अनुमान अथवा किसी कल्पना का कुछ भी महत्त्व नहीं रह जाता और न ही इस बात का महत्त्व रह जाता है कि क्या होना चाहिये, किन नियमों का पालन करना चाहिये, किन आदर्शों का अनुशीलन तथा किस धर्म या गुरु की शरण लेनी चाहिये ? जब आप इस अराजकता, पीड़ा, द्वंद्व एवं सतत संघर्षपूर्ण जीवन का सामना करते हैं तब ये सारे प्रश्न एकदम नगण्य और अर्थहीन हो जाते हैं । हमने पूरे जीवन को ही रण-भूमि बना लिया है, जिसमें प्रत्येक परिवार, प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक देश, एक-दूसरे के विरोध में खड़ा है । इसे आप केवल एक धारणा की तरह नहीं, अपितु एक कठोर वास्तविकता की भाँति देखें, जिसका कि आप यथार्थ रूप से सामना कर रहे हैं—और अपने-आप से पूछें, "यह सब क्या है ? हम इस प्रकार क्यों जिये जा रहे हैं जहाँ न वास्तविक जीना है और न प्रेम है, अपितु जीवनपर्यन्त भय और आतंक है ।"

जब आप यह प्रश्न पूछते हैं, तब आप क्या करेंगे ? यह ज्वलंत प्रश्न वे नहीं पूछ सकते जो परिचित आदर्शों में ढल गये हैं, जिनका आरामदायक घर है, बैंक बैलेन्स है, जो समाज में प्रतिष्ठित हैं तथा मध्यवर्गीय विचारवाले हैं । यदि कभी वे प्रश्न पूछते भी हैं तो उन प्रश्नों को भी वे अपने सन्तोष के लिए अपनी व्यक्तिगत माँगों के अनुसार ढाल लेते हैं । लेकिन यह समस्या पूरी मानवता की समस्या है, यह हममें से प्रत्येक व्यक्ति से—गरीब, अमीर, युवा, वृद्ध, हरएक से—गहराई से संबंधित है । हम ऐसा ऊबभरा, अर्थहीन जीवन क्यों जिये जा रहे हैं—एक ऐसा जीवन, जहाँ रोज-रोज किसी ऑफिस या प्रयोगशाला या फैक्टरी में लगातार चालीस वर्षों तक काम करते रहना, कुछ बच्चे पैदा कर लेना, उन्हें बेहूदी शिक्षा दे देना और अन्ततः मर जाना है ? आप यह प्रश्न अपनी पूरी ताकत से अपने-आप से पूछें—सचाई का पता लगाने के लिए पूछें । तब आप उतनी ही शक्ति से दूसरा प्रश्न भी पूछेंगे—क्या मानव मूल रूप से पूर्णतया बदल सकता है ताकि वह एक निराली दृष्टि से, एक अनोखे हृदय से, जो घृणा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध तथा जातीय द्वेष से मुक्त है तथा एक नूतन मन से जो एकदम स्पष्ट तथा प्रचंड ऊर्जा से परिपूर्ण है, इस विश्व को नये ढंग से देख सके ?

ये युद्ध, ये धर्म के द्वारा पैदा किये गये मूर्खतापूर्ण विभाजन, व्यक्ति और समाज के बीच का यह गहरा अलगाव, विश्व के विरोध में खड़ा व्यक्तिगत परिवार, किसी विचित्र आदर्श को दृढ़ता से पकड़े यह इन्सान 'मैं', 'हम', और 'वे', 'मैं' तथा 'आप' में बँटा हुआ यह पूरा मानव-समाज, इस सबको वास्तविक तथा मनोवैज्ञानिक रूप से देखने पर केवल एक ही मूलभूत प्रश्न खड़ा होता है—कि क्या मानव-मन, जो संस्कारों से इतना अधिक लदा है, पूर्णतया बदल सकता है ? अगले जन्म में अथवा जीवन की अन्तिम घड़ियों में नहीं, अपितु 'आज', 'अभी' और वह भी समग्र रूप से, ताकि वह नया, ताजा, तरुण, निष्कपट तथा हल्का हो सके और जान सके कि प्रेम और शांति से जीने का सही अर्थ क्या है । मैं समझता हूँ केवल यही एक मौलिक प्रश्न है । यदि हम इसे हल कर लेते हैं तो हमारी प्रत्येक समस्या—चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक—जो हमें युद्ध की ओर ले जाती है, समाप्त हो जाएगी और एक नूतन समाज, एक नूतन संस्कृति का उदय होगा ।

अत: हमारा प्रश्न है—क्या यह मन मस्तिष्क और हृदय के साथ, पहली बार निष्कलुष, ताजा और मासूम हो सकता है और जान सकता है कि आनन्द, उत्कट आह्लाद तथा गहरे प्रेम से जीने का क्या अर्थ है ? आप जानते हैं कि पांडित्यपूर्ण प्रश्नों को सुनने में खतरा है, लेकिन यह प्रश्न कतई पांडित्यपूर्ण नहीं है । यह आपके यथार्थ जीवन का प्रश्न है । हमारा किन्हीं शब्दों या विचारों से कोई लेना-देना नहीं है । हममें से अधिकांश व्यक्ति शब्दों के जाल में फँसे हैं और वे कभी यह जानते ही नहीं कि शब्द 'वस्तु' नहीं है । यदि सचमुच हम इस चर्चा के दौरान इस गम्भीर समस्या को समझ लें कि किस प्रकार हमारा मन-मस्तिष्क, मन और हृदय का समग्र रूप—जो शताब्दियों के प्रचार, भय तथा अन्य प्रभावों से गहरे रूप से संस्कारित है, तो हम पूछ सकते हैं कि क्या यह मन पूर्णतया रूपान्तरित हो सकता है ताकि यह विश्व में पूर्ण शांति, विराट् प्रेम तथा अदभुत सौंदर्य के साथ रहते हुए उस 'अनंत' का साक्षात्कार कर सके ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी समस्या यह है कि मन, जो इतनी पुरानी स्मृतियों और परम्पराओं से लदा हुआ है, क्या बिना किसी प्रयत्न, संघर्ष या द्वंद्व के उस क्रांति की शिखा को प्रज्वलित कर सकता है जो अतीत के सारे कचरे को भस्म कर दे ? इस प्रश्न को पूछने के बाद, जिसे हर विचारशील व गम्भीर व्यक्ति पूछना चाहेगा, हम कहाँ से प्रारम्भ करें ? क्या हम इसका प्रारम्भ इस नौकरशाही की दुनिया में या इस बाहरी सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन लाकर करेंगे ? या हम हमारे अन्दर से ही—इसका प्रारम्भ करेंगे ? क्या हम इस सम्पूर्ण बाहरी विश्व पर विचार कर, इसके सम्पूर्ण तकनीकी ज्ञान तथा इसकी समस्त वैज्ञानिक आश्चर्यजनक उपलब्धियों का विचार कर—वहाँ से इस परिवर्तन का प्रारम्भ करेंगे ? आदमी ने यह करके देखा है । उसने कहा—'जब आप बाहरी परिवर्तन करेंगे तब मनुष्य भी बदलेगा ।' और विश्व की समस्त रक्तरंजित क्रांतियों ने यही किया । साम्यवादी तथा अन्य क्रांतियों ने घोषणा की—'बाहरी व्यवस्था लाओ तो आंतरिक व्यवस्था अपने-आप आ जाएगी ।' उन्होंने यह भी कहा—'मनुष्य के भीतर यदि व्यवस्था न भी आए तो कोई हर्ज नहीं, हम बाहरी व्यवस्था उत्पन्न करें ।' और इस काल्पनिक व्यवस्था के नाम पर उन्होंने करोड़ों इंसानों की हत्या कर डाली ।

अत: हम आंतरिक और मनौवैज्ञानिक रूप से प्रारम्भ करें । इसका अर्थ यह नहीं कि आप इस वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को, जो अस्थिरता तथा अराजकता से युक्त है, वैसी ही रहने दें । क्या भीतरी और बाहरी अलग-अलग है ? नहीं, वे दोनों एक ही गति के दो रूप हैं । वे अलग-अलग नहीं हैं, एक ही हैं । मैं समझता हूँ कि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि हम लोगों के बीच एक सही संवाद स्थापित हो—एक ऐसा संवाद जो केवल शाब्दिक या शब्दों के आदान-प्रदान तक ही सीमित न हो, अपितु इसके परे हो । ऐसा संवाद इसलिए जरूरी है कि हम एक अत्यन्त गम्भीर और गहरी समस्या में प्रवेश कर रहे हैं । हमारे बीच एक ऐसा सुसंवाद घटित हो जहाँ हम दोनों समान तीव्रता से तथा समान गहराई से इस समस्या से संबंधित हों, गहरे प्रेम से इसका अवलोकन करें, पूर्णता से निरीक्षण करें—इस अभीप्सा से कि हम इसे सही रूप में समझना चाहते हैं । अत: यह जरूरी है कि हममें केवल शाब्दिक संवाद ही न हो, अपितु शब्दों से परे का संवाद भी हो जहाँ परस्पर सहमति अथवा असहमति का कोई प्रश्न ही नहीं उठता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि यहाँ हम किन्हीं विचारों, मान्यताओं, सिद्धांतों या आदर्शों के संबंध में चर्चा नहीं कर रहे हैं। हमारा संबंध तो सिर्फ मनुष्य के आमूल परिवर्तन की समस्या से है। अत: न तो आपके मतों का और न मेरे मतों का कोई महत्त्व है। यदि आप यह कहते हैं कि मनुष्य का बदलना असम्भव है, क्योंकि वह हजारों वर्षों से इसी प्रकार रहता आया है, जिसका अर्थ हुआ कि आपने स्वयं को पहले से ही अवरुद्ध कर लिया है, तो आप आगे ही नहीं बढ़ सकेंगे, प्रारम्भ ही नहीं कर सकेंगे, आपसे खोज ही नहीं हो सकेगी। इसके विपरीत, यदि आप सिर्फ यह कह देते हैं कि यह सम्भव है तब भी आप सम्भावनाओं की दुनिया में रहेंगे, 'वास्तविकता' की दुनिया में नहीं।

अत: हम मूल प्रश्न पर आयें—बिना यह कहे कि यह सम्भव है या नहीं। हम इस प्रश्न को नये सिरे से, नये मन से समझें—एक ऐसे मन से, जो पता लगाने के लिए इच्छुक है, खोजबीन और छानबीन करने के लिए उद्यत है। हमारी चर्चा केवल कुछ स्पष्ट शब्दों तक ही सीमित न हो, अपितु हम दोनों में (वक्ता और श्रोता में) सुसंवाद घटित हो सके। हम समस्या के प्रति इतने सजग, इतने आवेगपूर्ण और इतने गम्भीर हों कि हमें परस्पर मित्रता व गहरे प्रेम की अनुभूति हो सके। यह वैसा ही है जैसे पति तथा पत्नी दोनों ही जब अपने बच्चों की फिक्र करते हैं तब वे अपने आपसी मत, पसन्द, नापसंदगी सभी एक ओर रख देते हैं। इस फिक्र में बड़ा प्रेम है। यह कोई मत नहीं है, जो क्रिया को नियंत्रित करे। इसी प्रकार हमारे बीच एक गहरे संवाद की अनुभूति हो ताकि हम दोनों इस समस्या का सामना तीव्रता से तथा एक ही समय में कर सकें। हमारा ऐसा ही गहरा संवाद हमें समस्या को समग्रता से समझने में सहायक होगा।

अत: प्रश्न यह है कि यह मन जो गहन रूप से संस्कारबद्ध है, क्या पूर्णतया बदल सकता है ? मुझे आशा है, आप यह प्रश्न स्वयं से भी पूछ रहे हैं, क्योंकि जब तक हममें नैतिकता और संयम नहीं है तब तक हमारी 'सत्य', 'यथार्थ' 'परमात्मा' या उसे आप कुछ भी नाम दे दें, की खोज का कुछ भी अर्थ नहीं है। यहाँ नैतिकता से मेरा अर्थ सामाजिक नैतिकता से नहीं, तथा संयम से मेरा अर्थ साधु-संन्यासी के संयम से नहीं है, जिसमें कठोरता तथा हिंसा का समावेश है। सम्भवतः आपमें से वे लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो यहाँ परमात्मा के साक्षात्कार की अथवा किसी रहस्यमय अनुभव की विधि जानने आये हैं. वे निराश होंगे, क्योंकि जब तक आपके पास ऐसा मन नहीं है जो ताजा व एकदम नया हो तथा ऐसी आँखें नहीं हैं जो सत्य को देख सकें तब तक आप उस 'अपरिमित', 'अनाम', 'जो है', उसे नहीं देख सकते ।

यदि एक ओर आप विराट् तथा गम्भीर अनुभव चाहें और दूसरी ओर आप छिछला तथा अर्थहीन जीवन जियें तो आपके अनुभवों का कोई अर्थ न होगा । हम इस गम्भीर प्रश्न में साथ-साथ प्रवेश करें, जिसमें कई बातों का समावेश है । इसे समझने के लिए स्वतंत्रता और ऊर्जा आवश्यक है । अत: हमारे पास ये दोनों चीजें हों । यदि आप किसी मान्यता विशेष से बँधे हैं या किसी महान् काल्पनिक आदर्श को पकड़े हैं तो निश्चित रूप में आप स्वतंत्र अवलोकन नहीं कर सकते ।

वह मन जटिल है, जो किसी सम्प्रदाय से बँधा है, जो सुरक्षा की खोज कर रहा है, जो महत्त्वाकांक्षा तथा परम्परा से बँधा है । उस मन के लिए जो छिछला है, चन्द्रमा पर पहुँचना भले ही एक अद्‌भुत उपलब्धि हो, परन्तु जिन्होंने चन्द्रमा तक जानेवाला यान निर्मित किया वे भी एक तुच्छ, क्षुद्र, ईर्ष्यालु जीवन ही जी रहे हैं, चिन्ता और महत्वाकांक्षा से भरा, और उनका मन संस्कारों में जकड़ा हुआ है । क्या ऐसा मन समस्त संस्कारों से मुक्त हो सकता है ताकि एक बिलकुल नये ढंग का जीवन जिया जा सके ? इस खोज के लिये मुक्त अवलोकन का होना जरूरी है—न कि एक ईसाई, हिन्दू, डच, जर्मन या रूसी के रूप में अवलोकन । एकदम स्पष्ट अवलोकन के लिए स्वतंत्रता जरूरी है और ऐसा अवलोकन अपने-आपमें क्रियाशीलता है । यही 'अवलोकन' एक आमूल क्रान्ति को जन्म देता है । इस अवलोकन के लिये प्रचंड ऊर्जा की आवश्यकता है ।

अत: हम यह पता लगाने जा रहे हैं कि मनुष्य के पास वह ऊर्जा, वह जोश तथा परिवर्तन के लिए आवश्यक वह तीव्रता क्यों नहीं है ? झगड़ने के लिए, एक-दूसरे को मारने के लिए, विश्व का बँटवारा करने के लिए, चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए उसके पास प्रचंड ऊर्जा है । लेकिन स्वयं को पूर्णतया बदलने के लिए उसके पास ऊर्जा नहीं है । अत: हम स्वयं से पूछ रहे हैं—हमारे पास वह आवश्यक ऊर्जा आखिर क्यों नहीं है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप इस प्रश्न का क्या उत्तर देंगे ? हमने कहा—मनुष्य के पास घृणा करने के लिए भरपूर शक्ति है । जब भी युद्ध होता है, वह लड़ता है । जब वह यथार्थ से बचना चाहता है, तब पलायन के लिये उसके पास शक्ति है । वह विचारों तथा मनोरंजन के साधनों के माध्यम से, पूजा-पाठ तथा मदिरापान के माध्यम से 'जो है' से भाग खड़ा होता है । जब वह विषय-सुख चाहता है—काम-वासना का या अन्य प्रकार का सुख चाहता है—वह बड़ी शक्ति से उसका पीछा करता है । उसके पास अपने परिवेश पर विजय पाने की प्रचंड शक्ति है । उसके पास समुद्र की गहराइयों व आकाश की ऊँचाइयों को मापने की ताकत है । इन सभी के लिए उसके पास असीम ऊर्जा है । परन्तु अपनी छोटी-से-छोटी आदत को बदलने के लिए भी स्पष्टत: उसके पास ऊर्जा नहीं है । क्यों ? इसलिये कि उस ऊर्जा का अपने आन्तरिक द्वंद्व में अपव्यय कर देता है । वक्ता आपको किसी बात के लिए उकसा नहीं रहा है, अथवा पुराने विचारों की जगह कुछ नये विचार प्रस्तुत नहीं कर रहा है । वह तो सिर्फ खोज के लिए, बोध के लिए प्रयत्न कर रहा है ।

हम यह महसूस करते हैं कि हम अवश्य बदलें । हम हिंसा और क्रूरता का उदाहरण लें, जो वास्तविकताएँ हैं । मानव क्रूर तथा हिंसक है । उसने एक ऐसे समाज का निर्माण किया जो हिंसा पर आधारित है यद्यपि सारे धर्म उसे अपने पड़ोसी से तथा ईश्वर से प्रेम करना सिखाते रहे हैं । ये सारी प्रेम की बातें केवल 'विचार' हैं, उनकी वस्तुतः कोई कीमत नहीं, क्योंकि मनुष्य आज भी कठोर, स्वार्थी और हिंसक है । चूँकि मनुष्य हिंसक है, अत: वह विपरीत का—अहिंसा का—आविष्कार कर लेता है । हम जरा इसे गहराई से देखें ।

मनुष्य बहुत पहले से ही अहिंसक बनने का प्रयत्न करता आया है । अत: वह वस्तुतः 'जो है'—हिंसक—तथा जैसा उसे 'होना चाहिए'—अहिंसक—में संघर्ष चलता रहा । यह संघर्ष ही हमारी ऊर्जा के अपव्यय का मूल कारण है । जब तक यह 'जो है' और 'जो होना चाहिए' में द्वैत है अर्थात् जब तक मनुष्य कुछ बनने के लिए कोशिश कर रहा है, 'आदर्श' को प्राप्त करने के लिए भाग रहा है, तब तक ऊर्जा का अपव्यय होगा ही। यह द्वैत का संघर्ष ही हमारी ऊर्जा को इतना अधिक खर्च कर डालता है कि परिवर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये हमारे पास ऊर्जा ही नहीं बचती फिर मैं क्यों स्वयं में अहिंसा के रूप में विपरीत का आदर्श रखूँ ? 'आदर्श' यथार्थ नहीं है, इसका कुछ भी अर्थ नहीं है। यह हमें केवल पाखंड की ओर ले जाता है। तब हम 'हिंसक' होते हुए भी 'अहिंसक' होने का ढोंग करते हैं। अथवा हम कहते हैं, हम आदर्शवादी हैं और अन्ततः अहिंसक बन जायेंगे। यह सिर्फ एक बहाना है, जो शायद ही कभी पूरा हो और आप इस बीच ढोंगी और हिंसक बने ही रहेंगे। अतः यदि हम सचमुच समस्त आदर्शों को एक ओर रख दें और केवल 'यथार्थ' का—हिंसा का सामना करें तो फिर हमारी ऊर्जा बर्बाद न होगी। इसे समझ लेना बड़ा जरूरी है, जो वक्ता की कोई व्यक्तिगत मान्यता नहीं है। जब तक मानव इन विरोधों के दायरों में जीता है, तब तक उसकी ऊर्जा का अपव्यय होता ही रहेगा और वह कभी बदल न सकेगा।

इस प्रकार आप यथार्थ के समग्र बोध से एक क्षण में ही समस्त आदर्श और सारे 'विपरीत' समाप्त कर सकते हैं। कृपया इसे आप देखें और समझें। इस बोध में सचमुच एक असाधारण घटना घटती है। यदि कोई क्रोधी व्यक्ति क्रोध न करने का प्रयत्न करता है, या ढोंग करता है तब संघर्ष पैदा होता है। इसके विपरीत यदि वह कहता है—"मैं इस क्रोथ से न भागूँगा, न इसे युक्तिसंगत ठहराऊँगा, मैं तो इसका अवलोकन करूँगा।" तब वह क्रोध को समझेगा और तत्क्षण उससे मुक्त हो जायगा। यदि हम केवल यह सोचते रहें कि हमें संस्कारों से मुक्त होना ही चाहिए तो यह द्वंद्व बना ही रहेगा और इससे ऊर्जा का अपव्यय होगा। लेकिन यदि मैं कहूँ—मैं यह खोजूँगा कि मन में संस्कार बनते कैसे हैं, तो संस्कार ही समाप्त हो जायेंगे। यह एक कैन्सर के मरीज का डॉक्टर के पास जाने जैसा है। डॉक्टर तो बस यही चाहता है कि शल्य-क्रिया द्वारा बीमारी को दूर कर दिया जाय। लेकिन बीमार यदि यह सोचता रहे कि शल्य-क्रिया के बाद कितना आनन्द आयेगा अथवा वह शल्य-क्रिया से अत्यन्त भयभीत हो जाय, तो यह ऊर्जा का अपव्यय है।

हमारा सरोकार केवल इस तथ्य से है कि हमारा मन संस्कारबद्ध है, न कि इस बात से कि मन कैसे मुक्त हो ? यदि मन संस्कारबद्ध नहीं है तो वह मुक्त है। अतः हमें यह जानना है, अत्यन्त निकटता से देखना है कि मन किस प्रकार संस्कारबद्ध हो जाता है, वे प्रभाव कौनसे हैं, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन संस्कारों को जन्म देतें हैं ? हम इन्हें स्वीकार क्यों करते हैं ? पहली बात तो यह है कि परम्परा हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी परम्परा में ही मन का विकास हुआ है। अत: वहीं उसे सुरक्षा मिलती है। सुरक्षा के बिना कोई भी नहीं जी सकता। यह उसकी मूलभूत जैविक आवश्यकता है। अत: प्रत्येक को घर, भोजन व कपड़ा मिलना ही चाहिए। लेकिन जब हम इस सुरक्षा की आवश्यकता को मनोवैज्ञानिक रूप दे देते हैं तब हम एक आन्तरिक व बाहरी अराजकता पैदा कर लेते हैं। हमारा मन, जो विचार का ही ढाँचा है, जब अपने सभी संबंधों में आन्तरिक सुरक्षा की माँग करने लगता है, तब बड़ी झंझट खड़ी हो जाती है। विश्व में सभी को शारीरिक सुरक्षा मिलनी ही चाहिए—कुछ इने-गिने लोगों को ही नहीं। परन्तु जब हम देशों, धर्मों तथा परिवारों के माध्यम से इस मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की माँग करने लगते हैं तब प्रत्येक को शारीरिक सुरक्षा नहीं मिल पाती।

अत: हमने देखा कि शारीरिक सुरक्षा को लेकर मन के कुछ आवश्यक संस्कार हैं, लेकिन जब आन्तरिक सुरक्षा की खोज और माँग होने लगती है तब संस्कारों के बन्धन प्रचंड रूप से शक्तिशाली हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, हम अपने संबंधों में, विचारों में, मनुष्यों में व वस्तुओं में मानसिक सुरक्षा चाहने लग जाते हैं। परन्तु क्या किसी भी संबंध में सुरक्षा सम्भव है ? निश्चित रूप से, नहीं। मानसिक सुरक्षा चाहने का अर्थ है बाहरी असुरक्षा को आमंत्रित करना। यदि मैं मनोवैज्ञानिक रूप से एक हिन्दू के रूप में सुरक्षित होना चाहता हूँ तो इसका अर्थ होगा इस सम्प्रदाय की समस्त परम्पराओं, अन्धविश्वासों तथा विचारों को मान लेना तथा अपने-आपको एक विशाल समुदाय के साथ जोड़ लेना ताकि मुझे सुख और सुरक्षा मिले। फिर मैं झंडे, देश तथा जाति की पूजा किये चला जाता हूँ और इस प्रकार स्वयं को इन श्रेणियों में अलग कर लेता हूँ। यही अलगाव अन्तत: शारीरिक असुरक्षा को जन्म देता है। जब मैं राष्ट्र-रीतियों, धार्मिक सिद्धान्तों तथा अंधविश्वासों की पूजा करता हूँ तब मैं स्वयं को इन्हींमें पृथक् कर लेता हूँ और इस प्रकार दूसरों की शारीरिक सुरक्षा को इन्कार कर देता हूँ। मन को चाहिए शारीरिक सुरक्षा, लेकिन जब वह मनोवैज्ञानिक सुरक्षा चाहने लगता है तब उसे यह शारीरिक सुरक्षा नहीं मिल पाती। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सचाई है—कोई मान्यता या सिद्धान्त नहीं । जब मैं अपने परिवार में तथा अपनी बीबी, अपने बच्चे या अपने घर में सुरक्षा की खोज करने लगता हूँ तब मैं स्वयं को विश्व के विरोध में खड़ा कर लेता हूँ तथा अन्य सभी परिवारों से खुद को अलग कर लेता हूँ ।

अब कोई भी यह स्पष्ट रूप से समझ सकता है कि ये संस्कार प्रारम्भ कैसे होते हैं । गत दो हजार वर्षों के ईसाइयत के प्रचार ने ईसाइयों को एक विशिष्ट संस्कृति की पूजा करना सिखाया है और ठीक यही बात पूर्व में भी हो रही है । इस प्रकार मन प्रचार, परम्परा तथा सुरक्षित होने की इच्छा के द्वारा स्वयं को संस्कारित करने लगता है लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से क्या हमारे आपसी संबंधों में, विचारों में, व्यक्तियों तथा वस्तुओं में सुरक्षा है ?

यदि संबंध का अर्थ वस्तुओं के सीधे संपर्क में होना है तो इसका अर्थ हुआ कि यदि संपर्क न रहा तो संबंध भी नहीं रहा । यदि मैं अपनी पत्नी के बारे में कोई धारणा, कोई प्रतिबिम्ब रखता हूँ तब मैं वस्तुत उससे संबंधित नहीं होता भले ही मैं उसके साथ सोता होऊँ, क्योंकि उसके संबंध में मैंने एक प्रतिबिम्ब बना रखा है जो मुझे उसके निकट जाने से रोकता है । इसी तरह उसका प्रतिबिम्ब भी उसे मुझसे सीधा संबंध रखने से रोकता है । क्या सचमुच ऐसी कोई मानसिक सुरक्षा है भी जिसे मन सदैव खोजता रहता है ? यदि आप किसी भी संबंध को अत्यन्त निकटता से देखें तो आपको यह स्पष्ट दिखायी देगा कि वहाँ वस्तुतः सुरक्षा है ही नहीं । पति-पत्नी हो या कोई लड़का-लड़की, जब भी वे कोई सुदृढ़ संबंध बनाना चाहते हैं तो क्या घटित होता है ? उनमें से जब भी कोई किसी अन्य की ओर देखता है तब भय, ईर्ष्या, चिन्ता, क्रोध तथा नफरत जन्म लेते हैं । वस्तुतः संबंध स्थायी होते ही नहीं फिर भी मन हर समय किसीसे जुड़े रहने की अनुभूति चाहता है ।

इस प्रकार हमने देखा कि प्रचार, समाचार-पत्र, पत्रिका, धर्मोपदेश आदि के माध्यम से मन संस्कारबद्ध होता है । यह सब यदि कोई अत्यन्त सजग होकर देखता है तो उसे महसूस होता है कि बाहरी प्रभावों पर आश्रित न रहना कितना जरूरी है । तब आपको ज्ञात होता है कभी किसीसे प्रभावित न होने का क्या अर्थ है । कृपया इसे समझें । जब आप कोई समाचार पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ते हैं तो आप जाने-अनजाने प्रभावित होते हैं। जब आप कोई उपन्यास या कोई पुस्तक पढ़ते हैं तब आप प्रभावित होते हैं। आप पढ़ी हुई बातों का अपने मस्तिष्क में संग्रह करते हैं। प्रचार का पूरा यही प्रयोजन है। स्कूल से ही यह प्रारम्भ हो जाता है और आप जीवन भर वह दुहराते चले जाते हैं जो किसीने कहा है। अत: आप सेकंडहैंड व्यक्ति हैं। दूसरों के विचारों को दुहरानेवाले भला मौलिक वस्तु, नयी वस्तु को कैसे खोज सकेंगे? अत: इस संस्कार-प्रक्रिया को समझना तथा इसकी गहराई में उतरना अत्यन्त जरूरी है। ज्योंही आप इसे अपनी पूरी शक्ति से देखेंगे त्योंही संस्कारों के बन्धन, जिन्होंने मन को बुरी तरह से बाँध रखा है, छिन्न-विच्छिन्न हो जाएँगे।

सम्भवत: आप अब प्रश्न पूछना चाहेंगे। आप पूछें, पर इस बात का ध्यान रखें कि प्रश्न पूछना आसान है पर सही प्रश्न पूछना अत्यन्त कठिन है। कृपया यह न सोचें कि मैं आपको प्रश्न पूछने से रोक रहा हूँ। आप जरूर प्रश्न पूछें। आप प्रत्येक बात पर सन्देह करें, चाहे वह किसीने भी क्यों न कही हो। आप प्रश्न करें, शंका करें। लेकिन आप यह भी जानें कि शंका से मुक्त होकर सही प्रश्न कैसे किये जाते हैं; क्योंकि प्रश्न में ही उत्तर निहित है। अत: यदि आप चाहें तो प्रश्न पूछ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या आप विक्षिप्त हैं?

कृष्णमूर्ति : आप पूछ रहे हैं कि क्या वक्ता विक्षिप्त है? ठीक। आप इस विक्षिप्त शब्द से क्या अर्थ लेते हैं? क्या आप इसका अर्थ असन्तुलित या मानसिक रूप से बीमार या कुछ विचित्र विचारोंवाला या रुग्णचित्त व्यक्ति समझते हैं? इस शब्द में इन सभी अर्थों का समावेश है। निर्णायक कौन है—'आप' या 'मैं' या कोई और? जरा गम्भीरता से इसे लें—कौन है निर्णायक? क्या विक्षिप्त व्यक्ति यह निर्णय करेगा कि कौन विक्षिप्त है और कौन नहीं है? यदि आप यह निर्णय करते हैं कि वक्ता सन्तुलित है या असन्तुलित तो क्या यह निर्णय भी दुनिया की विक्षिप्तता का ही हिस्सा नहीं है? क्या आप उस व्यक्ति के बारे में निर्णय दे सकेंगे जिसके बारे में आप सिवाय उसकी प्रसिद्धि व प्रचार के तथा अपने द्वारा बनायी गयी प्रतिमा के कुछ नहीं जानते? निर्णय दंभ सूचित करता है। चाहे निर्णायक रुग्णचित्त हो या स्वस्थचित्त, परन्तु निर्णय में दंभ होता ही है। क्या दंभ यह देख सकता है कि सच क्या है? क्या अवलोकन के लिए, बोध के लिए, प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए अत्यधिक नम्रता की आवश्यकता नहीं है ? श्रीमान्, इस असामान्य नासमझ विश्व में समझदार होना बड़ा मुश्किल है । स्वस्थचित्त व्यक्ति वही है जो किसी भी भ्रम को न पाले तथा अपने बारे में, दूसरों के बारे में कोई प्रतिमा न बनाए । आप कहते हैं—मैं 'यह' हूँ, 'वह' हूँ, 'मैं बड़ा हूँ', 'मैं छोटा हूँ', 'मैं भला हूँ', 'मैं अच्छा हूँ', ये सभी विशेषण अपने बारे में बनायी गयी प्रतिमाएँ हैं । जब कोई व्यक्ति अपने बारे में अपने मन में एक प्रतिमा निर्मित कर लेता है तो वह निश्चित ही विक्षिप्त है, वह भ्रांति के जगत् में जीता है । और मैं समझता हूँ कि हममें से अधिकांश यही करते हैं । जब आप अपने-आपको अंग्रेज कहते हैं—कृपया मुझे ऐसा कहने के लिए क्षमा करें—तो इससे यह ध्वनित होता है कि आप सन्तुलित नहीं हैं । ऐसा कहकर आप स्वयं को दूसरों से अलग कर लेते हैं, पृथक् कर लेते हैं; और इसी प्रकार दूसरे स्वयं को 'हिन्दू' कहकर कर लेते हैं । सेना तथा धर्मगुरुओं के साथ ये राष्ट्रीय तथा धार्मिक विभाजन एक मानसिक रुग्णता की स्थिति को ही सूचित करते हैं ।

प्रश्नकर्ता : क्या आप हिंसा को बिना उसके 'विपरीत' (अहिंसा) के समझ सकते हैं ?

कृष्णमूर्ति : जब मन हिंसा के साथ ही रहना चाहता है तब वह अहिंसा के आदर्श को आमंत्रित करता है । कृपया इसे देखें, यह बहुत सरल है । मैं हिंसा के साथ जीना चाहता हूँ क्योंकि मैं स्वयं हिंसक हूँ, समाज हिंसक है । लेकिन मेरी दस हजार वर्ष पुरानी परम्परा कहती है—'अहिंसा का अभ्यास करो' । अतः एक ओर यथार्थ है—'मैं हिंसक हूँ और दूसरी ओर विचार कहता है—'आपको अहिंसक बनना चाहिए !' यही मेरा संस्कार है । मैं इस संस्कार से कैसे मुक्त होऊँ ताकि मैं देख सकूँ, हिंसा के साथ ठहर सकूँ और उसे समझ सकूँ, उसमें प्रवेश कर सकूँ—केवल ऊपरी मन से ही नहीं, अपितु अचेतन मन से भी । मन किस प्रकार 'आदर्श' में न फँसे ? क्या यह आपका प्रश्न है ?

कृपया सुनें । हम लोग यहाँ मार्टिन लूथर किंग या श्री गांधी या अन्य किसी के बारे में चर्चा नहीं कर रहे हैं । हमारा इन व्यक्तियों से कतई संबंध नहीं है । उनके अपने आदर्श हैं, संस्कार हैं, उनकी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ हैं और मेरा उनसे कोई लेना-देना नहीं है । हमारा संबंध तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हम जैसे हैं' सारा मानव-समाज 'जैसा है' उससे है । मानव के रूप में हम हिंसक हैं । परम्परा, प्रचार तथा संस्कृति के माध्यम से 'विपरीत' का, निर्माण करने का हमारा पुराना संस्कार है । हम इस विपरीत का, जब भी आवश्यकता आ पड़ती है, उपयोग कर लेते हैं । राजनीति व अध्यात्म में अलग-अलग प्रकार से इसका उपयोग करते हैं । जब मन हिंसा के साथ ठहरना और उसे पूरी तरह से समझना चाहता है तो आदत और परम्परा दखल देती हैं—वे कहती हैं—'आप अहिंसा का आदर्श अपनाएँ ।' एक ओर 'सचाई' है तथा दूसरी ओर 'परम्परा'। प्रश्न यह है कि मन किस प्रकार इस परम्परा से मुक्त हो ताकि वह अपना पूरा ध्यान हिंसा की ओर लगा सके । हमारी समस्या यही है । क्या आपने इसे समझ लिया है ? सचाई यह है कि मैं हिंसक हूँ और परम्परा कहती है कि मुझे हिंसक नहीं होना चाहिए । अब मैं हिंसा का नहीं, अपितु इस परम्परा का अवलोकन करूँ । मैं देखूँ कि यह परम्परा मेरे हिंसा के अवलोकन में क्यों दखल देती है ? यह बीच में क्यों आती है ? मेरा मकसद अभी हिंसा को देखने का नहीं है, अपितु इस परम्परा की दखल को देखना है । आप समझ रहे हैं न ? मैं जब उस परम्परा की ओर ध्यान देता हूँ तब वह दखल नहीं देती । अब हम यह देखें कि परम्परा का, जिसे चाहे आदत कह लें, हमारे जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान क्यों है । आदत चाहे धूम्रपान की हो या मदिरापान की, चाहे कामवासना की हो या बोलने की, प्रश्न यह है कि हम इन आदतों में जीते ही क्यों हैं ? क्या हम उनके प्रति सजग हैं ? क्या हम अपनी परम्पराओं के प्रति होशपूर्ण हैं ? यदि आप पूर्णतया सजग नहीं हैं, यदि आप पूरी तरह से परम्परा को, आदत को, जीवनचर्या को, समझ नहीं लेते तो ये निश्चित रूप से उठ खड़ी होंगी तथा जो आप देख रहे हैं उसमें दखल देंगी । आदतों में जीना सबसे आसान है, लेकिन इन्हें तोड़ने में बड़ा खतरा है । जब मैं इसे तोड़ने का प्रयत्न करता हूँ तो मुझे डर लगता है, क्योंकि आदत मुझे सुरक्षा देती है, मुझे निश्चिन्तता का अहसास कराती है, क्योंकि अन्य सारे व्यक्ति भी तो वही कर रहे हैं । इस देश में यदि कोई खड़ा होकर घोषणा करे, "मैं हालैण्डवासी नहीं हूँ", तो यह भारी चोट पहुँचायेगी । अतः भय होता है । और यदि आप कहें—'मैं इस सारी व्यवस्था के खिलाफ हूँ, जो वस्तुतः अव्यवस्था है' तो आप बाहर फेंक दिये जायेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत: आप स्वीकार कर लेते हैं और भयभीत बने रहते हैं। परम्परा का जीवन में असाधारण स्थान है। क्या आपने कभी ऐसा खाना खाने का प्रयत्न किया है जिसके आप आदी नहीं हैं ? यह आप करके देखें। आप देखेंगे कि आपकी जीभ और आपका पेट विद्रोह कर उठते हैं। यदि आपको धूम्रपान की लत है तो आप धूम्रपान किये चले जाते हैं और इस आदत को तोड़ने के लिये आप इससे वर्षों लड़ा करते हैं।

अत: हमारा मन आदतों में सुरक्षा पाता है और कहता है—'यह मेरा परिवार है, ये मेरे बच्चे हैं, यह मेरा घर है, यह मेरा फर्नीचर है।' जब आप यह कहते हैं कि यह मेरा फर्नीचर है तब आप स्वयं 'फर्नीचर' होते हैं। आप भले ही हँसें, लेकिन जब कोई आपका वह प्यारा फर्नीचर ले जाता है तो आपको बहुत क्रोध आता है। आप ही वह फर्नीचर हैं, आप ही वह घर हैं, आप ही वह धन हैं, आप ही वह झंडा हैं।

इस प्रकार के जीवन जीने का अर्थ न केवल छिछला और मूर्खतापूर्ण जीवन जीना है, अपितु ऐसा जीवन यांत्रिक और नीरस भी है। और जब आप यांत्रिक और नीरस ढंग से जियेंगे तो आप हिंसक होंगे ही।

एम्स्टरडैम, मई 3, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5

हम शान्ति की अवस्था में क्यों नहीं जी सकते ?

भय, यह कैसे पैदा होता है ? समय और विचार—अवधान : सजग रहना

मुझे यह विचित्र-सा लगता है कि हम जीवन जीने का कोई ऐसा मार्ग क्यों नहीं खोज लेते कि जहाँ न द्वंद्व हो, न दुःख हो, न संभ्रांति बल्कि हो भरपूर प्रेम और दूसरों के प्रति अपरिमित विचारशीलता । हम बड़े-बड़े लेखकों की पुस्तकें पढ़ते हैं जो हमें बताती हैं कि आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिकता की दृष्टि से समाज की रचना कैसी हो । साथ ही हम धार्मिक व्यक्तियों की पुस्तकें पढ़ते हैं जो उनके तर्कों व विचारों से लदी हैं । हममे से अधिकांश व्यक्तियों के लिए निश्चित ही एक ऐसा मार्ग ढूँढ़ना बहुत कठिन हो गया है जो जीवन्त हो, शांतिपूर्ण हो, ऊर्जा और स्पष्टता से लबालब भरा हो, किसी पर आश्रित न हो । हम बड़े परिपक्व एवं परिष्कृत व्यक्ति माने जाते हैं । हममें से जो वृद्ध हैं, वे दो खौफनाक युद्धों से, भयंकर क्रांतियों से तथा हर प्रकार की मुसीबतों से गुजर चुके हैं । फिर भी हम आज की इस सुन्दर प्रातःबेला में यहाँ इन सारी बातों पर चर्चा करते हुए इस बात की प्रतीक्षा में हैं कि कोई हमें जीवन जीने का व्यावहारिक मार्ग दिखाए, कोई हमारा मार्गदर्शन करे, ताकि हम जीवन के सौन्दर्य को जान सकें तथा रोजमर्रा के जीवन के परे जा सकें ।

मैं स्वयं से पूछता हूँ—और आप भी पूछ सकते हैं—कि हम दूसरों का क्यों अनुकरण करते हैं ? क्यों नहीं हम स्वयं ही अपने मन तथा अपने हृदय में एक ऐसा प्रकाश खोजें जिसमें किसी प्रकार की विकृति न हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें पुस्तकों के बोझ ढोने की क्या आवश्यकता है ? क्या हम बिना किसी प्रकार की व्याकुलता के अपरिमित आनन्द तथा गहरी शांति के साथ नहीं जी सकते ? मनुष्य की ऐसी अवस्था मुझे बड़ी विचित्र लगती है, फिर भी ऐसा ही है । क्या आपने कभी ऐसा जीवन जिया है जहाँ न कोई प्रयत्न है, न कोई संघर्ष ! हम तो इसे बदलने के लिये, इसके रूपान्तरण, इसके दमन तथा अनुकरण करने के लिये अथवा किसी मार्ग को अपनाने या किसी विचार को मानने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं ।

मुझे मालूम नहीं कि आपने कभी स्वयं से पूछा है या नहीं कि क्या हम बिना किसी भी प्रकार के संघर्ष तथा बिना किसी प्रकार की चेष्टा के सचमुच जी सकते हैं ? भावुकता या भावप्रवणतावश या बौद्धिक पृथकता में नहीं, क्योंकि चेष्टा, चाहे वह कितनी ही सुखकर हो या दुःखकर हो, तृप्तिदायक हो या लाभकारी, अन्ततः वह मन को विकृत व दूषित करती ही है । यह उस मशीन की तरह है, जो सदैव पीसती रहती है और स्वयं को जल्दी-जल्दी घिसती चली जाती है । अतः आप स्वयं से पूछें—यह प्रश्न सचमुच पूछने लायक है—"क्या बिना आलसी, बिना विलग, बिना उदासीन, बिना असंवेदनशील तथा बिना मन्द हुए कोई ऐसा जीवन जी सकता है, जिसमें कोई चेष्टा न हो ?" हमारा पूरा जीवन ही—जन्म से लेकर मृत्यु तक—कुछ करने, कुछ बदलने तथा कुछ होने की दिशा में कभी न समाप्त होनेवाले संघर्षों की शृंखला मात्र है । ये द्वंद्व और संघर्ष गड़बड़ी पैदा करते हैं तथा मन को मन्द व हृदय को संवेदनशून्य बना देते हैं ।

अतः क्या यह संभव है—केवल एक विचार अथवा किसी आशा के रूप में नहीं—कि हम जीवन जीने का एक ऐसा ढंग खोज सकें जिसमें कतई संघर्ष न हो—केवल ऊपर-ऊपर ही नहीं, अपितु हमारे अचेतन मन की गहराइयों में भी । आज की सुबह शायद हम इस प्रश्न की छानबीन अत्यंत गहराई से कर सकते हैं ।

अब सर्वप्रथम, हम द्वंद्व का—चाहे वह सुखद हो या दुःखद आविष्कार ही क्यों करते हैं ? और यह भी देखें कि क्या हम इसे समाप्त कर सकते हैं और पूर्णतया एक भिन्न जीवन जी सकते हैं जो प्रचण्ड ऊर्जा, स्पष्टता, बौद्धिक क्षमता तथा तर्क-शक्ति से युक्त हो तथा हमारे पास एक ऐसा हृदय हो, जो सही अर्थों में अपरिमित प्रेम से सराबोर हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह द्वंद्व हमारी उन आन्तरिक विसंगतियों का परिणाम है, जो स्वयं को बाहरी जगत् में 'मैं' और 'मैं नहीं' के घेरों में प्रकट किये जा रही हैं। 'मैं' के घेरे का अर्थ है—मेरी महत्त्वाकांक्षाएँ, मेरी प्रवृत्तियाँ, मेरी आकांक्षाएँ, मेरे सुख, मेरी चिन्ताएँ, मेरी घृणा, मेरी स्पर्धा, मेरे भय तथा 'मैं नहीं' का अर्थ है—'जो दूसरा' है। परंतु बिना द्वंद्वों, बिना विसंगतियों, बिना आकांक्षाओं तथा बिना प्रवृत्तियों के जीने का विचार भी द्वंद्व को जन्म देता है। यदि हम इस तनाव के प्रति सजग हों तो हम स्वयं देख सकते हैं कि हममें इन परस्पर विरोधी विचारों, माँगों, विश्वासों तथा आकांक्षाओं की कितनी खींचातानी है।

हमारा यह द्वन्द्व, हमारी ये परस्पर विरोधी वासनाएँ, हमारे भय तथा विसंगतियाँ इस द्वंद्व के कारण हैं। यदि हम अपने अन्दर देखें तो यह स्पष्ट दिखाई देगा। ये विसंगतियाँ केवल हमारे दैनिक जीवन तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु हमारे तथाकथित धार्मिक जीवन में भी व्याप्त हैं जो स्वर्ग और नर्क, पवित्र और अपवित्र, अच्छा और बुरा, प्रेम और घृणा आदि के रूप में पुनः-पुनः दुहरायी जाती हैं। मैं कहना चाहूँगा कि आप केवल शब्दों को ही न सुनें, अपितु स्वयं का भी, बिना विश्लेषण किये, वक्ता का आईना की तरह उपयोग करके अवलोकन करें, ताकि आप अपने मन तथा हृदय के सम्पूर्ण कार्य-कलाप को ठीक तरह से देख सकें, जैसे कि आप आईने में स्वयं को देखते हैं। तब आपको दिखाई देगा कि किसी भी प्रकार का विभाजन, अलगाव या असंगति, फिर चाहे वह आन्तरिक हो या बाह्य, अन्ततः हिंसा तथा अहिंसा के बीच द्वंद्व पैदा करता है। अब प्रश्न यह उठता है, क्या इस सारी प्रक्रिया को समझने के बाद, जो वस्तुतः एक सचाई है, इसे समाप्त किया जा सकता है? केवल चेतना की ऊपरी सतहों से ही नहीं, जो हमारे रोजाना के जीवन से संबंधित है, अपितु हमारे अस्तित्व की गहराइयों से भी—ताकि हममें न कोई विसंगति रहे—न परस्पर विरोधी माँगें—न इच्छाएँ रहें, न खण्डित मन की कोई द्वैतात्मक क्रिया? अब यह किस प्रकार घटित हो? व्यक्ति इस 'मैं' (अपनी सारी महत्त्वाकांक्षाएँ, प्रवृत्तियाँ, विसंगतियाँ) तथा 'मैं नहीं' (एक आदर्श, 'एक सूत्र', एक अवधारणा) के बीच एक पुल बनाता है। हम सदैव 'जो है' और 'जो होना चाहिए' के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न करते हैं और उसीमें असंगति है, द्वंद्व है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इस प्रकार हमारी सारी ऊर्जा नष्ट होती है । क्या मन इस विभाजन को समाप्त कर 'जो है' उसके साथ रह सकता है ? 'जो है' उसे समझने में कोई द्वंद्व नहीं है ।

मैं एक अलग पहलू से—स्वतंत्रता और भय के संदर्भ में—इस प्रश्न की छानबीन करना चाहूँगा । हममें से अधिकांश व्यक्ति स्वतंत्रता चाहते हैं, यद्यपि हम 'आत्मकेन्द्रित' जीवन जीते हैं और अपना पूरा समय अपने बारे में, अपनी असफलताओं और उपलब्धियों के बारे में सोचने में खर्च करते हैं । हम स्वतंत्र होना चाहते हैं—केवल राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं, जो अपेक्षाकृत आसान है (हुकुमशाही देशों को छोड़कर), अपितु धार्मिक प्रचार से भी । प्रत्येक धर्म का प्रचार, चाहे वह प्राचीन हो या आधुनिक, प्रचारकों द्वारा ही किया गया है । अतः वह धर्म वस्तुतः धर्म नहीं है । मनुष्य जितना ज्यादा गंभीर होता है उतनी ही ज्यादा सरोकार वह जीने की पूरी प्रक्रिया से रखता है । सम्पूर्ण जीवन की ओर ध्यान देनेवाला ही स्वतंत्रता की खोज करता है और बिना स्वीकार तथा विश्वास किये वह प्रश्न पूछता चला जाता है । मनुष्य स्वतंत्रता चाहता है ताकि वह उसे खोज सके जो 'सत्य' है, 'अमर' है, 'समय के परे' है । अपने परस्पर संबंधों में स्वतंत्र रहने की हमारी प्रबल लालसा है, परन्तु ऐसी स्वतंत्रता आत्म-अलगाव की ही एक प्रक्रिया बन जाती है और इसलिए वह सच्ची स्वतंत्रता नहीं है ।

स्वतंत्रता की माँग में ही भय समाया हुआ है क्योंकि हो सकता है कि स्वतंत्रता हमें पूर्णतया असुरक्षित बना दे ! अतः इसमें असुरक्षा का भय है । असुरक्षा एक बड़ी खतरनाक चीज मालूम पड़ती है । अतः प्रत्येक बच्चा अपने संबंधों में सुरक्षा चाहता है । ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं त्यों-त्यों हम अपने संबंधों में—व्यक्ति, वस्तु व विचारों के साथ के संबंधों में—अधिक सुरक्षा तथा निश्चिंतता की माँग करते हैं । सुरक्षा की माँग अनिवार्य रूप से भय को जन्म देती है तथा भयभीत होने के कारण हम उन वस्तुओं पर अधिक आश्रित होते जाते हैं जिनसे हमारा लगाव है । अतः स्वतन्त्रता तथा भय का यह प्रश्न उठता है । क्या सचमुच इस भय से मुक्ति संभव है—केवल शारीरिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु मानसिक दृष्टि से भी ? केवल मन के ऊपरी सतहों से ही नहीं, अपितु मन की अतल अन्धकारपूर्ण गहराइयों से भी जहाँ अब तक कभी झाँका नहीं गया है ? क्या मन पूर्णतया इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय से मुक्त हो सकता है ? यह भय ही है जो प्रेम को नष्ट करता है और यह वस्तुस्थिति है, कोई सिद्धांत नहीं । यह भय ही है जो हमारे समस्त रिश्तों में चिंता, आसक्ति, अधिकार, प्रभुत्व तथा ईर्ष्या पैदा करता है और यही भय अन्ततः हिंसा को जन्म देता है । यदि हम अत्यधिक भीड़वाले शहरों को देखें तो वहाँ हमें भयंकर असुरक्षा और अनिश्चितता का भय दिखायी देगा और इसीसे हिंसा का जन्म होता है । क्या आप इस भय से मुक्त हो सकते हैं ताकि जब आप इस हॉल से बाहर निकलें तब आप भय की अँधेरी छाया से एकदम मुक्त हो ?

भय को पूरी तरह से समझने के लिये हमें न केवल शारीरिक भय की परीक्षा करनी होगी अपितु मनोवैज्ञानिक भय के विस्तार को भी परखना होगा । अब हम इसे देखें । प्रश्न है—भय कैसे पैदा होता है ? इसे कौन सहारा देता है ? कौन टिकाये रखता है ? और क्या इससे मुक्त हुआ जा सकता है ? शारीरिक भय को समझना आसान है । शारीरिक खतरे के उपस्थित होते ही तत्काल प्रतिक्रिया होती है, जो अनेकों शताब्दियों के संस्कारों का परिणाम है और जिसके बिना स्वयं को बचाये रखना तथा जीवित रखना संभव नहीं है । शारीरिक रूप से हमें निश्चित ही जीवित रहना है और हजारों वर्षों से परम्परा कहती आ रही है—'सावधानी रखो', स्मृति कहती है—'सचेत रहो, वहाँ खतरा है, तत्क्षण प्रतिक्रिया करो ।' शारीरिक खतरे से बचने के लिए की गयी यह प्रतिक्रिया क्या भय है ?

कृपया इस सबको ठीक-ठीक समझें, क्योंकि हम एक ऐसी चीज की छानबीन करने जा रहे हैं जो बहुत आसान होते हुए भी बड़ी जटिल है और जब तक आप इस ओर अपना पूरा ध्यान नहीं देते, तब तक आप इसे समझ नहीं सकते । हम यह देख रहे थे कि किसी खतरे के समय तत्काल घटित होनेवाली हमारी शारीरिक या स्नायविक प्रतिक्रिया क्या भय है ? अथवा यह हमारी शारीरिक प्रज्ञा है ? और क्या यह प्रज्ञा परम्परा तथा स्मृति के द्वारा विकसित की जाती है ? यदि यह सच है तो फिर यह हमारे मानसिक जगत् में भी उतनी ही पूर्णता के साथ काम क्यों नहीं करती जहाँ हम अनेक चीजों के भय पाले हुए हैं ? हमारी वह प्रज्ञा—शारीरिक खतरों के समय तत्क्षण कार्य करनेवाली प्रज्ञा—तब कार्य क्यों नहीं करती जब मानसिक खतरे उत्पन्न होते हैं ? क्या यह शारीरिक प्रज्ञा हमारे मानसिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् में कार्य नहीं कर सकती ? हमारे मानसिक भय के अनेक रूप हैं—मृत्यु का भय, अँधेरे का भय, पत्नी या पति क्या कहेगा या करेगा इसका भय, पड़ोसी अथवा वरिष्ठ अधिकारी क्या सोचेगा इसका भय, आदि। यहाँ हम भय के अलग-अलग रूपों के विस्तार में नहीं जा रहे हैं। हमारा संबंध तो समग्र भय से है; न कि किसी विशिष्ट भय से। जब भी भय—मनोवैज्ञानिक भय उपस्थित होता है और हमें उसका अहसास होता है, हम तत्क्षण उससे बचने के विविध उपाय करते हैं—भय का दमन, उससे पलायन, धार्मिक तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन की तलाश, अथवा भय के प्रतिरोध के लिए साहस जुटाना आदि करने लग जाते हैं। पलायन, मनोरंजन तथा साहस, ये सभी भय के वास्तविक तथ्य के प्रतिरोध के ही विभिन्न रूप हैं।

10318

भय जितना बड़ा होगा उतना ही बड़ा प्रतिरोध भी होगा और इस प्रकार हमारी अनेक विक्षिप्ततापूर्ण क्रियाएँ जन्म लेती हैं। एक ओर भय है और दूसरी ओर मन यानी 'मैं' कहता है, 'भय नहीं होना चाहिए'। यही द्वन्द्व है। एक ओर यह 'मैं' जो स्वयं को भय से अलग मानता है, जो भय का प्रतिरोध करता है, उससे पलायन करता है, अपनी शक्ति को बढ़ाता है, सिद्धान्तों की रचना करता है या मनोविश्लेषक के पास जाता है, और दूसरी ओर यह 'मैं नहीं' है। "मैं नहीं" भय है। 'मैं' भय से अलग है। इस प्रकार 'मैं' तथा भय में तत्काल संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और यह 'मैं' इस भय को—"मैं नहीं" को—पराजित करना चाहता है। यहाँ एक 'द्रष्टा' है और दूसरा 'दृश्य' है। यह द्रष्टा 'मैं' है और यह दृश्य 'मैं नहीं'—भय—है। अब यह 'मैं' भय से मुक्त होना चाहता है। अतः वहाँ विरोध है, विसंगति है, अलगाव है और इसी कारण भय और उस 'मैं' के बीच द्वंद्व है जो भय से मुक्त होना चाहता है। क्या हम एक-दूसरे के साथ परस्पर संवाद कर रहे हैं ?

अतः हमारे सामने समस्या है इस 'मैं' और 'मैं नहीं' के बीच के द्वंद्व की। क्योंकि 'मैं' स्वयं को 'मैं नहीं' से—भय से—अलग समझता है, उससे बंचना चाहता है, उसका दमन तथा नियंत्रण करना चाहता है। यह विभाजन निश्चित रूप से द्वंद्व को जन्म देगा, जैसे कि दो विभाजित राष्ट्र अपनी सेना तथा सार्वभौम सत्ता द्वारा परस्पर संघर्ष करते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हमने देखा कि एक 'द्रष्टा' है और एक 'दृश्य' है। द्रष्टा कहता है कि 'दृश्य'—भय—एक भयानक वस्तु है, मैं उसे समाप्त करूँगा। यह 'द्रष्टा' सदैव 'दृश्य' से लड़े जा रहा है, यह सतत संघर्ष की अवस्था में है। यह संघर्ष हमारी परम्परा, हमारा संस्कार और हमारी आदत बन गया है और आदत चाहे किसी भी प्रकार की हो उसे तोड़ना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि हम सदैव आदतों में—धूम्रपान, मदिरापान, कामवासना तथा अन्य मानसिक आदतों में—जीते हैं। यही बात राष्ट्रों तथा सार्वभौम सरकारों पर भी लागू होती है, जो मेरा देश, आपका देश; मेरा ईश्वर, आपका ईश्वर; मेरा विश्वास, आपका विश्वास आदि में विभाजन करते हैं। भय से लड़ना तथा उसका प्रतिरोध करना हमारी परंपरा है और इस प्रकार हम द्वंद्व तथा भय को और अधिक दृढ़ किये जा रहे हैं।

यदि यह सब स्पष्ट हो गया है तो हम अब अगले प्रश्न पर विचार करें, जो है—क्या 'द्रष्टा' यानी 'मैं'—और 'दृश्य' यानी 'भय' के बीच सचमुच ही अन्तर है ? 'द्रष्टा' सोचता है कि वह 'दृश्य' से—भय से—अलग है ? क्या सचमुच उन दोनों में कोई अन्तर है अथवा वे एक ही हैं ? वे निःसंदिग्ध रूप से एक ही हैं। 'द्रष्टा' ही 'दृश्य' है, क्योंकि जब कोई एकदम नई वस्तु सामने आती है तो 'द्रष्टा' खत्म हो जाता है। लेकिन चूँकि 'द्रष्टा' अपने उस भय को पहचान लेता है जिसका अनुभव वह पहले भी कर चुका है, अतः विभाजन पैदा हो जाता है। और यदि आप मन की अत्यन्त गहरी परतों तक यात्रा करें—जैसा कि मुझे विश्वास है, आप अभी कर रहे हैं—तो आप अपने लिये यह खोज सकेंगे कि 'द्रष्टा' और 'दृश्य' अनिवार्य रूप से एक ही हैं। अतः यदि वे सचमुच ही एक हैं तो यह 'मैं' और 'मैं नहीं' का विभाजन ही पूर्णतया विसर्जित हो जाता है और साथ ही समस्त संघर्षों से भी मुक्ति मिल जाती है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि आप भय को स्वीकार कर रहे हैं या आप उसके साथ स्वयं का तादात्म्य कर रहे हैं।

भय है, जिसे देखा जाता है, और देखनेवाला जो उसी भय का एक हिस्सा है। ऐसी अवस्था में क्या किया जा सकता है ? (क्या आप भी वक्ता की तरह गंभीरता से खोज रहे हैं ? यदि आप केवल शब्दों को सुन रहे हैं तो मुझे लगता है कि आप इस भय के प्रश्न को नहीं हल कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेंगे ।) वहाँ तो सिर्फ भय है—'द्रष्टा' नहीं है जो भय को देखता है, क्योंकि 'द्रष्टा' ही भय है । अब प्रश्न उठता है—यह भय क्या है और इसका जन्म कैसे होता है ? हम यहाँ भय के परिणामों की तथा उसके कारणों की चर्चा नहीं कर रहे हैं । हम यह भी नहीं खोज रहे हैं कि किस प्रकार भय अपनी पीड़ा तथा कुरूपता से हमारे जीवन को अन्धकार से भर देता है । हम तो अपने-आपसे यही पूछ रहे हैं—'यह भय क्या है और यह कैसे पैदा होता है ?' क्या यह जरूरी है कि हम इस भय का निरंतर विश्लेषण करते चले जायँ तथा इसके कभी न समाप्त होनेवाले कारणों की खोज करते जायँ ? क्योंकि जब आप विश्लेषण करते हैं तो आपका समस्त पूर्व धारणाओं तथा संस्कारों से मुक्त होना अनिवार्य है, ताकि आप ठीक तरह से देख सकें, अवलोकन कर सकें । अन्यथा यदि आपके निर्णय में किसी भी प्रकार की विकृति रही तो वह विश्लेषण के साथ बढ़ती चली जायेगी ।

अतः भय से मुक्त होने के लिये किया गया मनोविश्लेषण वस्तुतः हमें भय से मुक्त नहीं करेगा । (मेरा ख्याल है यहाँ कुछ मनोविश्लेषक होंगे ।) क्योंकि भय के कारणों को खोजकर उन पर अमल करने पर कारण परिणाम और परिणाम कारण बन जाता है । कोई परिणाम प्राप्त करना और उस परिणाम का उपयोग करके कारण की खोज करना तथा कारण की खोज करके उसके उपयोग से पुनः परिणाम तक पहुँचना, इस प्रकार यह प्रक्रिया कारण तथा परिणाम की अन्तहीन शृंखला बन जाती है । अब, यदि हम इस भय का विश्लेषण तथा इसके कारणों को खोजने की क्रिया को एक ओर रख दें तो फिर हमें क्या करना होगा ?

जैसा कि आप जानते हैं, यह खोज मनोरंजन का साधन नहीं है परंतु इस खोज में महान् आनन्द है, इस सबको समझने में बड़ा लुत्फ है । यह भय कैसे पैदा होता है ? समय तथा विचार भय को पैदा करते हैं । समय का अर्थ है—कल, आज और आनेवाला कल । हमें इस बात का भय है कि कल न जाने क्या घटित हो—कहीं नौकरी न चली जाय, मृत्यु न आ जाय, पत्नी या पति छोड़ न दे, कहीं कोई ऐसी बीमारी या पीड़ा न आ घेरे जिसे मैंने बहुत पहले भोगी थी । इस प्रकार समय भय को लाता है । समय में ही व्यक्ति सोचता है—उसका पड़ोसी कल उसके बारे में न जाने क्या कहेगा ? जो बहुत पहले किया था उसका न जाने कल क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम होगा ? मन उन गुप्त अतृप्त इच्छाओं से भी भयभीत है जो सम्भवतः कभी पूरी न हों । इस प्रकार हमने देखा कि समय भय का कारण है । इसी कारण हम मृत्यु से, जो जीवन के अन्त में आती है भयभीत हैं—यह सोचकर कि कहीं वह पास में ही तो नहीं छिपी है ? अतः समय में भय तथा विचार निहित हैं । जहाँ विचार है, वहाँ समय है अर्थात् जहाँ विचार नहीं है वहाँ समय नहीं है । जो बीत चुका है उसके संबंध में सोचने से और इस बात से डरने से कि कहीं वह कल फिर न घट जाय, यही समय तथा भय पैदा करते हैं ।

आप इसे देखें । स्वयं इसका अवलोकन करें । न कुछ स्वीकार करें, न कुछ इन्कार करें । केवल ध्यान से सुनें । इसकी वास्तविकता को खोजें—केवल शाब्दिक रूप में न खोजें, सहमति अथवा असहमति प्रकट करते हुए न खोजें—और आगे बढ़ें । सत्य की खोज के लिये आपकी अनुभूति गहरी हो, आवेग तीव्र हो तथा आपके पास प्रचंड ऊर्जा हो, तब आप जान सकेंगे कि विचार ही भय को जन्म देता है । यह अतीत तथा भविष्य के संबंध में—अगले मिनट, अगले दिन या दस वर्ष के बाद—सोचते हुए इसे एक घटना बना देता है । मन उस घटना को जिसने उसे कभी सुख दिया था बार-बार याद करके उसे पकड़े रखता है ताकि उसे आगे भी सुख मिलता रहे—वह सुख चाहे काम-वासना का हो, स्नायविक हो, बौद्धिक हो या मनोवैज्ञानिक हो । उस घटना के बारे में सोचकर, उसका एक प्रतिबिम्ब बनाकर—जैसा कि बहुत से व्यक्ति करते हैं—मन उसे समय के माध्यम से सातत्य देता रहता है ताकि उसे अधिक सुख मिले ।

इस प्रकार हमने देखा कि विचार ही भय और सुख दोनों को पैदा करता है । और दोनों ही समय के अंग हैं । अतः विचार ही इस दो पहलू-वाले भय के सिक्के को जन्म देता है, जिसका एक पहलू है सुख व दूसरा है दुःख । अब वहाँ करने को क्या रह जाता है ? हम विचार की पूजा किये जा रहे हैं । यह हमारे लिये असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण हो गया है । हम सोचते हैं कि यह जितना चालाक होगा उतना अच्छा है । इस सिक्के का उपयोग बौद्धिक लोगों द्वारा व्यावसायिक, धार्मिक तथा पारिवारिक जगत् में शब्दों की माला के रूप में किया जाता है । हम उन व्यक्तियों का कितना सम्मान करते हैं जो बौद्धिक व शाब्दिक रूप से सोचने में बड़े चतुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं । लेकिन यह विचार ही हमारे भय और सुख के लिये जिम्मेदार है ।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आप सुख न चाहें । हम कोई कट्टर धार्मिक व्यक्ति नहीं हैं । हम तो इसे सही-सही रूप में समझने का प्रयत्न कर रहे हैं । इसे पूर्ण रूप से समझने के साथ ही भय की पूरी प्रक्रिया समाप्त हो जाती है । तब आप देखेंगे कि सुख की एक अलग ही गुणवत्ता है । इस संबंध में हम फिर कभी चर्चा करेंगे । हमने देखा कि विचार ही हमारी पीड़ा का कारण है । विचार का एक पहलू दुःख है और दूसरा पहलू सुख तथा उसका सातत्य है—जिसका अर्थ है सुख की माँग और उसकी तलाश, जिसमें धार्मिक तथा अन्य सभी प्रकार के सुख सम्मिलित हैं । तो फिर अब विचार क्या करें ? क्या इसका अन्त हो सकता है ? और उसका अन्त कौन करे ? क्या 'मैं' यह करे ? क्या वह स्वयं विचार नहीं है ? 'मैं' वस्तुतः विचार का ही परिणाम है । अतः फिर आपके सामने वही प्रश्न—'मैं' और 'मैं नहीं'—उपस्थित होता है और 'द्रष्टा' कहता है—"यदि मैं विचार का अन्त कर देता तो एक दूसरे ही प्रकार का जीवन जीता" । लेकिन वहाँ तो केवल विचार है—विचार को देखनेवाला नहीं । और 'द्रष्टा' कह रहा है कि मैं विचार को समाप्त करना चाहता हूँ, जब कि 'द्रष्टा' स्वयं विचार की ही उपज है । अब हम देखें कि विचार कैसे पैदा होता है । कोई भी साफ-साफ देख सकता है कि विचार हमारे मस्तिष्क में संगृहीत स्मृति, अनुभव तथा ज्ञान के द्वारा दिया गया उत्तर है । जब भी कुछ पूछा जाता है तब मस्तिष्क प्रतिक्रिया करता है तथा संगृहीत स्मृति में से उत्तर आता है । मस्तिष्क लाखों वर्षों के विकास-क्रम तथा संस्कारों का परिणाम है । विचार सदैव पुराना होता है, वह कभी स्वतंत्र नहीं होता और वह समस्त संस्कारों का ही प्रत्युत्तर है ।

तब क्या किया जाय ? जब विचार यह भलीभाँति समझ लेता है कि वह भय के संबंध में कुछ भी नहीं कर सकता क्योंकि वह स्वयं भय पैदा करता है, तब मौन अवतरित होता है, तब वहाँ सारी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं जो भय के लिये जिम्मेदार हैं । इसलिये मन—मस्तिष्क के साथ—इस आदत, विसंगति तथा 'मैं' और 'मैं नहीं' के बीच के संघर्ष के पूरे घटना-चक्र का अवलोकन करता है । उसे इस बात का पूर्ण बोध होता है कि 'द्रष्टा' ही 'दृश्य' है । भय का विश्लेषण उसे समाप्त नहीं कर सकता—वह ज्यों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यों बना रहता है। यह देखकर मन भी यह समझ लेता है कि विश्लेषण सही मार्ग नहीं है। तब प्रश्न उठता है—भय का मूल क्या है ? वह कैसे उत्पन्न होता है ?

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि भय वस्तुतः समय और विचार के द्वारा पैदा होता है। और विचार स्मृति की उपज है, अतः विचार ही भय का जनक है। विचार के नियंत्रण तथा दमन मात्र से या इसके रूपान्तरण से अथवा मन शांत करने की भिन्न-भिन्न युक्तियों के उपयोग से हम भय को समाप्त नहीं कर सकते। अपने भीतर इस सबके सही-सही बोध से, निर्विकल्प तथा वस्तुनिष्ठ अवलोकन से विचार स्वयं कहने लगता है—"मैं चुप होता हूँ—नियंत्रण व दमन के बिना ही मैं शांत हो जाता हूँ।"

तभी भय का अन्त होता है—जिसका अर्थ है दुःख का अन्त और स्वयं की पूर्ण समझ—स्वयं का ज्ञान। बिना स्वयं को जाने दुःख और भय का अन्त नहीं हो सकता। वही मन जो भय से मुक्त है, यथार्थ का साक्षात्कार कर सकता है।

सम्भवतः अब आप प्रश्न पूछना चाहेंगे। आप अवश्य प्रश्न पूछें। इस प्रकार प्रश्न पूछकर स्वयं को स्वयं के सामने प्रकट करना यहाँ बहुत जरूरी है। जब आप अकेले अपने कमरे में हों, या बगीचे में हों, या बस में चुपचाप बैठे हों, या घूमते हों, आप अवश्य प्रश्न करें ताकि आप खोज सकें। लेकिन आप सही प्रश्न पूछें और सही प्रश्न पूछने की क्रिया में ही सही उत्तर निहित है।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा करना सही चीज है कि हम अपने-आपको तथा अपने दुःख एवं पीड़ा को स्वीकार कर लें ?

कृष्णमूर्ति : आप जो हैं उसे कैसे स्वीकार कर सकते हैं ? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि व्यक्ति अपनी आंतरिक कुरूपता, अपनी क्रूरता, अपनी हिंसा, अपनी धूर्तता, अपने पाखंड, सभी स्वीकार कर ले ? क्या आप ये सभी स्वीकार कर सकते हैं ? और क्या आप परिवर्तन नहीं चाहते ? क्या सचमुच आप बिलकुल नहीं बदलना चाहते ? हम कैसे समाज की वर्तमान व्यवस्था को, उसकी नैतिकता तथा अनैतिकता को स्वीकार कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लें ? क्या जीवन का अर्थ ही निरन्तर परिवर्तित होना नहीं है ? जब कोई वस्तुतः जी रहा है तो वह बस जी रहा है । वहाँ स्वीकृति नहीं है । तब हम जीवन के प्रवाह के साथ जी रहे होते हैं और जीवन का प्रवाह चाहता है परिवर्तन, मानसिक क्रान्ति और रूपान्तरण ।

प्रश्नकर्ता : मैं नहीं समझ पा रहा हूँ ।

कृष्णमूर्ति : मुझे खेद है । शायद जब आपने 'स्वीकार' शब्द का प्रयोग किया तब आपने यह नहीं समझा था कि इसका साधारण भाषा में अर्थ है : चीजों को उसी तरह स्वीकार करना जैसी वे हैं ।

प्रश्नकर्ता : चीजें जिस तरह आएँ उसी तरह उन्हें स्वीकार करना ।

कृष्णमूर्ति : क्या चीजें जिस रूप में आएँ (जैसे कि मेरी पत्नी मुझे छोड़ दे तो भी) उन्हें उसी रूप में मैं स्वीकार कर लूँगा ? जब मैं रुपये खो देता हूँ, जब मेरी नौकरी चली जाती है, जब मेरी अवहेलना की जाती है या जब मेरा अपमान होता है, ऐसी अवस्था में क्या मैं ये सब चीजें वैसे ही स्वीकार कर लूँगा ? क्या मैं युद्ध स्वीकार कर लूँगा ? वस्तुएँ जैसे आती हैं उन्हें वैसे ही स्वीकार करने के लिए—सैद्धान्तिक रूप में नहीं, अपितु वास्तविक रूप में—हमें 'मैं' से मुक्त होना होगा । और यही हम आज की चर्चा में कहते रहे हैं, जिसका अर्थ है, मन को 'मेरे' और 'आपके', 'हम' और 'वे' से पूर्णतया मुक्त कर लेना । तभी आप क्षण-प्रतिक्षण अन्तहीन रूप से जी सकते हैं, जिसमें किसी प्रकार का संघर्ष या द्वंद्व नहीं है । वही है वास्तविक ध्यान और वास्तविक कर्मशीलता—द्वंद्व, क्रूरता और हिंसा से मुक्त ।

प्रश्नकर्ता : हमें सोचना होगा । यह अपरिहार्य है ।

कृष्णमूर्ति : हाँ, आप ठीक कहते हैं श्रीमान् । क्या आपके कहने का यह मतलब था कि हम बिलकुल ही न सोचें ? किसी भी काम को करने के लिए आपको सोचना होता है । आपको अपने घर जाने के लिये सोचना होता है । हम शाब्दिक आदान-प्रदान करते हैं जो विचारों की ही बदौलत है। अतः हम देखें कि विचार का जीवन में क्या स्थान है ? जब आप कुछ कर रहे होते हैं, तब विचार की आवश्यकता होती है । कृपया इसे समझें। कोई भी तकनीकी कार्य करने के लिए, कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार की आवश्यकता होती है। स्पष्टता तथा वस्तुनिष्ठता से एवं बिना भावुकता, बिना पूर्वाग्रह तथा बिना मत के, सोचने के लिये विचार की आवश्यकता है ताकि कार्य एकदम स्पष्टता से किया जा सके। परन्तु हम यह भी जानते हैं कि विचार भय भी उत्पन्न करता है और यह भय कार्य को कुशलता से करने में रुकावट पैदा करता है। अतः क्या आपके लिए यह सम्भव है कि जब विचार की आवश्यकता पड़े तब आप निर्भयता से कार्य करें तथा जब आवश्यकता न हो तब शांत रहें ? क्या हमारा मन और हृदय इस भय, सुख, विचार तथा मौन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझ सकता है ? क्या आपके लिये यह सम्भव है कि जब आवश्यकता पड़े तब आप विचार का बड़ी सूझ-बूझ के साथ उपयोग करें और जब आवश्यकता न हो तब उसका कतई उपयोग न करें, निश्चित रूप से यह बहुत सरल है, है न ? दूसरे शब्दों में क्या मन इतना सावधान हो सकता है कि जब आवश्यकता हो तब यह पूर्ण सजगता से सोचे और कार्य करे—जहाँ न किसी प्रकार की सुषुप्ति हो और न यांत्रिक ढंग से कार्य करना हो ?

अतः महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम कैसे सजग रहें, न कि हम सोचें या नहीं सोचें। पूर्ण सजगता के लिए आवश्यकता है गहरे बोध की—विचार, भय, प्रेम, घृणा और अकेलेपन के गहरे बोध की। इसके लिए हमें अपने समग्र जीवन को—जिस तरह इसे हम जी रहे हैं—गहराई से समझना होगा। यह तभी सम्भव है जब हमारा मन पूर्णतया सजग हो तथा उसमें किसी भी प्रकार की विकृति न हो।

प्रश्नकर्ता : क्या आप यह कह रहे हैं कि खतरे की उपस्थिति में आप अपने अनुभव से प्रतिक्रिया करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप ऐसा नहीं करते ? जब आप कोई खतरनाक जानवर देखते हैं तब आप क्या स्मृति तथा अनुभव से प्रतिक्रिया नहीं करते ? हो सकता है यह अनुभव आपका व्यक्तिगत न हो, जातिगत विरासत में प्राप्त हो, जो कहता है—सावधान रहो।

प्रश्नकर्ता : मेरे मन में भी यही बात थी।

कृष्णमूर्ति : लेकिन हम जब राष्ट्रीयता, युद्ध तथा अलग-अलग सार्वभौम सरकारों के खतरों को देखते हैं तब हम उतनी ही कुशलता से कार्य क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करते ? सचमुच ये अत्यन्त भयंकर खतरे हैं । फिर क्यों नहीं हममें प्रतिक्रिया होती है ? क्यों नहीं हम यह सब बदलने के लिए आवाज उठाते हैं ? इसका अर्थ है, आप अपने पूरे ज्ञात जीवन को बदलें । आप किसी विशेष राष्ट्र या झंडे या देश या धर्म से संबंधित न हों, ताकि आप एक स्वतंत्र इन्सान बन सकें । परन्तु आप ऐसा नहीं करते । हम केवल शारीरिक खतरों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं, लेकिन मनोवैज्ञानिक खतरों के प्रति नहीं, जो कहीं ज्यादा विनाशकारी हैं । हम या तो वस्तुओं को वे जैसी हैं उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं या हम किसी काल्पनिक रामराज्य निर्मित करने के लिए उनके विरुद्ध विद्रोह करते हैं और फिर पुनः-पुनः वहीं लौट आते हैं । आन्तरिक तथा बाहरी खतरों को देखना एक ही बात है जिसका अर्थ है सजग होना—दूसरे शब्दों में प्रज्ञावान तथा संवेदनशील होना ।

एम्स्टरडैम, मई 10, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6

जीवन की अखंडता समझने की प्रयोजन-रहित उत्कटता

मैं स्वयं से यह प्रश्न करता हूँ कि मनुष्य में उत्कटता की इतनी कमी क्यों है ? वे सत्ता, प्रतिष्ठा तथा दिलबहलाव के अनेकों रूपों—सेक्स, धार्मिक क्रिया-कांड आदि—तथा अन्य वासनाजन्य उत्तेजनाओं के पीछे तो पागल हैं, परन्तु उनमें से कितने ऐसे हैं जिनमें यह गहरी उत्कटता है जो जीने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को—किसी आंशिक क्रिया को नहीं—समग्रता से समझने में आवश्यक है । सभी अपने-अपने व्यवसाय में लीन हैं—बैंक का मैनेजर अपने व्यवसाय में पूर्णरूप से मग्न है तो कलाकार तथा वैज्ञानिक अपने-अपने क्षेत्र में डूबे हुए हैं । इसलिये जीवन की अखंडता के बोध के लिये स्थायी और तीव्र उत्कटता को प्राप्त करना निश्चित रूप से अत्यन्त कठिन हो गया है ।

सम्पूर्ण जीवन को समग्र रूप से समझने के लिये तथा प्रेम और मृत्यु के रहस्य के बोध के लिये केवल बौद्धिक सामर्थ्य तथा गहरी अनुभूति की ही आवश्यकता नहीं है अपितु इससे कहीं ज्यादा आवश्यकता है शक्ति की जो केवल हमें उत्कटता ही दे सकती है । चूँकि हमारी समस्या अत्यन्त जटिल, गूढ़ तथा गम्भीर है अतः हमें अपना समग्र ध्यान ही, जो हमारे गहरी उत्कटता का ही एक रूप है, इस ओर लगाना होगा, ताकि हम अपने लिये यह खोज सकें कि क्या जीवन जीने का ऐसा भी कोई मार्ग है जो हमारे रोजमर्रा के जीवन से बिलकुल ही पृथक् हो ? यह सब समझने के लिये हमें कई चीजों की छानबीन करनी होगी—चेतना में घटनेवाली प्रक्रिया, मन की सतही तथा गहरी परतें, हमारी बाह्य तथा आन्तरिक व्यवस्था का स्वरूप ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वप्रथम हमें जीने के अर्थ को खोजना होगा जिसका मतलब इसे केवल बौद्धिक महत्त्व न देकर इसे यथार्थ रूप में समझना है । साथ-साथ हमें यह भी जानना होगा कि प्रेम क्या है, मृत्यु का अर्थ क्या है ? हमें इन सभी प्रश्नों की छानबीन करनी है—केवल चेतन मन में ही नहीं अपितु अचेतन मन की अज्ञात गहराइयों में भी । हमें स्वयं से पूछना होगा कि व्यवस्था क्या है ? जीने का सही अर्थ क्या है ? और यह भी देखना होगा कि क्या मनुष्य के लिये इस विश्व में समग्र प्रेम, करुणा, कोमलता तथा स्नेह के साथ जीना सम्भव है । मृत्यु जैसी असाधारण चीज के अर्थ का भी हमें पता लगाना होगा ।

ये सब खंड-खंड नहीं हैं, अपितु एक ही समग्र प्रवाह हे, एक ही अविच्छिन्न गति है । हम यदि इन्हें—जीवन, प्रेम एवं मृत्यु को खंड-खंड समझेंगे तो हम समग्र जीवन को नहीं समझ सकेंगे । जीवन है एक अनन्त बहाव । इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने के लिये केवल बौद्धिक शक्ति ही नहीं अपितु प्रबल एवं तीव्र संवेदना भी आवश्यक है जो प्रयोजनरहित उत्कटता का ही एक रूप है । इस ऊर्जा की ज्योति का सतत अन्दर-ही-अन्दर प्रज्वलित रहना जरूरी है । हमारा मन खंडित है, अतः इस चेतन तथा अचेतन मन की गहराइयों में प्रवेश करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वहीं से समस्त विभाजन—'मैं' और 'मैं नहीं', 'आप' और 'मैं', 'हम' और 'वे'—प्रारम्भ होते हैं । जहाँ तक यह अलगाव है—राष्ट्रीय, धार्मिक और पारिवारिक अलगाव—तब तक जीवन में अनिवार्य रूप से विभाजन होगा, हमारा दैनिक जीवन नीरस और यांत्रिक होगा, तथा वह वस्तु जिसे हम प्रेम कहते हैं वह ईर्ष्या, मालकियत, निर्भरता तथा प्रभुत्व से घिरा रहेगा; हममें भय होगा और मृत्यु की अटलता होगी । क्या हम इस विषय पर गम्भीरता से चर्चा करेंगे—केवल तात्त्विक या शाब्दिक रूप से नहीं परंन्तु यथार्थ रूप से—तथा यह खोजेंगे कि हममें यह विभाजन क्यों है, जो इतना अधिक दुःख, संभ्रम व द्वंद्व पैदा करता है ?

हम अपने ऊपरी मन का, जिसका संबंध हमारी आजीविका, हमारी यांत्रिक तथा वैज्ञानिक जानकारी तथा हमारे संगृहीत ज्ञान से है, स्पष्टता से अवलोकन कर सकते हैं । हम अपने ऊपरी मन को ऑफिस में स्पर्धा करते हुए तथा स्वयं को छिछले कार्य-कलापों में व्यस्त रखते हुए देख सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु मन के अज्ञात आयाम भी हैं, जो कभी खोजे नहीं गये हैं क्योंकि हम नहीं जानते हैं कि वे कैसे खोजे जायें ? और यदि हम उन्हें कभी स्पष्टता तथा बोध के प्रकाश में लाने का सोचते भी हैं तो हम तत्काल या तो इस संबंध में पुस्तकें पढ़ने लग जाते हैं, जो हमें इस विषय में बहुत कुछ बताती हैं, अथवा हम किसी मनोविश्लेषक या तत्त्वज्ञानी के पास चले जाते हैं । लेकिन हम स्वयं इन्हें देखना नहीं जानते । भले ही हम ऊपरी मन के कार्यों को समझ लें परन्तु स्पष्ट रूप से हम इस अचेतन मन क़ी उन गहरी गुफाओं को देखने में समर्थ नहीं हैं जहाँ हमारा सम्पूर्ण अतीत विद्यमान है । क्या चेतन मन अपनी सकारात्मक माँगों तथा दुराग्रहों के साथ अचेतन मन की गहराइयों में झाँक सकता है ? मुझे नहीं मालूम कि आपने कभी यह करके देखा हो । यदि आपने कभी गम्भीरता और दृढ़ता से ऐसा किया है तो आपको वहाँ अतीत का विशाल संग्रह, जातीय परम्पराएँ, धार्मिक प्रभाव तथा विभाजन छिपे दिखायी दिये होंगे । हमारा हर प्रकट मत इस अतीत के भंडार से, जो हमारे पूर्वज्ञान तथा अनुभव पर आधारित है, निकलता है । क्या मन यह सब देख सकता है, उसे समझ सकता है और उसके पार जा सकता है ताकि फिर कोई विभाजन ही न रहे ?

इसे समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जीवन को खण्डों में देखने की हमारी पुरानी आदत है । जब तक यह बिखराव है तब तक सफलता की माँग है—'मैं' की सफलता की, कुछ पाने की, स्पर्धा करने की, ऊँची आकांक्षा की माँग है । जीवन के इसी बिखराव के कारण हमारा व्यक्तित्व दुहरा हो गया है । हम एक ओर व्यक्तिवादी हैं तो दूसरी ओर समष्टिवादी, एक ओर आत्मकेन्द्रित तो दूसरी ओर समष्टिकेन्द्रित । हमारी चेतना का यह गहरा विभाजन तथा हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व में व्याप्त यह अलगाव ही हमारे समस्त कार्यों में, हमारे सभी विचारों तथा हमारी भावनाओं में विभाजन पैदा कर देता है । अतः हम जीवन का तथा उन वस्तुओं का जिन्हें हम प्रेम तथा मृत्यु कहते हैं, विभाजन कर देते हैं ।

क्या यह सम्भव है कि हम अतीत का—अचेतन मन का, बिना इसे विशेष महत्त्व दिये, अवलोकन कर सकें ? हमारा अज्ञात अचेतन ही हमारा अतीत है और हम यहीं से प्रारम्भ कर रहे हैं । यह भी एक विभाजन है—अतीत, वर्तमान व भविष्य का ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सब शायद आपको बहुत जटिल लगे, परन्तु ऐसा नहीं है। यदि कोई अपने समस्त क्रियाकलाप का अवलोकन करे, अपनी मान्यताओं, विचारों तथा निष्कर्षों का परीक्षण करे तो यह आसान है। जब आप अपने-आपको सूक्ष्म रूप से देखेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि आपके समस्त कार्य आपके अतीत के निष्कर्षों, मान्यताओं तथा धारणाओं पर आधारित हैं और यही अतीत स्वयं आदर्श की-भविष्य की—कल्पना कर रहा है, जिसके अनुसार आप कार्य करते हैं। अतः अतीत ही सदा अपनी आकांक्षाओं, निष्कर्षों तथा धारणाओं के साथ कार्य कर रहा है। हमारा मन तथा हृदय इन स्मृतियों से बुरी तरह लदा है और ये स्मृतियाँ ही हमारे जीवन को आकार दे रही हैं और बिखराव पैदा कर रही हैं।

अतः आप स्वयं से पूछें—क्या चेतन मन इस अचेतन मन को पूरी शक्ति तथा समग्रता से देखकर इसके परे अतीत तथा इसके पूरे संग्रह को समझ सकता है? इसके लिये आवश्यक है आलोचनात्मक क्षमता की, जो पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो, स्वमताग्रही नहीं। ऐसा सम्यक् अवलोकन से ही संभव है। यदि आप सचमुच सजग हैं तो यह चेतना का विभाजन ही समाप्त हो जाता है। यह जाग्रत अवस्था तभी सम्भव है जब हममें मूल्यांकन से मुक्त आलोचनात्मक आत्मसजगता हो।

अवलोकन का अर्थ है आलोचनात्मक होना, न कि अपनी मान्यताओं तथा निष्कर्षों के अनुसार गुण-दोषों का विवेचन। लेकिन यदि यह परीक्षण व्यक्तिगत हुआ, भय तथा किसी प्रकार के पक्षपात से प्रभावित रहा तब यह परीक्षण सही नहीं होगा, बल्कि एकांगी होगा।

हमारा मकसद जीने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को—समग्र जीवन को—समझना है, किसी खण्ड मात्र को नहीं। हम किसी समस्या विशेष से, अथवा किसी सामाजिक कार्य से, जो समग्र जीवन का एक अंश है, संबंधित नहीं हैं। हम तो यह खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं और जानना चाह रहे हैं कि क्या सचमुच ऐसा कोई सत्य, ऐसी कोई असीमता, ऐसी कोई शाश्वतता है भी! हम तो समग्र जीवन के बोध से, सम्पूर्ण जीवन की समझ से, संबंधित हैं, न कि जीवन के किसी एक खण्ड से। तत्क्षण जीवन की समग्रता का पूर्ण बोध हो सके, इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारी सम्पूर्ण चेतना हमारी मान्यताओं, सिद्धान्तों, विचारों तथा 'मैं' व 'मैं नहीं' के समस्त द्वंद्वों से मुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो । यदि आप इत्ना समझ गये हैं तो अब हम जीवन के अर्थ के संबंध में खोज करें ।

हम समझते हैं कि जीवन का अर्थ विध्यात्मक क्रिया है—सोच-विचार, अनन्त भागदौड़, द्वंद्व, भय, दुःख, स्पर्धा, ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ, सफलता की कामना आदि । बस, इसे ही हम जीना माने बैठे हैं । यही हमारा जीना है, जहाँ कभी-कभार कुछ आनन्द के क्षण, कुछ करुणा की अनुभूति, कुछ निःस्वार्थ उदारता की झलक मिल जाती है । जीवन में कुछ विरले ही क्षण परम आह्लाद और आनन्द के घटित होते हैं जो समयातीत हैं । हमारा दैनिक जीवन तो बस ऑफिस जाने में, क्रोध तथा घृणा करने में, उपेक्षा तथा दुश्मनी करने में ही व्यतीत हो जाता है और इसे ही हम विध्यात्मक जीवन माने बैठे हैं ।

इस तथाकथित विध्यात्मक को यदि हम पूर्णतया अस्वीकार कर दें तभी वास्तविक विध्यात्मक का आगमन होगा । इस तथाकथित जीवन को, जो इतना कुरूप, एकाकी, भयभीत, क्रूर और हिंसक है, पूर्णतया अस्वीकार करने का ही अर्थ होगा एक विध्यात्मक जीवन का प्रारम्भ । क्या हम एक-दूसरे को समझ रहे हैं ? परम्परागत नैतिकता को यदि हमने अमान्य कर दिया तो एक वास्तविक नैतिकता आएगी । आज जिसे हम सामाजिक नैतिकता कहते हैं वह तो प्रतिष्ठा की नैतिकता है जो वस्तुतः अनैतिकता है, क्योंकि वह लोभ, स्पर्धा, ईर्ष्या, युद्ध आदि को स्वीकार करती है । इसे ही हम सामाजिक नैतिकता कहते हैं । धार्मिक लोग एक दूसरे प्रकार की नैतिकता की बात करते हैं, लेकिन उनका जीवन, उनका पूरा रंग-ढंग, उनका पण्डे-पुरोहितों द्वारा प्रशासित धर्म तथा उनकी श्रद्धा, सभी अनैतिक हैं । यह सब अस्वीकार करना कोई प्रतिक्रिया नहीं है । क्योंकि जब आप प्रतिक्रिया करते हैं, तब वह अपने प्रतिरोध द्वारा जन्म कलह है । परंतु यदि आप इसे इसलिए अस्वीकार करते हैं कि आप इसे समझते हैं तो वह नैतिकता का सर्वोच्च रूप है ।

जीने का सही अर्थ है सम्पूर्ण सामाजिक नैतिकता को अमान्य करना, अपने उस जीने के ढंग को अमान्य कर देना जिसमें छोटी-छोटी घटनाएँ हैं—छिछले विचार, छिछले समाधान, छिछला अस्तित्व है और ढेर सारा कूड़ा-कचरा है । यह सब अस्वीकार कर देना एक प्रतिक्रिया के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, अपितु इसलिये कि यह सब नासमझीपूर्ण और विनाशकारी जीवन जीने का मार्ग है । इस सबको नकार देने का ही अर्थ है जीना । असत्य को असत्य के रूप में देखना—यह देखना सत्य है ।

अब हम देखें, प्रेम क्या है ? क्या प्रेम सुख है ? क्या प्रेम चाह है ? क्या प्रेम आसक्ति है, अधीनता है ? क्या प्रेम उस व्यक्ति पर प्रभुत्व जमाना है जिसे आप प्रेम करते हैं ? क्या यह कहना—यह मेरा है, तुम्हारा नहीं, यह मेरी सम्पत्ति है, इसे भोगने का मेरा अधिकार है, प्रेम है ? क्या इसमें ईर्ष्या, घृणा, क्रोध तथा हिंसा नहीं है ? हमारे धार्मिक संस्कार ने प्रेम को पवित्र और अपवित्र ऐसे दो भागों में बाँट रखा है । क्या यह सब सचमुच प्रेम है ? क्या यह सम्भव है कि आप प्रेम भी करें और साथ ही महत्त्वाकांक्षी भी हों ? क्या आपका पति, जो महत्त्वाकांक्षी है, आपको प्रेम कर सकता है ? जहाँ प्रतिस्पर्धा है, जहाँ सफलता के लिए भागदौड़ है, क्या वहाँ प्रेम हो सकता है ?

यह सब अस्वीकार कर देना—केवल बौद्धिक अथवा शाब्दिक रूप से ही नहीं, अपितु अपने अस्तित्व से उसे पूर्णतया निकाल देना, ताकि फिर कभी वहाँ ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा, महत्त्वाकांक्षा का अनुभव ही न हो—वास्तविक प्रेम है । दोनों एक साथ चल नहीं सकते । वह पुरुष जो ईर्ष्यालु है और वह स्त्री जो अधिकार जमाती है, नहीं जान सकते कि प्रेम क्या है । वे भले ही प्रेम की बातें करें, भले ही एक साथ एक-दूसरे के हों, पारस्परिक सुविधा और सुरक्षा के लिये, अकेलेपन के भय से बचाव के लिये, भले ही वे एक-दूसरे पर आश्रित रहें, परन्तु निश्चित रूप से वहाँ प्रेम नहीं है । यदि आदमी सचमुच अपने बच्चों से प्यार करता तो क्या युद्ध होते ? क्या राष्ट्रों का विभाजन होता ? क्या किसी प्रकार का अलगाव होता ? जिसे हम साधारणतया प्रेम कहते हैं वह वस्तुतः एक यंत्रणा, निराशा तथा अपराध भावना बन गया है । प्रेम का संबंध साधारणतया सेक्स के सुख से जोड़ दिया गया है । हम कोई कट्टर धार्मिक या ढोंगी नहीं हैं । हम यह नहीं कह रहे हैं कि आप सुख कतई न चाहें । जब आप किसी बादल या आकाश या किसी सुन्दर चेहरे को देखते हैं तो आनन्दित होते हैं । जब हम एक फूल को देखते हैं तो हमें वहाँ सौन्दर्य का दर्शन होता है । हम सौन्दर्य को इन्कार नहीं कर रहे हैं । सौन्दर्यानुभूति विचारजन्य सुख नहीं है । लेकिन विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख को सौन्दर्य के साथ जोड़ देता है और इसीसे गड़बड़ी पैदा होती है।

इसी प्रकार जब हम प्रेम करते हैं, सेक्स में लिप्त होते हैं, तब विचार इसे सुख प्रदान करता है; इसकी एक प्रतिमा बना लेता है और इसे पुनः पुनः दुहराता चला जाता है। इस पुनरावृत्ति में सुख है और यह सुख सौन्दर्यानुभव नहीं है। सौन्दर्य, सुकुमारता तथा प्रेम के पूरे अर्थ से सेक्स को अलग नहीं किया जा सकता। जब हर चीज की छूट दे दी गयी तब संसार ने अचानक सेक्स को खोज लिया और यह असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण बन गया है। आज सम्भवतः मनुष्य के लिये यही एक पलायन और स्वतंत्रता है। बौद्धिक व भावात्मक रूप से छला जाता है, वह हर तरह से पराधीन है, टूटा हुआ है और उसके लिये जीवन में केवल एक ही अनुभव ऐसा रह गया जिसमें वह स्वतंत्रता का अनुभव कर पाता है और वह है सेक्स का अनुभव। सेक्स की उस स्वतंत्रता में उसे एक विशेष आनन्द का अनुभव होता है और इसीलिये वह उसे पुनः पुनः दुहराता चला जाता है। आप इस सबका अवलोकन करें और देखें कि अन्य सभी जगह वह धक्के खाता है, प्रताड़ित होता है, प्रेम कहाँ है ? वही मन और वही हृदय जो प्रेम से लबालब भरा है जीवन की समग्र गति को देख सकता है। तब वह व्यक्ति जो ऐसे प्रेम से परिपूर्ण है वह नैतिक है, नेक है और वह जो कुछ करता है वह सुंदर है।

उस सुव्यवस्था का आगमन कैसे हो जब कि हमारा जीवन इतना भ्रमित है, इतना अव्यवस्थित है ? हम सभी सुव्यवस्था चाहते हैं—केवल घर में ही नहीं, अपितु समाज में भी, जहाँ कि इतना ज्यादा अन्याय है। हम अपने अन्दर भी सुव्यवस्था चाहते हैं जो गहरी हो तथा गणित की तरह स्पष्ट हो। क्या ऐसी सुव्यवस्था तब तक सम्भव है जब तक हम किसी ढाँचे से बँधे हैं, जिसे हम व्यवस्थित समझ बैठे हैं ? उस स्थिति में हम यथार्थ की तुलना उस ढाँचे से करते रहेंगे, जिससे द्वंद्व पैदा होगा। क्या यह द्वंद्व ही अव्यवस्था नहीं है ? और इसीलिये यह सदाचार भी नहीं है। जब मन सदाचारी तथा नैतिक बनने के लिये संघर्ष करता है तो उस संघर्ष में ही अव्यवस्था है। अतः सदाचार सुव्यवस्था की निष्पत्ति है। इस सदाचरण का आगमन आपके विचारों के संघर्ष से नहीं, अपितु इस सम्पूर्ण अव्यवस्था का अत्यन्त सजगता तथा सूक्ष्मता से अवलोकन करने तथा समझने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। तब अवतरित होगी एक सर्वोच्च गुणवत्ता, एक पूर्ण सुव्यवस्था जो सदाचार का ही दूसरा नाम है और यह तभी सम्भव है जब प्रेम हो।

अब हम मृत्यु के प्रश्न को लें—मृत्यु, जिसे हमने बड़ी सावधानी से बहुत दूर रख रखा है क्योंकि वह सुदूर भविष्य में घटनेवाली है। हम मृत्यु से भयभीत हैं। हमें डर है शारीरिक रूप से समाप्त होने का तथा उन वस्तुओं से बिछुड़ जाने का भी हमें डर है जिनके हम मालिक रहे हैं, जिनके लिए हमने श्रम किया है और जिनको हमने भोगा है—पत्नी, पति, घर, फर्नीचर, फुलवाड़ी, पुस्तकें और अपनी साहित्यिक रचनाएँ। और हम उन सबके छूट जाने से भयभीत हैं क्योंकि हम स्वयं फर्नीचर हैं, हम वह तस्वीर हैं, जिस पर हमारा अधिकार है। जब हम सारंगी बजाते हैं तब हम सारंगी हैं क्योंकि हमने इन वस्तुओं के साथ अपनी एकात्मता स्थापित कर ली है। हम बस वही हैं और उनके सिवाय कुछ भी नहीं। क्या आपने कभी इस प्रकार इस विषय पर सोचा है ? आप स्वयं मकान हैं, मकान के दरवाजे हैं, पलंग हैं, फर्नीचर हैं जिन्हें आप वर्षों से सम्हालते आ रहे हैं। उनकी सफाई करते आ रहे हैं। आप स्वयं वे वस्तुएँ हैं, जिनके आप मालिक हैं। यदि आप उन्हें दूर कर देते हैं तो आप कुछ नहीं रह जाते।

और आप इसीलिये मृत्यु से भयभीत हैं। क्या यह बड़े आश्चर्य की बात नहीं है कि आप किसी ऑफिस में कार्य करते-करते चालीस वर्ष निकाल देते हैं और जब आप यह सब बन्द कर देते हैं तो आपको हृदय का रोग हो जाता है और आप मर जाते हैं ? यह इसलिए कि आप स्वयं ऑफिस हैं, आप ही फाइलें हैं, आप ही मैनेजर या क्लर्क हैं या और कोई पदाधिकारी हैं। आप स्वयं यह सब हैं और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं और आपने परमात्मा, करुण्ा, सत्य तथा आदर्श समाज के संबंध में ढेर सारे सिद्धांत बना रखे हैं और वे सब आप खुद हैं और इसीमें दुःख निहित है। परन्तु सबसे बड़ा दुःख तो यह है कि आप यह सब समझ नहीं लेते। इसे देखने और इसे पूर्णतया समझ लेने का अर्थ ही इनके प्रति मर जाना है।

मृत्यु अनिवार्य है। शरीर का अन्त निश्चित है। परन्तु हम अतीत के खत्म हो जाने से भयभीत हैं। हम स्वयं अतीत हैं। हम स्वयं समय हैं। हम ही दुःख और हम ही निराशा हैं। हमारे जीवन में बहुत कम ऐसे क्षण आते हैं, जब हमें सौन्दर्य का बोध होता है, क्षणभर के लिए हममें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोमलता की, करुणा की किरण फूटती है। हम मृत्यु से भयभीत होकर पूछते हैं—क्या मैं फिर जन्म लूँगा ? जिसका अर्थ है हम उस पुराने संघर्ष को, द्वंद्व को, दुःख को, अधिकार-भावना को, संगृहीत अनुभवों को छोड़ना नहीं चाहते हैं। पूरा पूर्व पुनर्जन्म में विश्वास करता है। आप इस चीज का पुनर्जन्म देखना चाहते हैं जो आप हैं और आप हैं भ्रमित, अव्यवस्थित कचरे-कूड़े के ढेर। एक बात और भी—यदि सचमुच पुनर्जन्म है तो आप फिर से नया जन्म लेंगे। अतः आप आज, अभी जो कुछ करते हैं, उसका बड़ा महत्त्व हो जाता है, क्योंकि उसी पर आपका अगला जन्म अवलम्बित है। आप सौन्दर्य के बीज बो रहे हैं या दुःख के, वह आज ही तय हो रहा है। परन्तु जो इतनी दृढ़ता से पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं वे नहीं जानते कि कैसे व्यवहार करें। यदि वे सचमुच आचरण के प्रति गम्भीर होते तो फिर वे कभी कल के संबंध में सोचते ही नहीं, क्योंकि वर्तमान के प्रति सजगता में ही भद्रता निहित है।

मृत्यु जीने का ही एक अंग है। आप तब तक प्रेम नहीं कर सकते जब तक कि आप मरने की कला नहीं सीख लेते। जिसका अर्थ है उस प्रत्येक वस्तु के प्रति मर जाना जो प्रेम नहीं है, समस्त आदर्शों के प्रति मर जाना जो आपकी ही अपेक्षाओं के प्रक्षेपण मात्र हैं, सम्पूर्ण अतीत के प्रति मर जाना, समस्त अनुभवों के प्रति मर जाना ताकि आप जान सकें कि प्रेम का तथा जीने का क्या अर्थ है। अतः जीना, प्रेम करना और मरना, एक ही वस्तु है जो इस क्षण समग्रता से, पूर्णता से जीने में घटित होती है। तब हमारे कर्म में विसंगति नहीं होती जो दुःख और पीड़ा को जन्म देती है। वहाँ जीना, प्रेम करना और मरना साथ-साथ घटित होता है और उसी-में कर्म है। यही कर्म सुव्यवस्थापूर्ण है। और यदि कोई इस प्रकार जिये—और जीना ही चाहिए, केवल कुछ क्षणों के लिए नहीं, अपितु प्रतिदिन, प्रतिक्षण—तभी समाज में सुव्यवस्था का आगमन हो सकता है। तब मानवीय एकता होगी तथा प्रशासन कम्प्यूटरों द्वारा चलेगा, न कि राजनीतिज्ञों द्वारा जो व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं तथा संस्कारों से बँधे हैं। अतः जीने का अर्थ ी है प्रेम करना और मरना।

प्रश्नकर्ता : क्या कोई तत्क्षण मुक्त हो सकता है और द्वंद्वों के बिना ी सकता है अथवा इसके लिए समय लगता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : क्या मनुष्य एकदम अतीत से मुक्त होकर जी सकता है या इसके लिये समय चाहिए ? प्रश्न यह है : क्या अतीत से मुक्त होने के लिए समय की आवश्यकता है ? क्या अतीत तत्क्षण जीने में रुकावट डालता है ? अतीत एक गुप्त गुफा जैसा है । यह उस तहखाने जैसा है जहाँ आप शराब सुरक्षित रखते हैं, यदि वह आपके पास है । क्या इससे मुक्त होने में समय लगता है ? हम समय के अभ्यस्त हैं । मैं खुद से कहता हूँ—"मुझे समय लगेगा । सदाचार का उपार्जन करना होता है, इसका दिन-प्रतिदिन अभ्यास करना होता है । मैं अपनी क्रूरता और घृणा से धीरे-धीरे मुक्त होऊँगा ।" यह है हमारी आदत । यह है हमारा संस्कार । और इसीलिए हम अपने-आपसे पूछते हैं, क्या इस सम्पूर्ण अतीत को एकदम फेंक देना सम्भव है ? तब समय का प्रश्न उठता है । यह ऐसा है जैसे कोई हिंसक व्यक्ति स्वयं से कहे, मैं क्रमशः हिंसा से मुक्त होऊँगा । इस क्रमशः का क्या अर्थ है ? धीरे-धीरे, रुक-रुककर । इस बीच मैं हिंसक बना ही रहता हूँ । हिंसा से धीरे-धीरे मुक्त होने का विचार एक ढोंगमात्र है । यदि मैं हिंसक हूँ तो निस्सन्देह इससे धीरे-धीरे मुक्त नहीं हो सकता । इसे मुझे तत्काल समाप्त करना होगा । क्या मैं मानसिक वस्तुओं को तत्क्षण खत्म कर सकता हूँ ? यदि मैं अतीत से क्रमशः मुक्त होने की बात सोचता हूँ तो मैं ऐसा नहीं कर सकता । लेकिन प्रश्न यथार्थ का बिना किसी विकृति के अवलोकन करने का है । यदि मैं ईर्ष्यालु हूँ तो मुझे इसे आंशिक रूप से नहीं बल्कि पूर्णतया देखना होगा । मैं अपनी ईर्ष्या को देखूँगा । मैं पूछूँगा, मैं ईर्ष्यालु क्यों हूँ ? इसलिये कि मैं एकाकी हूँ, जिस पर मैं आश्रित था वह मुझे छोड़ गया है और अचानक मैं अकेला—निपट अकेला—रह गया हूँ । मैं इस अकेलेपन से भयभीत हूँ और इसलिये मैं तुम पर आश्रित हूँ । यदि तुम मुझे छोड़ते हो तो मैं क्रोध करता हूँ, ईर्ष्या करता हूँ । वास्तविकता यह है कि मैं अकेला हूँ, मैं साथ चाहता हूँ । मैं किसी व्यक्ति को केवल भोजन बनाने के लिए या आराम पहुँचाने के लिये या सेक्स के लिये या अन्य किसी कारण के लिए नहीं चाहता बल्कि इसलिए चाहता हूँ कि मैं मूलतः अकेला हूँ । और इसी कारण मैं ईर्ष्या करता हूँ । क्या मैं इस अकेलेपन को तत्काल समझ सकता हूँ ? मैं इसे तभी समझ सकता हूँ यदि मैं इसे देखूँ—इससे भागूँ नहीं । यदि मैं इसे सूक्ष्मता से देखूँ, जाग्रत प्रज्ञा से देखूँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना किसी भी प्रकार का बहाना बनाये तथा बिना कोई नया साथी ढूँढ़े अपनी पूर्णता से इसे देखूँ तभी इस अकेलेपन से मुक्त हो सकता हूँ। इस प्रकार के अवलोकन के लिये स्वतंत्रता का होना आवश्यक है और जब अवलोकन की स्वतंत्रता होती है, तब मैं ईर्ष्या से मुक्त हो जाता हूँ। अतः ईर्ष्या का पूर्ण बोध, इसका समग्र दर्शन तथा इससे मुक्ति समय-सापेक्ष नहीं है। इसके लिए तो चाहिए तत्क्षण पूर्ण होश, सूक्ष्म सजगता और निर्विकल्प अवलोकन—तभी ईर्ष्या से तत्काल मुक्ति मिल जाती है। समय का प्रश्न ही नहीं उठता।

यही बात समान रूप से हिंसा, क्रोध तथा इस प्रकार की अन्य आदतों पर भी, चाहे वे धूम्रपान, मदिरा-पान तथा सेक्स संबंधी हों, लागू होती हैं। यदि हम उनका अत्यन्त ध्यानपूर्वक अपने समग्र मन तथा हृदय से अवलोकन करें, उनके प्रति अत्यन्त सजग हों तो वे छूट जाती हैं। एक बार यह सजगता की ज्योति जली कि फिर प्रत्येक आदत का, प्रत्येक संस्कार का तत्काल पूर्णता से अवलोकन किया जा सकता है, फिर चाहे वह क्रोध हो, या ईर्ष्या हो, हिंसा हो, या क्रूरता हो, ढोंग हो या दुश्मनी हो। इस अवलोकन में ही स्वतंत्रता है और वहाँ जो कुछ है वह विसर्जित हो जाता है। अतः अतीत को मिटाने के लिये समय की आवश्यकता नहीं है। समय के माध्यम से स्वतंत्रता नहीं पायी जा सकती। क्या यह क्रमशः समझने की धारणा अतीत को तत्काल न समझ सकने का एक प्रकार का आलस्य तथा असमर्थता नहीं है ? जब आपके पास स्पष्ट रूप से अवलोकन करने का सामर्थ्य होता है, जब आप अपने सम्पूर्ण मन तथा सम्पूर्ण हृदय से, समग्रता से देख सकते हैं, तब अतीत समाप्त हो जाता है। अतः समय तथा विचार अतीत को समाप्त नहीं कर सकते क्योंकि वे स्वयं अतीत हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या विचार मन की ही एक गति है ? क्या सजगता एक गतिहीन मन की क्रिया है ?

कृष्णमूर्ति : जैसा कि मैंने पिछले दिन बताया, विचार स्मृति की प्रतिक्रिया है। यह स्मृति ऐसी ही है जैसे कि कम्प्यूटर जिसमें आपने सभी प्रकार की जानकारी भर रखी है। जब किसी प्रश्न का उत्तर चाहते हैं तो कम्प्यूटर अपने संग्रह में से उत्तर देता है। इसी प्रकार हमारा मन और मस्तिष्क हमारे अतीत का यानी स्मृति का भंडार है और जब इसे चुनौती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी जाती है तब यह उसका उत्तर अपने ज्ञान, अनुभव तथा संस्कारों के अनुसार विचार के माध्यम से देता है। अतः विचार हमारे मन या मस्तिष्क की क्रिया है या क्रिया का एक भाग है। प्रश्नकर्ता यह जानना चाहता है कि क्या सजगता मन की निश्चलता है ? क्या आप किसी भी वस्तु को, वृक्ष को, अपनी पत्नी या अपने पड़ोसी को, किसी राजनीतिज्ञ या धर्मगुरु को या किसी सुन्दर चेहरे को—मन की किसी भी क्रिया के बिना देख सकते हैं ? इस अवलोकन में वे प्रतिमाएँ, जो आपने अपने पति या अपनी पत्नी या पड़ोसी या बादल आदि के बारे में बनायी हुई होती हैं, दखल देती हैं। है न ? अतः जब इन प्रतिमाओं के द्वारा, चाहे वे स्पष्ट हों या अस्पष्ट, रुकावट डाली जाती है तब सही अवलोकन व पूर्ण होश सम्भव नहीं होता। केवल आंशिक होश ही सम्भव होता है। सही व स्पष्ट अवलोकन के लिये यह आवश्यक है कि द्रष्टा तथा दृश्य के बीच कोई प्रतिमा न आये। जब आप किसी वृक्ष को देखते हैं तब क्या आप उसे बिना किसी प्रकार की वैज्ञानिक जानकारी के तथा बिना अपनी धारणाओं के हस्तक्षेप के देख सकते हैं ? क्या आप इसे इतनी समग्रता से देख सकते हैं कि आप (द्रष्टा) तथा उस वस्तु (दृश्य) के बीच किसी भी प्रकार का अन्तराल ही न रह जाय ? इसका यह अर्थ नहीं कि आप स्वयं ही वृक्ष हो जायँ। जब यह अन्तराल समाप्त हो जाता है तब द्रष्टा नहीं रह जाता, केवल वह वस्तु रह जाती है जिसे आप देख रहे हैं। इस असाधारण रूप से जीवन्त अवलोकन में उस वस्तु के रंग का, उसके आकार का, उसके तने का, उसके अप्रतिम सौन्दर्य का गहरा बोध होता है। अवलोकन में जब 'मैं' का केन्द्र समाप्त हो जाता है तब हम अवलोकित वस्तु के अन्तरंग संपर्क में आ जाते हैं।

जब भी मन के सामने कोई चुनौती आती है तब उसका सामना करने के लिये विचार कार्य करता है जो हमारे मस्तिष्क तथा मन का ही एक भाग है। परन्तु किसी नूतन वस्तु की खोज करने के लिये, जिसे पहले कभी नहीं देखा गया है, एक गहरी सजगता की आवश्यकता है जिसमें मन की किसी भी प्रकार की गति न हो। यह कोई रहस्यपूर्ण या गूढ़ वस्तु नहीं है कि जिसके लिये आपको वर्षों अभ्यास करना पड़े। यह सजगता तभी घटित होती है जब आप अपने दो विचारों के बीच अवलोकन कर रहे होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आपको ज्ञात है कि मनुष्य ने जेट इंजन की खोज कैसे की ? यह कैसे घटित हुआ ? उसे दाह इंजन की पूरी जानकारी थी और वह किसी नयी तकनीक की खोज में था। इस अवलोकन में अगर वह इंजन का ज्ञान साथ में ढोता रहता तो वह वही प्राप्त कर पाता जो वह पहले से ही जानता था। आप नयी वस्तु का आविष्कार तभी कर सकेंगे जब आपका मन मौन रहे। इसी प्रकार अपनी पत्नी या पति को, वृक्ष को या पड़ोसी को, समाज के सम्पूर्ण ढाँचे को सही रूप में देखने के लिये आपको देखने का एक नूतन मार्ग—मौन का मार्ग—खोजना होगा, जो जीने और कार्य करने का भी एक नया मार्ग होगा।

प्रश्नकर्ता : सिद्धान्तों तथा आदर्शों के बिना जीवन जीने के लिये हमें ऊर्जा कैसे प्राप्त होगी ?

कृष्णमूर्ति : इन आदर्शों तथा सिद्धान्तों के साथ रहने के लिये आपको ऊर्जा कहाँ से मिलती है ? आप जिन आदर्शों तथा सिद्धान्तों के साथ जिये चले जा रहे हैं उसके लिये आप कैसे ऊर्जा प्राप्त करते हैं ? आपकी सारी ऊर्जा द्वंद्व में खर्च हो रही है ! आदर्श कहीं दूर है, आप स्वयं यहाँ हैं और आप आदर्श के अनुसार जीने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिये विभाजन है, द्वंद्व है, और ये ही ऊर्जा को नष्ट करते हैं। अतः जब आप ऊर्जा का अपव्यय देखते हैं, जब आप आदर्श, नुसखों तथा मान्यताओं को स्वीकार करने की नासमझी तथा उनके द्वारा सतत पैदा होनेवाले द्वंद्व को देखते हैं तो तत्काल आपको उनसे मुक्त होने के लिये आवश्यक ऊर्जा मिल जाती है। तब आपके पास भरपूर ऊर्जा होती है क्योंकि तब द्वंद्व के कारण ऊर्जा का बिलकुल अपव्यय नहीं होता। परन्तु आप देखते हैं कि हम इस प्रकार जीने से भयभीत हैं क्योंकि हम संस्कारों से बँधे हैं, और इसीलिए हम अन्य लोगों की तरह सिद्धान्तों तथा आदर्शों के बने-बनाये ढाँचे को स्वीकार कर लेते हैं। हम उनके साथ जीते हैं और द्वंद्व को जीवन के एक अंग के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु जब हम यह सब देखते हैं—केवल शाब्दिक अथवा सैद्धान्तिक अथवा बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि अपने पूरे अस्तित्व से इस नासमझीभरे मार्ग को देखते हैं—तब सारा द्वन्द्व समाप्त हो जाता है और हममें असीम ऊर्जा का आगमन होता है। तब आपके सामने सिर्फ यथार्थ रह जाता है, यह यथार्थ कि आप लोभी हैं, आप दूसरों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार में रखनेवाले हैं, उन पर हुकूमत करनेवाले हैं, अन्य कुछ भी नहीं, कोई आदर्श नहीं कि मुझे लोभी नहीं होना चाहिए आदि। तब आप हैं और यथार्थ है और आप अपनी पूरी समग्रता से, पूरे होश से इस यथार्थ को देखते हैं क्योंकि तब आपके पास देखने के लिए भरपूर ऊर्जा होती है। और इसीलिए आप बिना आदर्श, बिना सिद्धान्त तथा बिना विश्वास के स्वतंत्रता के साथ जी सकते हैं, जिसका अर्थ है सम्पूर्ण अतीत के प्रति मर जाना और प्रेम करना।

एम्स्टरडैम, मई 11, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7

भय

प्रतिरोध, ऊर्जा एवं अवधान

हममें से अधिकांश व्यक्ति किन्हीं शारीरिक अथवा मानसिक आदतों से बँधे हुए हैं। बहुत ही कम लोग ऐसे हैं, जो इन आदतों के प्रति सजग हैं। अब हम यह देखें कि यदि कोई व्यक्ति इन आदतों के प्रति पूर्णतया सजग रहे तो क्या वह इनसे तत्क्षण मुक्त हो सकता है, बजाय इसके कि वह वर्षों तक इन्हें ढोता रहे ? क्या यह सम्भव है कि प्रत्येक आदत के प्रति, चाहे वह धूम्रपान की हो, सिर खुजलाने की हो, सतत हँसते रहने की हो, अथवा अन्य कोई विचित्र आदत हो, होशपूर्ण रहकर, उससे बिना किसी प्रकार का संघर्ष किये, हम मुक्त हो जाएँ ? क्या आप बिना किसी कारण के सतत बोलते रहने की या बिना वजह परेशान होने की आदत के प्रति सावधान रहकर उसका बगैर प्रतिरोध तथा बगैर नियंत्रण किये मुक्त हो सकते हैं ? इसमें कई बातों का समावेश है। एक तो यह है कि किसी भी आदत से संघर्ष करने से प्रतिरोध उत्पन्न होता है। दूसरी यह कि प्रतिरोध, चाहे किसी भी रूप में हो, द्वंद्व पैदा करता है। यदि कोई किसी आदत का प्रतिरोध, दमन अथवा नियन्त्रण करता है या उसके खिलाफ संघर्ष करता है, तो इसमें वह प्रचण्ड शक्ति खर्च हो जाती है, जिसका उपयोग उस आदत को समझने में किया जा सकता था। तीसरी बात यह है कि इस शक्ति के अपव्यय से व्यक्ति यह मान लेता है कि किसी भी आदत से छुटकारा पाने के लिये समय जरूरी है। उससे धीरे-धीरे ही छुटकारा पाया जा सकता है।

हमने आदत के संबंध में दो धारणाएँ बना रखी हैं। पहली तो यह कि केवल प्रतिरोध से तथा उस आदत के विपरीत आदत बनाने से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी आदत से छुटकारा सम्भव है। दूसरी यह कि कोई भी आदत धीरे-धीरे ही छूटती है। लेकिन यदि आप सचमुच इसका परीक्षण करें तो आपको दिखायी देगा कि किसी भी प्रकार का प्रतिरोध द्वंद्व को और अधिक बढ़ाता है और इस प्रकार वर्ष पर वर्ष बीतते चले जाते हैं और आदत ज्यों की त्यों बनी रहती है। प्रश्न यह है कि किसी भी आदत को क्या तत्काल समाप्त किया जा सकता है ?

भय भी एक आदत है। इससे मुक्ति पाने के लिये एक लम्बे समय तक इसके प्रतिरोध की नहीं, अपितु इसे समझने के लिये प्रचण्ड ऊर्जा की आवश्यकता है—एक ऐसी ऊर्जा जो इस आदत का सामना कर इसे तत्काल समाप्त कर सके और यही अवधान है। अवधान ऊर्जा का निचोड़ है। किसी आदत के प्रति सावधान होने का अर्थ है अपना सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण हृदय तथा अपनी सम्पूर्ण शारीरिक शक्ति उसे देखने में, उसे गहराई से समझने में लगा देना ताकि वह तत्काल विसर्जित हो जाय।

आप सम्भवतः सोचते हों कि आपकी आदतें कोई खास महत्त्व नहीं रखतीं अथवा यह कि इन आदतों से क्या होना-जाना है। कई बार आप अपनी आदतों के पक्ष में बहाने भी ढूँढ़ते हैं। लेकिन आदतों से पूर्णतया मुक्ति पाना सर्वथा सम्भव है और यह बहुत जरूरी भी है। यदि हम अपने मन में अवधान की वह गुणवत्ता स्थापित कर लें, जो प्रचण्ड शक्ति से परिपूर्ण है और उस अवधान के प्रकाश में किसी भी आदत का पूर्णता से अवलोकन करें और उसे समझें, तो हम प्रत्येक आदत सं मुक्त हो सकते हैं।

आप बहुत बोलते हैं या सतत बिना किसी मकसद के बड़बड़ किये चले जाते हैं। ऐसी अवस्था में यदि आप इस आदत के प्रति अत्यन्त सावधान हों तो आपमें सहज एक असाधारण ऊर्जा प्रकट होती है, जो किसी भी प्रतिरोध का परिणाम नहीं है। अवधान की यह ऊर्जा ही स्वतंत्रता है। यदि आप इसे एक यथार्थ के रूप में सचमुच गहराई से देखते हैं, इसका अहसास करते हैं, इसके प्रति पूर्णतया सजग रहते हैं, तब आप निश्चित रूप से भय के स्वरूप के बारे में आसानी से छानबीन कर सकते हैं। चूँकि हम एक पेचीदी समस्या पर चर्चा कर रहे हैं, अतः यह बहुत जरूरी है कि आप पूरे ध्यान तथा गहरी सजगता से सुनें अन्यथा हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच संवाद होना सम्भव नहीं है। यदि आप एक विषय के बारे में सोच रहे हों और वक्ता कुछ अन्य ही बोले जा रहा है तो निःसन्देह हमारा संवाद समाप्त हो जाता है। यदि आप अपने ही किसी भयविशेष से परेशान हैं और अपना पूरा ध्यान उसी ओर लगा रहे हैं तब भी हमारे बीच संवाद नहीं हो पाता। एक-दूसरे के साथ संवाद करने के लिये अवधान की गुणवत्ता आवश्यक है, जिसमें प्रेम हो, एक गहनता हो तथा प्रश्न को समझने की तीव्रता हो।

इस शाब्दिक संवाद से भी ज्यादा जरूरी है एकात्मता। संवाद शाब्दिक होता है जब कि एकात्मता मौन होती है। जब दो व्यक्ति यदि एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते हैं तो वे बिना किन्हीं शब्दों का उपयोग किये एक-दूसरे को तत्काल पूर्णतया समझ लेते हैं, क्योंकि उनके बीच एक प्रकार का संवाद हो चुका होता है। जब हम भय जैसे एक अत्यन्त जटिल प्रश्न पर चर्चा कर रहे हैं, तब तो इस एकात्मता की तथा इस शाब्दिक संवाद की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः हमें क्षण-क्षण साथ-साथ यात्रा करनी होगी, अन्यथा हम इस विषय को नहीं समझ सकेंगे। अब हम भय पर चर्चा करें।

क्या आप इस भय से मुक्त होना नहीं चाहते हैं ? परन्तु जब भी आप भय से मुक्त होना चाहते हैं, आप भय के विरोध में एक दीवार खड़ी कर देते हैं। इस प्रतिरोध द्वारा, चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो, भय नहीं समाप्त हो सकता। यह वहाँ बना ही रहेगा, फिर चाहे आप उससे पलायन करें, उसका प्रतिरोध करें, उस पर नियन्त्रण करें। भय से भाग जाने, इसे वश में करने अथवा इसके दमन करने या अपनी पूरी ताकत से इसका प्रतिरोध करने के बावजूद भी यह वहाँ बना ही रहता है। अतः हम भय से छुटकारा पाने के संबंध में चर्चा नहीं कर रहे हैं। किसी भी वस्तु से छुटकारा पाने का अर्थ मुक्ति नहीं है। कृपया आप इसे समझ लें। इस प्रश्न के संबंध में जो कुछ कहा जा रहा है, उसे यदि आप अपनी समग्रता से सुनते हैं, तो यह निश्चित है कि जब आप इस हॉल को छोड़ेंगे तब तक आप भय से मुक्त हो चुके होंगे। अतः महत्त्वपूर्ण है भय को पूर्णतया समाप्त कर देना, न कि यह कि वक्ता क्या कहता है, या आप उससे सहमत हैं या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः आप भय के प्रतिरोध या उससे छुटकारा पाने के संबंध में न सोचकर उसके ढाँचे तथा उसके स्वरूप को समझें, जिसका अर्थ है भय के संबंध में सीखना, उसका अवलोकन करना, उसके संपर्क में आना। हमें तो केवल भय के बारे में सीखना है, न कि उससे पलायन करना है या उसका साहस के साथ प्रतिरोध करना है। हमें तो बस सीखना है। इस सीखने का क्या अर्थ है, इसे समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। सीखने का अर्थ यह नहीं कि भय के बारे में कोई जानकारी एकत्रित करना है। हम सोचते हैं कि सीखने का अर्थ किसी वस्तु के बारे में जानकारी एकत्रित करना है, जैसे कि इटालियन भाषा सीखने के लिये कोई व्यक्ति उसके शब्दों को, शब्दों के अर्थों को तथा व्याकरण के अनुसार उन शब्दों के वाक्यों में प्रयोगों को सीखता है ताकि वह यह भाषा बोल सके। यह सीखना समय-सापेक्ष है; क्योंकि इसमें पहले जानकारी एकत्रित की जाती है और बाद में उसका उपयोग किया जाता है। मेरी दृष्टि में ऐसा सीखना वस्तुतः सीखना नहीं है। सीखना एक अविरत चलते रहनेवाली प्रक्रिया है, जो सदैव वर्तमान में घटती है—वर्तमान जो सतत गतिमान् है। यह कोई संगृहीत जानकारी का परिणाम नहीं है। हममें से अधिकांश व्यक्तियों को पहले ज्ञान, जानकारी या अनुभव संगृहीत करने व बाद में उसका उपयोग करने की आदत है। यहाँ हम एक बिलकुल दूसरी ही बात कह रहे हैं। ज्ञान सदैव अतीत का होता है और यही अतीत आपके कर्म को निश्चित करता है। इसके विपरीत हम कह रहे हैं—सीखना कर्म में ही निहित है और इसीलिए ज्ञान की तरह उसका कभी संग्रह नहीं होता।

भय के संबंध में सीखना भी वर्तमान ही में सीखना है, जो एकदम ताजा है। यदि भय का सामना हम अपने पुराने ज्ञान, पुरानी स्मृतियों तथा पुराने संबंधों के माध्यम से करते हैं तो उसे एकदम सीधे नहीं देख सकते। अतः हम उसके बारे में सीख भी नहीं सकते। यह सीखना तभी सम्भव है जब हमारा मन एकदम नया व ताजा हो और हम हैं कि भय का सामना सदैव पुरानी स्मृतियों, घटनाओं तथा अनुभवों के माध्यम से करना चाहते हैं। यही कारण है कि हम कभी भय को नये ढंग से नहीं देख पाते और न ही इसके बारे में कुछ नया सीख पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय अनेक हैं—मृत्यु का भय, अन्धेरे का भय, नौकरी छूटने का भय, पति अथवा पत्नी का भय, असुरक्षा का भय, इच्छा पूरी न होने का भय, प्रेम न पाने का भय, अकेलेपन का भय, असफलता का भय। क्या ये समस्त भय एक ही केन्द्रीय भय के अलग-अलग रूप नहीं हैं ? अब प्रश्न यह उठता है कि हम किसी भयविशेष को लें या स्वयं भय को उसके 'यथार्थ' रूप में समझें।

हम भय के स्वरूप को जानना चाहते हैं न कि उसके प्रकट होनेवाले अलग-अलग रूपों को। यदि हम भय के केन्द्रीय तथ्य को समग्रता से समझ लेते हैं, तब किसी विशेष भय को समझना व उसे समाप्त करना एकदम आसान होगा। अतः अपने किसी एक भय को न लेकर आप भय के ढाँचे तथा उसके स्वरूप को ही समझें, तभी आप अपने भयविशेष को समझ सकेंगे।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि हमारा मन भय से पूर्णतया मुक्त हो। क्योंकि जहाँ भय है, वहाँ अन्धेरा है। भय से मन मन्द हो जाता है। यह मन्द मन ही अलग-अलग प्रकार के पलायन, उत्तेजनाएँ तथा मनोरंजन की खोज करता है; फिर चाहे वह मनोरंजन उसे चर्च में मिले, चाहे फुटबाल के मैदान पर या रेडियो से मिले। ऐसा मन भयभीत है तथा वह स्पष्टता से देखने में असमर्थ है। वह यह नहीं जानता कि प्रेम करने का क्या अर्थ है। भले ही वह सुख को जान ले, पर प्रेम को निश्चित ही नहीं जान सकता। भय हमारे मन को नष्ट कर देता है तथा उसे कुरूप बना देता है।

भय दो प्रकार का है—शारीरिक भय और मनोवैज्ञानिक भय। शारीरिक भय का अर्थ है—किसी शारीरिक खतरे का उपस्थित होना। जैसे कि हमारे सामने एक साँप आ जाए या एक गहरी खाई हो। क्या खतरे से बचानेवाला यह शारीरिक भय प्रज्ञा नहीं है ? सामने एक खाई है और उसे देखते ही मैं अपनी प्रतिक्रिया करता हूँ। मैं उसके पास नहीं जाता। क्या यह भय प्रज्ञा नहीं है जो मुझसे कहती है—'सचेत रहो, वहाँ खतरा है' ? यह प्रज्ञा हमारे अतीत के अनुभवों का परिणाम है। अनेकों ने या मेरी माँ अथवा मित्र ने गिर-गिरकर हमें सचेत किया है कि 'सचेत रहो, वहाँ खाई है'। अतः उस शारीरिक भय में हमारी स्मृति एवं प्रज्ञा एक साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य कर रही है । एक भय और भी है । वह है मनोवैज्ञानिक भय, जो उस शारीरिक भय को लेकर है जो अतीत में किसी अत्यन्त पीड़ादायी बीमारी के कारण उत्पन्न हुआ था । आज वह पीड़ा नहीं है, फिर भी हम उससे भयभीत हैं कि कहीं वह फिर न आ जाए । अब क्या हम इस मनोवैज्ञानिक भय को समझ सकते हैं, ताकि वह पुनः पुनः उत्पन्न न हो ? "मुझे पिछले सप्ताह या एक वर्ष पूर्व पीड़ा हुई—जैसी बहुतों को होती है । दुःख भयंकर था । मैं नहीं चाहता हूँ कि वह फिर आए और डरता हूँ कि कहीं वह पुनः न आ जाए ।" ऐसा क्यों होता है ? कृपया बड़ी सावधानी से सुनें । हमारे मन में उस दुख की स्मृति है और विचार कहता है—'सावधान रहो, उसको फिर मत आने दो' । गत पीड़ा के संबंध में सोचने से उसकी पुनरावृत्ति का भय उत्पन्न होता है । इस प्रकार विचार स्वयं पीड़ा लाता है । यह है मनोवैज्ञानिक भय—पिछली बीमारी के दुःख की पुनरावृत्ति का भय ।

इस प्रकार विचार अनेक मानसिक भय पैदा करता है—इस बात का डर कि पड़ोसी न जाने क्या कहेगा, कहीं प्रतिष्ठा को धक्का तो नहीं लगेगा; इस बात का भय कि कहीं मैं सामाजिक नैतिकता का उल्लंघन न कर दूँ, कहीं मेरी नौकरी तो न छूट जायगी, इस बात की चिंता कि कहीं मैं अकेला न रह जाऊँ, कहीं कोई चिंता न मुझे आ घेरे आदि । इन सारे भय को पैदा करनेवाला है हमारा विचार ।

केवल ज्ञात भय हैं ऐसा भी नहीं, अज्ञात भय भी हैं, जो हमारे मन की गहरी परतों में छिपे हैं । ज्ञात भय की अपेक्षा इन अज्ञात भय को समझना अत्यन्त कठिन है । प्रश्न यह है कि इन अचेतन भय को, जो हमारे मन क़ी गहराइयों में छिपे हैं, कैसे सतह पर लाया जाय और किस प्रकार उनको उजागर किया जाय ? क्या हमारा चेतन मन यह कर सकता है ? क्या चेतन मन अपने सक्रिय विचार से उन अज्ञात भय का उद्घाटन कर सकता है, जो हमारे अचेतन मन में छिपे हैं ? (हम 'अचेतन' शब्द का उपयोग पारिभाषिक रूप से नहीं बल्कि इसलिये कर रहे हैं कि हमें उसके संबंध में, उसकी परतों के संबंध में जानकारी नहीं है ।) क्या हमारा चेतन मन, जो बड़ा धूर्त है और जिसे हमने अपने अस्तित्व को किसी भी तरह बनाये रखने के लिए तथा जैसी परिस्थिति है उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेने के लिये प्रशिक्षित किया है—अचेतन मन की सम्पूर्ण अंतर्वस्तु को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भय अनेक हैं—मृत्यु का भय, अन्धेरे का भय, नौकरी छूटने का भय, पति अथवा पत्नी का भय, असुरक्षा का भय, इच्छा पूरी न होने का भय, प्रेम न पाने का भय, अकेलेपन का भय, असफलता का भय। क्या ये समस्त भय एक ही केन्द्रीय भय के अलग-अलग रूप नहीं हैं ? अब प्रश्न यह उठता है कि हम किसी भयविशेष को लें या स्वयं भय को उसके 'यथार्थ' रूप में समझें।

हम भय के स्वरूप को जानना चाहते हैं न कि उसके प्रकट होनेवाले अलग-अलग रूपों को। यदि हम भय के केन्द्रीय तथ्य को समग्रता से समझ लेते हैं, तब किसी विशेष भय को समझना व उसे समाप्त करना एकदम आसान होगा। अतः अपने किसी एक भय को न लेकर आप भय के ढाँचे तथा उसके स्वरूप को ही समझें, तभी आप अपने भयविशेष को समझ सकेंगे।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि हमारा मन भय से पूर्णतया मुक्त हो। क्योंकि जहाँ भय है, वहाँ अन्धेरा है। भय से मन मन्द हो जाता है। यह मन्द मन ही अलग-अलग प्रकार के पलायन, उत्तेजनाएँ तथा मनोरंजन की खोज करता है; फिर चाहे वह मनोरंजन उसे चर्च में मिले, चाहे फुटबाल के मैदान पर या रेडियो से मिले। ऐसा मन भयभीत है तथा वह स्पष्टता से देखने में असमर्थ है। वह यह नहीं जानता कि प्रेम करने का क्या अर्थ है। भले ही वह सुख को जान ले, पर प्रेम को निश्चित ही नहीं जान सकता। भय हमारे मन को नष्ट कर देता है तथा उसे कुरूप बना देता है।

भय दो प्रकार का है—शारीरिक भय और मनोवैज्ञानिक भय। शारीरिक भय का अर्थ है—किसी शारीरिक खतरे का उपस्थित होना। जैसे कि हमारे सामने एक साँप आ जाए या एक गहरी खाई हो। क्या खतरे से बचानेवाला यह शारीरिक भय प्रज्ञा नहीं है ? सामने एक खाई है और उसे देखते ही मैं अपनी प्रतिक्रिया करता हूँ। मैं उसके पास नहीं जाता। क्या यह भय प्रज्ञा नहीं है जो मुझसे कहती है—'सचेत रहो, वहाँ खतरा है' ? यह प्रज्ञा हमारे अतीत के अनुभवों का परिणाम है। अनेकों ने या मेरी माँ अथवा मित्र ने गिर-गिरकर हमें सचेत किया है कि 'सचेत रहो, वहाँ खाई है'। अतः उस शारीरिक भय में हमारी स्मृति एवं प्रज्ञा एक साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य कर रही है । एक भय और भी है । वह है मनोवैज्ञानिक भय, जो उस शारीरिक भय को लेकर है जो अतीत में किसी अत्यन्त पीड़ादायी बीमारी के कारण उत्पन्न हुआ था । आज वह पीड़ा नहीं है, फिर भी हम उससे भयभीत हैं कि कहीं वह फिर न आ जाए । अब क्या हम इस मनोवैज्ञानिक भय को समझ सकते हैं, ताकि वह पुनः पुनः उत्पन्न न हो ? "मुझे पिछले सप्ताह या एक वर्ष पूर्व पीड़ा हुई—जैसी बहुतों को होती है । दुःख भयंकर था । मैं नहीं चाहता हूँ कि वह फिर आए और डरता हूँ कि कहीं वह पुनः न आ जाए ।" ऐसा क्यों होता है ? कृपया बड़ी सावधानी से सुनें । हमारे मन में उस दुख की स्मृति है और विचार कहता है—'सावधान रहो, उसको फिर मत आने दो' । गत पीड़ा के संबंध में सोचने से उसकी पुनरावृत्ति का भय उत्पन्न होता है । इस प्रकार विचार स्वयं पीड़ा लाता है । यह है मनोवैज्ञानिक भय—पिछली बीमारी के दुःख की पुनरावृत्ति का भय ।

इस प्रकार विचार अनेक मानसिक भय पैदा करता है—इस बात का डर कि पड़ोसी न जाने क्या कहेगा, कहीं प्रतिष्ठा को धक्का तो नहीं लगेगा; इस बात का भय कि कहीं मैं सामाजिक नैतिकता का उल्लंघन न कर दूँ, कहीं मेरी नौकरी तो न छूट जायगी, इस बात की चिंता कि कहीं मैं अकेला न रह जाऊँ, कहीं कोई चिंता न मुझे आ घेरे आदि । इन सारे भय को पैदा करनेवाला है हमारा विचार ।

केवल ज्ञात भय हैं ऐसा भी नहीं, अज्ञात भय भी हैं, जो हमारे मन की गहरी परतों में छिपे हैं । ज्ञात भय की अपेक्षा इन अज्ञात भय को समझना अत्यन्त कठिन है । प्रश्न यह है कि इन अचेतन भय को, जो हमारे मन की गहराइयों में छिपे हैं, कैसे सतह पर लाया जाय और किस प्रकार उनको उजागर किया जाय ? क्या हमारा चेतन मन यह कर सकता है ? क्या चेतन मन अपने सक्रिय विचार से उन अज्ञात भय का उद्घाटन कर सकता है, जो हमारे अचेतन मन में छिपे हैं ? (हम 'अचेतन' शब्द का उपयोग पारिभाषिक रूप से नहीं बल्कि इसलिये कर रहे हैं कि हमें उसके संबंध में, उसकी परतों के संबंध में जानकारी नहीं है ।) क्या हमारा चेतन मन, जो बड़ा धूर्त है और जिसे हमने अपने अस्तित्व को किसी भी तरह बनाये रखने के लिए तथा जैसी परिस्थिति है उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेने के लिये प्रशिक्षित किया है—अचेतन मन की सम्पूर्ण अंतर्वस्तु को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्घाटित कर सकता है ? मेरे विचार से यह संभव नहीं । भले ही यह चेतन मन एक परत को उघाड़ भी दे तो भी उसकी व्याख्या वह अपने संस्कारों के अनुसार करेगा और इस व्याख्या से उसका पूर्वाग्रह और भी मजबूत हो जाएगा । फलतः उसके लिए दूसरी परत का परीक्षण भी कठिन हो जायेगा ।

केवल चेतन मन के प्रयत्नों से अचेतन मन की अंतर्वस्तु का परीक्षण करना तब तक अत्यन्त कठिन है, जब तक कि चेतन मन अपने समस्त संस्कारों, पूर्वाग्रहों एवं भय से पूर्णतया मुक्त नहीं हो जाता । और यह अत्यन्त कठिन है, करीब-करीब असम्भव है । अतः प्रश्न उठता है, क्या कोई दूसरा मार्ग भी है, इस अचेतन मन को उद्घाटित करने का, जो सर्वथा भिन्न हो ?

अब हम यह देखें कि क्या मन आत्मविश्लेषण द्वारा या व्यावसायिक मनोविश्लेषकों के सहयोग से स्वयं को रिक्त कर सकता है ? जब मैं स्वयं अपना विश्लेषण करता हूँ, स्वयं परत-दर-परत का परीक्षण करता हूँ, जब निष्कर्ष निकालता हूँ, मूल्यांकन करता हूँ, तो कहता हूँ—'यह ठीक है', 'यह गलत है', 'यह मैं अपनाऊँगा', 'इसे दूर करूँगा' । अब प्रश्न यह है कि जब मैं विश्लेषण करता हूँ, तब क्या मैं उस चीज से अलग हूँ जिसका विश्लेषण कर रहा हूँ ? मुझे ही इसका उत्तर खोजना होगा और देखना होगा कि यथार्थ क्या है ? क्या विश्लेषक वस्तुतः विश्लेषित से भिन्न है ? क्या ईर्ष्या करनेवाला अपनी ईर्ष्या से अलग है ? वस्तुतः वह अलग नहीं है, वह स्वयं ही ईर्ष्या है । यह कहकर कि "मैं इस ईर्ष्या का अवलोकन कर इससे मुक्त होऊँगा", वह स्वयं को ईर्ष्या से अलग कर रहा है, जब कि ईर्ष्या और विश्लेषक एक-दूसरे के हिस्से हैं ।

विश्लेषण की प्रक्रिया में समय लगता है । मैं अपने विश्लेषण में कई दिन, कई वर्ष लगा देता हूँ । और अनेक वर्षों के बाद भी मैं भयभीत ही रहता हूँ । अतः विश्लेषण सही मार्ग नहीं है और यह समयसापेक्ष है । जब हमारा मकान जल रहा होता है तब हम उसके कारणों का विश्लेषण नहीं करते या किसी विशेषज्ञ की सलाह नहीं लेते ! उस समय तो हम क्रियाशील होते हैं । विश्लेषण एक प्रकार का आलम, एक प्रकार का पलायन है । हम हमारे मन की अक्षमता है । हाँ, किसी विक्षिप्त के लिये विश्लेषण का मार्ग भले ही कुछ हद तक उचित हो परन्तु फिर भी इससे विक्षिप्तता समाप्त नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती। किन्तु यह एक भिन्न सवाल है।

हमने देखा कि चेतन मन द्वारा अचेतन मन का विश्लेषण करना कोई सही मार्ग नहीं है। मन यह सब देखने व समझने के बाद स्वयं कहता है—'अब मैं और अधिक विश्लेषण नहीं करूँगा। यह सब व्यर्थ है'; 'अब मैं भय का प्रतिरोध नहीं करूँगा।' अब आप देखें कि मन के साथ क्या घाटत होता है ? जब मन ने सारे मार्ग—परम्परागत, विश्लेषणात्मक, प्रतिरोधात्मक मार्ग—जो समयसापेक्ष हैं—सभी अस्वीकार कर दिये तो क्या घटित होता है ? अब वह असाधारण रूप से तीक्ष्ण हो गया है। अवलोकन की आवश्यकता के कारण वह अत्यन्त तीव्र, गहन और जीवन्त हो गया है। अब मन पूछ रहा है : 'क्या कोई अन्य मार्ग भी है मेरी इन गहरी परतों को उद्घाटित करने का—ये गहरी परत अतीत को, जातिगत व अनुवंशिक एवं पारिवारिक परम्पराएँ, संस्कृति तथा धार्मिक रुढ़ियों का बोझ, हजारों वर्षों का कूड़ा-कचरा ? क्या मन इन सभी से मुक्त हो सकता है ? क्या वह इन सभी को दूर हटा सकता है, ताकि भय ही न रहे ?'

अतः प्रश्न यह है कि हमारा तीक्ष्ण मन, जिसने विश्लेषण को, जिसमें काफी समय लगता है, अस्वीकार कर दिया है, कैसे इस भय के प्रश्न को तत्क्षण पूर्णतया समाप्त कर दे ? अब इसके सामने न कोई आदर्श है, और न ही यह इसे भविष्य पर टाल देना चाहता है। अतः मन अब 'पूर्ण अवधान' की अवस्था में है। अब यह न भय से पलायन कर रहा है, न इसे समाप्त क़रने के लिए समय माँग रहा है—न विश्लेषण कर रहा है और न प्रतिरोध कर रहा है। अतः यह एक पूर्णतया नवीन गुणवत्ता से युक्त है।

मनस्विद् कहते हैं कि आपके लिए सपने देखना जरूरी है, अन्यथा आप पागल हो जाएँगे। मैं अपने-आपसे पूछता हूँ, 'मैं सपने देखूँ ही क्यों ?' क्या जीने का कोई ऐसा मार्ग है जहाँ कोई स्वप्न ही न आये ? और यदि स्वप्न बिलकुल ही समाप्त हो जाये तो मन को सचमुच गहन विश्रान्ति मिलेगी। मन पूरे दिन कार्य करता रहा, निरीक्षण करता रहा, सुनता रहा, प्रश्न करता रहा तथा किसी बादल को, किसी सुन्दर चेहरे को, पानी की लहरों को देखता रहा, जीवन के प्रवाह को, प्रत्येक वस्तु को देखता रहा—उनका सतत अवलोकन करता रहा। और अब जब वह सोता है तो यह जरूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि उसे पूर्ण विश्रान्ति मिले अन्यथा वह प्रातः थका-मादा उठेगा और पुराना का पुराना रहेगा ।

अतः हम देखें कि क्या कोई ऐसा भी उपाय है कि हमारा मन स्वप्नों से पूर्णतया मुक्त हो, ताकि वह नींद में पूर्ण विश्रान्ति प्राप्त कर सके और कुछ ऐसी गुणवत्ता को उपलब्ध हो सके जो जागृति में भी संभव नहीं है ? स्वप्नों से मुक्त होना निश्चित रूप से सम्भव है—और यह कोई अनुमान या कोई सिद्धांत या मन के द्वारा किया गया कोई आविष्कार या एक आशा मात्र नहीं है । किन्तु यह तभी सम्भव है जब आप पूरे दिन पूर्णतया होशपूर्ण रहें—अपने विचार की प्रत्येक क्रिया को देखते रहें, अपनी भावनाओं तथा इच्छाओं के प्रति सजग रहें, अपने अज्ञात मन से उठनेवाले प्रत्येक इशारे तथा प्रत्येक संकेत के प्रति सावधान रहें । चलते समय, बोलते समय, किसी व्यक्ति को सुनते समय पूर्णतया जागृत रहें, मन में उठनेवाली प्रत्येक महत्त्वाकांक्षा तथा ईर्ष्या का निरीक्षण करते रहें । 'फ्रांस के गौरव' के संबंध में उठनेवाली, या उस पुस्तक के विचारों के प्रति, जो कहती है कि "आपके धार्मिक विश्वास एवं धारणाएँ मूर्खतापूर्ण हैं", अपनी प्रतिक्रियाओं का अवलोकन करते रहें । क्षण-क्षण जागरूक रहें । आप जागते समय पूरें वक्त पूर्णतया सचेत रहें—बस में बैठते समय, पत्नी या बच्चों या मित्र से बातचीत करते समय, धूम्रपान करते समय, यह पता लगाते हुए कि आप धूम्रपान क्यों करते हैं । कोई जासूसी कथा पढ़ते समय, सिनेमा जाते समय तथा सिनेमा के कारणों के संबंध में कोई विचार उठते समय भी आप पूरे होश से रहें । उस समय भी पूर्ण सजग रहें जब आप किसी सुन्दर वृक्ष को अथवा आकाश में मँडराते हुए बादल को देखते हैं । आप अपने अन्दर तथा अपने बाहर जो कुछ क्षण-क्षण घटित हो रहा है उसके प्रति पूर्णतः सजग रहें । तब आप देखेंगे कि जब आप सोते हैं, तब आप सपने नहीं देख रहे हैं और जब आप दूसरी सुबह उठते हैं, तब आपका मन एकदम ताजा है, तीव्र है, जीवन्त है ।

पेरिस, अप्रैल 13, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8

परात्पर

यथार्थता में प्रवेश : ध्यान की परम्परा, यथार्थता और निश्चल मन

हम विश्व में फैली अराजकता, भयंकर हिंसा और अव्यवस्था के संबंध में चर्चा कर चुके हैं—ये सारी गड़बड़ियाँ न केवल बाहर बल्कि हमारे अन्दर भी हैं। और हमने देखा कि हिंसा का मूल कारण भय है, जिसकी हम छानबीन कर चुके हैं। मैं सोचता हूँ कि अब हम एक बिलकुल ही भिन्न विषय पर चर्चा करें जो हो सकता है कि आपमें से अधिकांश व्यक्तियों के लिए अपरिचित हो। फिर भी मेरी दृष्टि में यह अत्यन्त विचारणीय है। आप इसे कोई भ्रम या कोई कल्पना समझकर अमान्य न कर दें।

जीवन की अवधि बहुत छोटी है, उसमें दुर्घटनाएँ हैं, उसमें दुःख भरा है, उसमें अटल मृत्यु है, आदि का विचार कर मानव ने इतिहास के आरम्भ से ही ईश्वर की कल्पना की है। उसने जीवन की क्षण-भंगुरता को समझकर, जैसा कि हम आज भी समझ रहे हैं—एक ऐसे विराट् अनुभव को पाना चाहा, जो महान् हो, श्रेष्ठतम हो एवं मन तथा भावनाओं की पहुँच से बहुत दूर हो। उसने एक ऐसे जगत् का अनुभव करना चाहा, जो हमारे सामान्य जगत् से सर्वथा भिन्न हो, जो परात्पर हो यानी जो समस्त पीड़ाओं और यातनाओं के परे हो। और उसने इस परात्पर जगत् को खोज और शोध के माध्यम से पाना चाहा। आज हम इसी विषय की छानबीन करें, और देखें कि क्या सचमुच कोई यथार्थता है भी या नहीं। नाम आप उसे जो भी चाहें दे दें, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस विषय पर हमें गहराई से विचार करना होगा। इसके लिए यह जरूरी है कि हम केवल शाब्दिक तल पर ही विचार करके न रह जायँ; क्योंकि वर्णन वर्णित नहीं है; शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द हैं, वे वस्तु नहीं हैं । क्या हम उस रहस्य में प्रवेश कर सकते हैं जिसे मानव हमेशा से खोजने का, उसे पकड़ने का, उसे आमंत्रित करने का और पुजारी बनकर उसकी पूजा करने का प्रयत्न करता रहा है ?

हमारा जीवन वस्तुतः छिछला है, रिक्त है, पेचीदा तथा अर्थहीन है। परन्तु मानव सदा से इसमें कुछ अर्थ तथा कुछ महत्त्व खोजने का प्रयत्न करता रहा है । यदि कोई ज्यादा बुद्धिमान् रहा, तो उसने इस खोज के अर्थ तथा उद्देश्य को इतना अधिक जटिल बना दिया कि मनुष्य को जब इसमें कोई सौन्दर्य, कोई प्रेम, कोई गहनता नहीं दिखायी दी तो वह दोषान्वेषी बन गया और उसका इस पर से विश्वास ही उठ गया । वस्तुतः ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में किसी विचारधारा अथवा सिद्धांत का आविष्कार कर उसे प्रमाणित करना अथवा उसे अस्वीकार करना, दोनों ही अपूर्णतापूर्ण तथा भ्रामक हैं, क्योंकि हमारा पूरा जीवन ही, जैसे हम जी रहे हैं, सर्वथा अर्थहीन है । अतः हम जीवन में कोई अर्थ भरने का प्रयत्न न करें ।

हम मिलकर स्वयं अपने लिए यह खोजें कि कोई यथार्थता है भी या नहीं । मैं उस यथार्थता की बात कर रहा हूँ, जो कोई बौद्धिक या भावुकतापूर्ण आविष्कार नहीं है अथवा कोई पलायन नहीं है । इतिहास के आरम्भ से ही मनुष्य कहता आया है कि यथार्थता है, जिसे पाने के लिए आपको तैयारियाँ करनी होंगी, स्वयं को अनुशासित करना होगा, हर प्रकार के मोह से बचना होगा, संयम रखना होगा, कामवासना को नियंत्रित करना होगा तथा सन्तों तथा धर्मगुरुओं ने जो धर्म के नियम बताये हैं उनके अनुसार आचरण करना होगा । अथवा उसे पाने के लिए आपको संसार का त्याग कर किसी मठ या किसी गुफा में आश्रय लेना होगा, जहाँ आप अकेले रहकर ध्यान कर सकें, जहाँ कोई आपको मोहित न कर सके । क्या यह सब नासमझीपूर्ण नहीं है ? क्या कोई संसार से पलायन कर सकता है ? क्या किसी के लिए दुःख से, प्रतिरोधों से तथा उन समस्त वैज्ञानिक साधनों से अछूता रहना सम्भव है ? और ये धर्मशास्त्र हमें यही सब करने के लिये कहे जा रहे हैं । अतः हमें समस्त धर्मशास्त्रों तथा समस्त विश्वासों से मुक्त होना होगा ताकि हम सही अर्थों में निर्भय हो सकें ।

इसके लिए यह जरूरी है कि व्यक्ति सही अर्थों में नैतिक बने—जिसका अर्थ है वह अन्दर तथा बाहर से सुव्यवस्थित हो—न कि वह तथाकथित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैतिकता को स्वीकार करे, जो वस्तुतः अनैतिकता है । नैतिकता कर्म में हो, वास्तविक आचरण में हो, न कि केवल वैचारिक तथा सैद्धान्तिक हो ।

क्या यह सम्भव है कि बिना किसी दमन, नियंत्रण तथा पलायन के हम स्वयं को अनुशासित करें ? 'अनुशासन' का मूल अर्थ है 'सीखना', न कि दमन करना, मान लेना, किसीका शिष्य हो जाना या किसीका अनुकरण करना । सीखने की क्रिया के लिये अनुशासन चाहिए —एक ऐसा अनुशासन जो किसीके द्वारा थोपा नहीं गया हो, जो किसी आदर्श के लिये जबरदस्ती स्वीकारा न गया हो, जैसे कि संन्यासी का कठोर संयमित जीवन, जिसे उसने जबरदस्ती स्वीकारा है । इसका अर्थ यह नहीं कि आत्मसंयम की आवश्यकता नहीं है । यह गहरा आत्मसंयम ही है जो हमारे दैनिक जीवन के आचरण में व्यवस्था लाता है । हमारे आचरण में इस व्यवस्था की—गणित जैसी व्यवस्था की—अत्यन्त आवश्यकता है, जो सापेक्ष न हो, तुलनात्मक न हो या जो परिवेश के प्रभाव का परिणाम न हो । हमारा व्यवहार, हमारा आचरण ठीक हो ताकि हमारा मन पूर्णतया व्यवस्थित हो । मन, जो सताया गया है, कुंठित है, परिवेश से प्रभावित है तथा सामाजिक नैतिकता में ढाला गया है, वह निश्चित रूप से भ्रमित होगा और एक भ्रमित मन 'सत्य' का पता नहीं लगा सकता ।

यदि आप चाहते हैं कि आपका मन उस अनूठे रहस्य के द्वार तक—यदि ऐसी कोई चीज है भी—पहुँचे तो यह जरूरी है कि आप सदाचरण की, नैतिकता की—तथाकथित सामाजिक नैतिकता की नहीं—नींव रखें जहाँ स्वतंत्रता हो, जहाँ भय का नामोनिशान न हो । इसके बाद ही हमारा मन ध्यान की दिशा में कदम रख सकता है और जान सकता है कि सही मौन क्या है, सही अवलोकन क्या है, जहाँ द्रष्टा समाप्त हो जाता है । यदि हमारा जीवन, यदि हमारे कर्म सदाचरण पर आधारित नहीं हैं, तो हमारे लिये ध्यान का कोई अर्थ नहीं है ।

पूरब के देशों में 'ध्यान' के अनेक तरीके, अनेक विचार-धाराएँ एवं अनेक प्रणालियाँ एवं पद्धतियाँ प्रचलित हैं । यही हाल 'जेन' तथा 'योग' का भी है । इनका पश्चिम में भी प्रसार हुआ है । आपको इस संबंध में एकदम स्पष्टता से समझ लेना होगा कि किसी प्रणाली या पद्धति या किसी परम्परा को स्वीकार करके क्या मन सचमुच उस यथार्थता को उपलब्ध हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? आप स्वयं देखें कि यह बात कितनी नासमझीपूर्ण है । फिर चाहे वह पद्धति पूर्व से लायी गई हो या पश्चिम के द्वारा ईजाद की गयी हो । पद्धति का संबंध मान्यता से तथा पुनरावृत्ति से है । पद्धति से यह भी सूचित होता है कि किसी व्यक्तिविशेष को ज्ञान प्राप्त हो गया है और तब वह कहता है, 'यह करो', 'वह मत करो', और हम, उस यथार्थता को पा लेने की आशा में, जो कुछ कहा जाता है उसे मानने, उसका अनुकरण करने तथा उसके रोज-रोज के अभ्यास में यन्त्र की तरह लग जाते हैं । केवल मन्द तथा असंवेदनशील मन ही—न कि एक प्रज्ञावान् मन—किसी प्रणाली के अन्तहीन अभ्यास में लग सकता है और ऐसा करके वह और अधिक मन्द तथा और अधिक मूढ़ बनता जाता है । वह अपने ही संस्कारों के घेरे में अपना इच्छित अनुभव प्राप्त करता है, जिसका कोई अर्थ नहीं है ।

आपमें से सम्भवतः कुछ लोग पूर्व के देशों में गये हों और वहाँ ध्यान का अध्ययन भी किया हो । इसके पीछे परम्परा की एक लम्बी श्रृंखला है । प्राचीन काल में भारत में तथा पूरे एशिया में इसका बोलबाला था । आज भी वही परम्परा मन को जकड़े हुए है । इस विषय पर असंख्य ग्रंथ लिखे गये हैं । परन्तु, किसी भी परम्परा का, अतीत से लायी गयी किसी परम्परा का, यथार्थता की खोज में उपयोग करने का अर्थ है व्यर्थ समय गँवाना । मन का समस्त आध्यात्मिक परम्पराओं तथा मान्यताओं से मुक्त होना अनिवार्य है, अन्यथा हममें उच्चतम प्रज्ञा का अभाव रहेगा ।

अब हम यह देखें कि ध्यान यदि परम्परा नहीं है तो फिर क्या है ? ध्यान वस्तुतः परम्परा हो नहीं सकता, क्योंकि कोई आपको ध्यान सिखा नहीं सकता; आप इसके किसी विशिष्ट मार्ग का अनुसरण कर कह नहीं सकते कि मैं इस मार्ग पर चलकर ध्यान करूँगा । ध्यान का पूरा अर्थ ही है—मन का पूर्ण रूप से शांत हो जाना—मन का पूर्णतया मौन हो जाना, जो इधर-उधर भटका करता है—केवल चेतन तल पर नहीं अपितु अचेतन मन की गहराइयों में भी एकदम मौन हो जाना । इस संबंध में परंपरा का कहना है कि ध्यान के लिये विचारों को नियंत्रित करना आवश्यक है; परन्तु हमें इस परम्परा को पूरी तरह से एक ओर रख देना होगा और इन विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अत्यन्त निकटता से, वस्तुनिष्ठता से, तथा बिना भावुकता के अवलोकन करना होगा।

परम्परा कहती है कि ध्यान सीखने के लिये गुरु बनाना जरूरी है। पश्चिम की भी अपनी परम्परा है—प्रार्थना, चिन्तन एवं दोष-स्वीकृति। इस पूर्व तथा पश्चिम के सिद्धान्तों के अनुसार एक बात स्पष्ट है कि कोई अन्य व्यक्ति जानता है और आप नहीं जानते, और जो जानता है वह आपको सिखायेगा, वही आपको ज्ञान का प्रकाश देगा और इन्हीं मान्यताओं से प्रामाण्य, गुरु, उद्धारक, ईश्वर का पुत्र आदि का जन्म होता है। वे जानते हैं और आप नहीं जानते हैं। वे कहते हैं, आप इस प्रणाली का अनुसरण करें, इसका आप दिन-प्रतिदिन अभ्यास करें। अन्ततः यदि भाग्य ने आपका साथ दिया तो, आपको 'वह' प्राप्त हो जाएगा। इसका अर्थ यह हुआ कि आप स्वयं से दिन-रात संघर्ष किये जा रहे हैं, एक आदर्श या प्रणाली के अनुसार प्रयत्न किये जा रहे हैं, और अपनी ईर्ष्या, अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपनी इच्छा, अपनी वासना और अपनी भूख का दमन किये जा रहे हैं। अतः आप 'जो है' और आपको 'जैसा होना चाहिये' इन दोनों के बीच द्वंद्व है और इसे मिटाने के लिये आप प्रयास कर रहे हैं। प्रयास करनेवाला मन कभी शांत नहीं हो सकता। प्रयासों के माध्यम से मन की निश्चलता उपलब्ध नहीं हो सकती।

परम्परा कहती है कि विचार को नियंत्रित करने के लिए एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए। परन्तु एकाग्रता का अर्थ है प्रतिरोध करना, अपने चारों ओर एक दीवार खड़ी करना, ताकि किसी एक ही विचार या एक ही सत्य या एक ही चित्र या वस्तुविशेष पर मन को एकाग्र किया जा सके। परम्परा कहती है 'आप जो चीज पाना चाहते हैं उसे प्राप्त करने के लिये एकाग्रता का अभ्यास करें'। परम्परा यह भी कहती है कि आप सेक्स का त्याग करें, संसार की ओर से मुँह फेर लें, जैसा कि प्रायः सभी रुग्णचित्त संन्यासी किया करते हैं। और आप जब यह सब देखते हैं—केवल शाब्दिक या बौद्धिक रूप से नहीं—बल्कि यथार्थ रूप से देखते हैं,—बिना किसी प्रतिबद्धता के, बल्कि वस्तुनिष्ठता से देखते हैं, तभी आप इस सबको परे हटा देते हैं। इसे पूर्णतया दूर तो करना ही होगा, क्योंकि उसे दूर हटाने की क्रिया में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही मन मुक्त हो जाता है और साथ ही प्रज्ञावान् तथा सजग भी । फिर वह कभी भ्रम में नहीं पड़ता ।

ध्यान करने का गहरा अर्थ है—सदाचारी होना, नैतिक होना । यह नैतिकता किसी ढाँचा या किसी अभ्यास या किसी सामाजिक व्यवस्था का परिणाम नहीं है, अपितु यह एक ऐसी नैतिकता है जो सहजता से, निश्चित रूप से, आती है जब आप अपने-आपको समझते हैं, जब आप अपने विचारों, अपनी भावनाओं, अपने कार्यकलापों, अपनी वासनाओं तथा अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के प्रति निर्विकल्प रूप से पूर्णतया सजग रहते हैं, उनका बिना किसी चुनाव के अवलोकन करते हैं । और इसी अवलोकन से सही कर्म का जन्म होता है, जिसका किसी आदर्श या किसी अनुसरण से कोई संबंध नहीं होता । जब ऐसी सजगता हमारे भीतर अपने सौन्दर्य तथा संयम के साथ, गहराई से, व्याप्त हो जाती है, तब कठोरता का नामोनिशान भी नहीं रहता । क्योंकि कठोरता तो वहीं रहती है, जहाँ प्रयास होता है । जब कोई व्यक्ति समस्त प्रणालियों, सभी साधनों और सभी आश्वासनों का अवलोकन कर लेता है तथा, बिना चुनाव किये, वस्तुनिष्ठ होकर उन्हें समझ लेता है, तब वह इन सभी से मुक्त हो जाता है, उसका मन पूरे अतीत से मुक्त हो जाता है और तभी वह यह पता लगाने की ओर अग्रसर हो सकता है कि ध्यान क्या है ।

यदि आपने ध्यान की नींव नहीं रखी है तो आप ध्यान के सही रूप को नहीं समझ सकते, भले ही आप इसके साथ खेल लें, जैसे कि बहुत से व्यक्ति पूर्व में जाकर करते हैं । वे वहाँ किसी गुरु को खोज लेते हैं, जो उन्हें कैसे बैठना, कैसे श्वास लेना, क्या करना और क्या नहीं करना आदि सिखाते हैं, और जब वे लौटते हैं तब ध्यान पर एकाध पुस्तक लिख लेते हैं, जो एकदम मूर्खतापूर्ण है । प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही अपना गुरु बनना होता है और स्वयं ही अपना शिष्य बनना होता है । सत्य की खोज में कोई प्रामाण्य नहीं है, वहाँ तो सिर्फ बोध है ।

बोध केवल तभी सम्भव है जब हमारे अवलोकन में द्रष्टारूप में कोई केन्द्र न हो । क्या आपने कभी निरीक्षण किया है, देखा है, और क्या यह जानने का प्रयत्न किया है कि यह बोध क्या है ? बोध कोई बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है । यह कोई अन्तर्ज्ञान या अनुभूति नहीं है । जब कोई कहता है—"मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी वस्तु को एकदम स्पष्टता से समझता हूँ", इसका अर्थ हुआ कि जब कोई किसी वस्तु का एकदम मौन में अवलोकन करता है तभी वहाँ समझ का आगमन होता है । जब आप कहते हैं 'मैं कोई बात समझता हूँ', तब आपका मन बिना सहमति या असहमति के एकदम मौन में अपनी समग्रता से सुन रहा होता है । यही बोध है और ऐसा बोध अपने आपमें एक कर्म है । ऐसा नहीं कि पहले बोध हो और उसके पश्चात् कर्म । दोनों एक ही साथ घटित होते हैं । वे एक ही गति हैं ।

अतः ध्यान—यह शब्द परम्परा से बुरी तरह लदा हुआ है—इसका अर्थ है बिना किसी प्रयत्न तथा बिना किसी जोर-जबरदस्ती के मन तथा मस्तिष्क को उनकी क्षमता के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाना, सर्वोच्च प्रज्ञा तक ले जाना, ताकि वह असाधारण रूप से संवेदनशील हो सके । तब मस्तिष्क एकदम मौन हो जाता है । इसके अतीत का वह संग्रह, जो लाखों वर्षों से अब तक विकसित हो रहा था, जो अविराम रूप से लगातार क्रियाशील था, शान्त हो जाता है ।

अब प्रश्न यह उठता है : क्या मस्तिष्क, जो छोटी-छोटी उत्तेजनाओं से अपने संस्कारों के अनुसार हर समय प्रतिक्रिया किये जा रहा है, निश्चल हो सकता है ? परम्परा कहती है कि यह प्राणायाम एवं सजगता के अभ्यास से निश्चल हो सकता है । यहाँ पुनः प्रश्न उत्पन्न होता है : वह कौन है जो नियन्त्रित करता है, अभ्यास करता है तथा मस्तिष्क को आकार देता है ? क्या वह विचार नहीं है, जो कहता है, 'मैं द्रष्टा हूँ और मैं ही मस्तिष्क को नियंत्रित करनेवाला तथा मैं ही विचार को समाप्त करनेवाला हूँ ।' विचार ही विचारकर्ता को जन्म देता है ।

क्या मस्तिष्क के लिये यह सम्भव है कि वह पूर्णतया मौन हो सके ? यह भी ध्यान का ही एक अंग है कि आप खुद इसे खोजें । दूसरों द्वारा बताये जाने की प्रतीक्षा न करें । कोई भी व्यक्ति आपको शांतचित्त होने का मार्ग नहीं बता सकता । आपका मस्तिष्क, ज़ो संस्कृति तथा अनेक प्रकार के अनुभवों से बुरी तरह से संस्कारित है, जो लाखों वर्षों के क्रमिक विकास (इवोल्यूशन) का परिणाम है, क्या एकदम निश्चल हो सकता है ? यह बहुत ही जरूरी है कि हमारा मन मौन हो अन्यथा वह जो कुछ देखेगा या अनुभव करेगा, उसे विकृत कर देगा और अपने संस्कारों में उसे ढाल लेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें इस पर भी विचार करना होगा कि नींद का ध्यान में क्या स्थान है, नींद का जीवन में क्या स्थान है ? यह बड़ा विचारणीय प्रश्न है । यदि आपने कभी इसकी छानबीन की है तो आपको बहुत कुछ सीखने को मिलेगा । जैसा कि हमने पिछली बार कहा था कि स्वप्न अनावश्यक हैं । हमने यह भी बताया था कि मन तथा मस्तिष्क का दिनभर पूर्णतया सजग रहना आवश्यक है । मन इसके प्रति सजग रहे कि अन्दर व बाहर क्या घटित हो रहा है; इसके प्रति भी उसे होश रहे कि बाहरी घटनाओं के प्रति कौन-कौन सी तनावपूर्ण प्रतिक्रियाएँ उसके अन्दर हो रही हैं, साथ ही वह इसके प्रति भी सावधान रहे कि अचेतन मन से क्या-क्या सूचनाएँ आ रही हैं और फिर दिन के अन्त में वह इन सभी पर अवश्य विचार करे । यदि आप पूरे दिन जो कुछ घटित हुआ उस पर दिन के अन्त में विचार नहीं करते हैं, तो मस्तिष्क को यह कार्य रात्रि में, जब आप सोये होते हैं, करना पड़ता है ताकि मन में व्यवस्था लायी जा सके, जो बहुत जरूरी है । यदि आप यह सब दिन के अन्त में ही कर लेते हैं, तो जब सोते हैं तब आप एक बिलकुल ही भिन्न चीज सीखते हैं: तब आपका सीखना एक दूसरे ही आयाम का होता है; यह ध्यान का ही एक अंग है ।

सदाचार की नींव डालनी पड़ती है, जिसमें कर्म ही प्रेम है । समस्त परम्पराओं को अस्वीकृत कर देना है ताकि मन पूर्णतः मुक्त हो और मस्तिष्क एकदम शांत । यदि आपने यह सब समझ लिया है तो आप देखेंगे कि मस्तिष्क अवश्य शांत हो सकता है—किसी युक्ति से अथवा कोई मादक द्रव्य लेने से नहीं—बल्कि यह शांत होता है सम्पूर्ण दिन सक्रिय और निष्क्रिय रूप से सजग रहने से । और यदि आप दिन के अन्त में, दिनभर के क्रियाकलापों पर, विचार कर लेते हैं, तो इससे मस्तिष्क में एक व्यवस्था आ जाती है और जब आप सोते हैं तब आपका मस्तिष्क शांत हो जाता है और आप बिलकुल ही अनूठे ढंग से सीखने लगते हैं ।

अतः यह पूरा शरीर—मस्तिष्क तथा प्रत्येक अंग—पूर्णतया शांत है, जहाँ किसी भी प्रकार की विकृति का नामोनिशान नहीं है । और तभी यथार्थता को, यदि वह सचमुच है, ऐसा मन ग्रहण कर सकता है । उस अनन्तता को, यदि सचमुच ऐसी कोई अनन्तता है, बुलाया नहीं जा सकता ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा मन ही उसे उपलब्ध कर सकता है जो अकथनीय है, परात्पर है। ऐसा मन ही उस यथार्थता की सत्यता या असत्यता को देख सकता है।

आप सम्भवतः पूछेंगे, इस सबका जीने से क्या संबंध है ? मुझे तो मेरा रोजाना का जीवन जीना है—आफिस जाना, बर्तन धोना, भीड़ और शोर भरी बस में यात्रा करना—ध्यान से इस सबका क्या सरोकार है ? परन्तु ध्यान का अर्थ ही है हमारे दैनिक जीवन की समझ—जिसमें जटिलताएँ हैं, दुःख और पीड़ाएँ हैं, भय है, ईर्ष्या है, निराशा है, अकेलापन है, तथा जिसमें सफलता तथा प्रसिद्धि पाने की इच्छा है। इस सबको समझना ही ध्यान है। बिना इसको समझे जीवन के रहस्य को खोजने का प्रयत्न करना व्यर्थ है, अर्थहीन है। यह ऐसा ही है जैसे कोई अव्यवस्थित जीवन, अव्यवस्थित मन, गणित जैसी व्यवस्थितता को खोजने का प्रयत्न करे। ध्यान का संबंध तो जीवन से है—उसके दैनिक क्रिया-कलापों से है—न कि जीवन से दूर किसी भावुकतामयी, मोहक दुनिया से। एक ऐसी परमानन्द की अवस्था है जो सुख नहीं है। उसका आगमन तभी होता है जब हमारे जीवन में एक व्यवस्था हो, गणित की-सी व्यवस्था—जो अपने-आपमें पूर्ण हो। ध्यान जब हमारे दैनिक जीवन का ही एक अंग बन जाता है, तभी वह जो अक्षय है, समयातीत है, उसका आविर्भाव हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : वह द्रष्टा कौन है जो अपनी ही प्रतिक्रियाओं के प्रति सजग रहता है ? सजगता में किस ऊर्जा का उपयोग होता है ?

कृष्णमूर्ति : क्या आपने कभी किसी चीज को बिना प्रतिक्रिया के देखा है ? किसी वृक्ष को, किसी स्त्री के चेहरे को, किसी पर्वत या किसी बादल को, या पानी पर पड़ते हुए प्रकाश को, बगैर पसन्द या नापसन्दगी के, बगैर सुख या दुःख की भाषा में उन्हें बदलते हुए क्या कभी सहज रूप से देखा है ? इस प्रकार के अवलोकन में, जब आप पूर्णतः सावधान होते हैं, तो वहाँ क्या कोई द्रष्टा होता है ? कृपया आप यह स्वयं करके देखें। मुझसे न पूछें। यदि आप यह करते हैं तो आपको यह ज्ञात होगा। आप अपनी प्रतिक्रियाओं को देखें—बिना निर्णय, बिना मूल्यांकन तथा बिना विकृत किये, उनके प्रति सावधान हो जायें। अवधान की उस अवस्था में आप पायेंगे कि वहाँ न कोई द्रष्टा है, न विचारकर्ता है और न अनुभवकर्ता।

आपका दूसरा प्रश्न है—स्वयं में परिवर्तन लाने के लिए, स्वयं के रूपान्तरण के लिए या मानस में क्रांति के लिए कौन-सी ऊर्जा का उपयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है तथा वह ऊर्जा कहाँ से मिलती है ? हममें यह ऊर्जा है। परन्तु वह तनाव में, परस्पर विरोध में और द्वंद्व में खर्च हो रही है। 'मैं क्या करता हूँ' और 'मुझे क्या करना चाहिए' के संघर्ष में तथा हमारी इच्छाओं की आपसी लड़ाई में भी हमारी शक्ति का एक बड़ा भाग खर्च हो रहा है। लेकिन यदि आपमें किसी भी प्रकार की विसंगति न हो, तब आपके पास अपार शक्ति होगी। आप अपने स्वयं के जीवन को देखें—सचमुच देखें —आपको यह विसंगति स्पष्ट दिखायी देगी। एक ओर आप शांत होना चाहते हैं और दूसरी ओर किसीसे घृणा करते हैं; एक ओर आप प्रेम करना चाहते हैं और दूसरी ओर आप महत्त्वाकांक्षी हैं। यही विसंगति संघर्ष तथा द्वंद्व को जन्म देती है, जिससे शक्ति नष्ट होती है। यदि आपमें कतई विसंगति न रहे तो आपमें प्रचंड ऊर्जा का उदय होगा, जिससे आप अपना रूपान्तरण कर सकेंगे। अब प्रश्न है : क्या यह विसंगति समाप्त हो सकती है ? क्या 'द्रष्टा' तथा 'दृश्य', 'अनुभवकर्ता' तथा 'अनुभव', 'प्रेम' और 'घृणा' जैसे द्वंद्व के बिना हम जी सकते हैं ? क्या यह सम्भव है कि हमारे सामने केवल तथ्य रहे, उसके सिवाय और कुछ भी न रहे—तथ्य यह कि 'मैं घृणा करता हूँ', तथ्य यह कि 'मैं हिंसक हूँ'—न कि इसके 'विपरीत' का विचार। जब आप भयभीत होते हैं, तभी आप इसके विपरीत का, अर्थात् निर्भीकता के आदर्श का निर्माण करते हैं और इसीसे प्रतिरोध, विसंगति, प्रयास तथा तनाव का जन्म होता है। लेकिन जब आप भय को पूर्णतया समझ लेते हैं, इससे पलायन न कर इसे आप जब सजगता के साथ देखते हैं, तब हमारे मानसिक भय का विसर्जन ही नहीं होता अपितु हमें अवलोकन के लिए प्रचण्ड ऊर्जा भी मिलती है। परम्परा कहती है कि ऊर्जा की प्राप्ति के लिए आप सेक्स का त्याग करें, संसारी न बनें, एकाग्रता का अभ्यास करें, ईश्वर में अपना मन लगायें, संसार का त्याग करें, किसीके भी मोह में न पड़ें। परन्तु फिर भी मनुष्य वहीं का वहीं है। उसकी तृष्णाएँ हैं, उसके अन्दर काम तथा जैविक वासनाएँ उबल रही हैं, वह इच्छाएँ किये जा रहा है, उनका नियंत्रण व दमन किये जा रहा है, और इस प्रकार अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहा है। इसके विपरीत यदि आप सिर्फ तथ्य के साथ रहें, जिसका अर्थ है यदि आप क्रोधी हैं तो क्रोध को समझें, उसमें प्रवेश करें, उसके साथ रहें, उसके साथ जियें, अपनी पूरी शक्ति व सजगता से उसका अवलोकन करें—यह नहीं कि क्रोधित कैसे नहीं हुआ जाय—तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप पाएँगे कि आपके अन्दर एक प्रचंड ऊर्जा का विस्फोट हो रहा है। यह वही ऊर्जा है जो मन को स्वच्छ तथा हृदय को मुक्त रखती है ताकि वहाँ असीम प्रेम हो, विचार और भावनाएँ नहीं।

प्रश्नकर्ता : आनन्द क्या है ? क्या आप उसका वर्णन कर सकते हैं ? आपने कहा कि आनन्द सुख नहीं है ? क्या प्रेम भी सुख नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : आनन्द क्या है ? जब आप बादल को, उस बादल में प्रकाश को देखते हैं, तो आप वहाँ सौन्दर्य देखते हैं। सौन्दर्य आवेग है। बादल के सौन्दर्य को देखने के लिये तथा प्रकाश से झिलमिलाते वृक्ष की सुन्दरता का अनुभव करने के लिये आवेग की तथा तीव्रता की आवश्यकता है। इस तीव्रता में, इस आवेग में, कोई विचार या कोई पसन्दगी या नापसंदगी की कोई भावना नहीं है। आनन्द व्यक्तिगत नहीं है। प्रेम की तरह आनन्द भी मेरा या आपका नहीं हो सकता। लेकिन सुख मेरा या आपका होता है। जब मन ध्यानपूर्ण होता है, तब उसमें आनन्द होता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिसे शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता।

प्रश्नकर्ता : क्या आप यह कह रहे हैं कि न कुछ अच्छा है, न बुरा। क्या आपका यह कहना है कि सभी प्रतिक्रियाएँ अच्छी हैं ?

कृष्णमूर्ति : नहीं श्रीमान्, मैंने ऐसा तो नहीं कहा ? मैंने तो आपसे यह कहा कि आप अपनी प्रतिक्रियाओं को देखें, उन्हें आप अच्छी या बुरी न कहें। जब आप उन्हें अच्छी या बुरी कहने लग जाते हैं तब आप विसंगति पैदा कर देते हैं। क्या आपने बिना किसी प्रतिमा के माध्यम से, जो आपने वर्षों से बना रखी है, अपनी पत्नी को देखा है ? (कृपया क्षमा करें मुझे यह कहना पड़ रहा है) आपकी उसके बारे में एक प्रतिमा है और उसकी भी आपके बारे में एक प्रतिमा है और ये प्रतिमाएँ एक-दूसरे से संबंधित हैं, न कि आप संबंधित हैं। जब आप अपने संबंधों में सजग नहीं होते हैं तब ये प्रतिमाएँ उत्पन्न होती हैं। आपकी असजगता इनके लिए जिम्मेदार है। क्या आप अपनी पत्नी को बिना उसका मूल्यांकन किये, उसे दोषी ठहराये बिना, उसे सही या गलत कहे बिना, किसी पूर्वाग्रह के बिना देख सकते हैं ? तब आप देखेंगे कि उस अवलोकन से एक बिलकुल ही भिन्न प्रकार के कर्म का आविर्भाव होता है।

पेरिस, अप्रैल 24, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9

हिंसा

हिंसा क्या है ? मानसिक हिंसा की जड़ों पर आरोपण—अवलोकन की आवश्यकता

कृष्णमूर्ति : इन चर्चाओं का उद्देश्य सर्जनात्मक अवलोकन है, जिसका अर्थ है : जो कुछ कहा जाये उसे सुनते हुए स्वयं का सर्जनात्मक निरीक्षण करना । जिस किसी विषय पर यहाँ चर्चा हो, उसमें आप सभी बेझिझक अवश्य भाग लें । साथ ही हमारे व्यवहार में शालीनता हो, हम दूसरों की बुद्धिमत्ता या मूढ़ता का असभ्यतापूर्ण उपहास न करें । हममें से प्रत्येक व्यक्ति संबंधित विषय के अलग-अलग पहलुओं पर चर्चा करने में हाथ बँटायें । किसी भी कथन की छानबीन करते समय हम अतीत की पुनरावृत्ति न करते रहें अपितु हमारी चेष्टा कुछ नवीन बोध पाने की ओर रहे, जिसका अर्थ है सृजन । यह स्वयं की खोज से प्राप्त नूतनता की अभिव्यक्ति है और यही हम यहाँ शब्दों के माध्यम से कर रहे हैं । इस दृष्टि से यदि हम चर्चा करते हैं तो यह निश्चित रूप से सार्थक होगी ।

प्रश्नकर्ता (१) : क्या हम इस ऊर्जा के प्रश्न पर और गहराई से विचार करें और देखें कि यह किस प्रकार नष्ट होती है ?

प्रश्नकर्ता (२) : आप हिंसा के संबंध में चर्चा करते आ रहे हैं—युद्ध को हिंसा, व्यक्तियों के साथ हमारे व्यवहार में हिंसा, दूसरे व्यक्ति को देखने और उनके बारे में सोचने के तरीकों में हिंसा । परन्तु आत्मरक्षा के लिये की जानेवाली हिंसा के बारे में आपका क्या कहना है ? यदि मुझ पर कोई भेड़िया आक्रमण कर दे, तो मैं उत्कटतापूर्वक अपनी पूरी ताकत लगाकर क्या खुद को नहीं बचाऊँगा ? क्या हमारा एक भाग हिंसक तथा दूसरा भाग अहिंसक हो सकता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : प्रश्नकर्ता की ओर से यह सुझाव है उस हिंसा के संबंध में, जो हिंसा किसी विशेष सामाजिक या नैतिक ढाँचे की स्वीकृति से उत्पन्न हुई विकृति से है, परन्तु यहाँ पर आत्मरक्षा का भी प्रश्न उठता है। इस आत्मरक्षात्मक हिंसा—जिसकी कभी आवश्यकता पड़ सकती है—तथा हिंसा के दूसरे रूपों के बीच कहीं पर सीमा-रेखा खींचें ? क्या आप इस पर चर्चा करना चाहते हैं ?

श्रोता—हाँ।

कृष्णमूर्ति : सर्वप्रथम मेरा सुझाव है कि हम मनोवैज्ञानिक हिंसा के विभिन्न रूपों पर चर्चा करें और तत्पश्चात् आक्रमण के समय आत्मरक्षा का क्या स्थान है उस संबंध में विचार करें। आप हिंसा के बारे में क्या सोचते हैं ? आप हिंसा किसे कहेंगे ?

प्रश्नकर्ता (१) ; यह रक्षात्मक उपाय है।

प्रश्नकर्ता (२) : यह मेरी सुख-शांति में पड़नेवाला विघ्न है।

कृष्णमूर्ति : हिंसा यानी हिंसा की भावना, हिंसापूर्ण शब्द तथा हिंसा के स्वरूप का आपके लिए क्या अर्थ है ?

प्रश्नकर्ता (१) : वह आक्रमण है।

प्रश्नकर्ता (२) : यदि आप निराश हो जाते हैं तो आप हिंसक हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता (३) : यदि व्यक्ति कोई कार्य पूर्ण रूप से करने में असमर्थ हो जाता है, तो वह हिंसक हो जाता है।

प्रश्नकर्ता (४) : जब नफरत आप पर हावी हो जाती है।

कृष्णमूर्ति : आपकी दृष्टि से हिंसा का क्या अर्थ है ?

प्रश्नकर्ता (१) : खतरे की अभिव्यक्ति, जब 'मैं' उपस्थित हो जाय।

प्रश्नकर्ता (२) : भय।

प्रश्नकर्ता (३) : निश्चित रूप से आप जब हिंसक होते हैं तब किसी व्यक्ति या किसी वस्तु को शारीरिक या मानसिक रूप से चोट पहुँचाते हैं।

कृष्णमूर्ति : क्या आप अहिंसा को जानते हैं इसलिए हिंसा को भी जानते हैं ? यदि आप अहिंसा को नहीं जानते होते, तो क्या हिंसा को जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाते ? चूँकि आप अहिंसा की अवस्थाएँ जानते हैं, इसलिए क्या आप हिंसा को पहचानते हैं ? आप हिंसा को कैसे जानते हैं ? चूँकि आप आक्रामक हैं, प्रतिस्पर्धी हैं और जानते हैं कि इनका परिणाम हिंसा है, अतः अपने लिए आप अहिंसा का आदर्श खड़ा कर लेते हैं । यदि हिंसा का 'विपरीत' न होता तो क्या आप हिंसा को जान पाते ?

प्रश्नकर्ता (१) : मैं उसे नाम नहीं दूँगा लेकिन मुझे किसी चीज का अनुभव होगा ।

कृष्णमूर्ति : क्या आपका वह अनुभव पहले से ही था या वह आपकी हिंसा संबंधी जानकारी के कारण हुआ ?

प्रश्नकर्ता (१) : मेरे ख्याल से हिंसा हमें दुःख पहुँचाती है और इसी पीड़ादायी अनुभव से हम मुक्त होना चाहते हैं । यही कारण है कि हम अहिंसक होना चाहते हैं ।

कृष्णमूर्ति : न मैं हिंसा के बारे में कुछ जानता हूँ और न अहिंसा के बारे में ही कुछ जानता हूँ । मैं किसी सिद्धांत या अवधारणा से प्रारम्भ नहीं करना चाहता । मुझे सचमुच हिंसा के बारे में कुछ भी ज्ञान नहीं है । मैं पता लगाना चाहता हूँ कि हिंसा का क्या अर्थ है ।

प्रश्नकर्ता : किसीके द्वारा चोट खाने या हमला होने का अनुभव प्राप्त करने के बाद व्यक्ति स्वयं की सुरक्षा करना चाहता है ।

कृष्णमूर्ति : हाँ, मैं आपकी बात समझ रहा हूँ । यह पहले भी कही जा चुकी है । मैं हिंसा के संबंध में पता लगाने का प्रयत्न कर रहा हूँ । मैं छानबीन करना चाहता हूँ, मैं खोजना चाहता हूँ, मैं उसे जड़ समेत उखाड़ना चाहता हूँ, पूर्णतया बदलना चाहता हूँ । आप समझ रहे हैं न ?

प्रश्नकर्ता : हिंसा प्रेम का अभाव है ।

कृष्णमूर्ति : तो क्या आप जानते हैं कि प्रेम क्या है ?

प्रश्नकर्ता : मेरे ख्याल से ये सारी बातें हमसे ही पैदा होती हैं ।

कृष्णमूर्ति : हाँ, बात बिलकुल ऐसी ही है ।

प्रश्नकर्ता : हिंसा हमसे ही पैदा होती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : यह ठीक है । मैं यह जानना चाहता हूँ कि हिंसा बाहर से आती है या अन्दर से ?

प्रश्नकर्ता : यह सुरक्षा का एक रूप है ।

कृष्णमूर्ति : कृपया जल्दबाजी न करें । यह एक अत्यन्त गम्भीर समस्या है, और पूरा विश्व इसमें उलझा हुआ है ।

प्रश्नकर्ता : हिंसा मेरी शक्ति के एक भाग को नष्ट कर देती है ।

कृष्णमूर्ति : हिंसा और अहिंसा दोनों के बारे में प्रत्येक ने कुछ न कुछ कहा है । लोग कहते हैं—'आप क्रूरता बरतें' । और जब वे हिंसा के परिणामों को देखते हैं तो कहने लगते हैं 'आप शांति से रहें' । हमने इसके संबंध में पुस्तकों, उपदेशों, शिक्षकों तथा दूसरों से अनेक बातें सुन रखी हैं । अब हम यह खोज करना चाहते हैं कि यह हिंसा वस्तुतः क्या है । और क्या इसका जीवन में सचमुच कोई स्थान भी है ? मनुष्य इतना हिंसक, आक्रामक तथा स्पर्धात्मक कैसे हो जाता है ? क्या हिंसा किसी ढाँचे के अनुकरण में निहित है—चाहे वह कितना ही हितकारक ढाँचा क्यों न हो ? क्या हिंसा उस अनुशासन में नहीं है, जो व्यक्ति या समाज द्वारा आरोपित किया जाता है ? क्या हिंसा हमारे भीतरी और बाहरी द्वंद्व का परिणाम है ? मैं यह पता लगाना चाहता हूँ कि हिंसा की जड़ें कहाँ हैं । यह कहाँ से प्रारम्भ होती है ? यदि मैं यह नहीं पता लगाऊँगा तो फिर इन ढेर सारे शब्दों के ताने-बाने बुनने का कोई अर्थ नहीं होगा । क्या मनोवैज्ञानिक अर्थ में हिंसा स्वाभाविक है ? हमारे अन्दर हिंसा है, आक्रांता है, क्रोध है, घृणा है; हमारे अन्दर द्वंद्व है, दमन है, अनुकरण वृत्ति है । क्या यह अनुकरण वृत्ति हमारे अन्दर सतत चलनेवाले उस संघर्ष पर आधारित है जो हम कुछ पाने के लिये, कुछ बनने के लिये, कहीं पहुँचने के लिये, आत्म-सिद्धि के लिये, आत्मसाक्षात्कार के लिये तथा अन्य चीजों के लिये कर रहे हैं ? ये सभी हमारे मनोवैज्ञानिक जगत् से संबंधित हैं । यदि हम यह सब गहराई से नहीं समझ लेते, तो अपने दैनिक जीवन में, जिसमें कुछ मात्रा में आत्मरक्षा की आवश्यकता होती है, एक बिलकुल ही भिन्न अवस्था कैसे लायी जाय यह हम नहीं समझ पायेंगे । अतः हम यहीं से प्रारम्भ करें ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके विचार से हिंसा क्या है—शाब्दिक रूप से नहीं अपितु यथार्थ रूप से, आन्तरिक रूप में ?

प्रश्नकर्ता (१) : यह किसी अन्य वस्तु का अतिक्रमण करना है। हिंसा किसी चीज पर स्वयं को आरोपित करनी है।

प्रश्नकर्ता (२) : अस्वीकृति के बारे में आपका क्या ख्याल है ?

कृष्णमूर्ति : पहले हम आरोपित करने को लें, 'जो है' का अतिक्रमण करना। 'मैं ईर्ष्यालु हूँ', यह तथ्य है और मैं इस पर 'मुझे ईर्ष्यालु नहीं होना चाहिये' का विचार आरोपित कर देता हूँ। 'मुझे ईर्ष्यालु नहीं होना चाहिये' यह थोपने की क्रिया यानी 'जो है' का अतिक्रमण करना—यह हिंसा है। हम धीरे-धीरे आगे बढ़ें। हो सकता है किसी एक वाक्य में ही सम्पूर्ण विषय समाविष्ट हो जाय। 'जो है' वह सतत गतिमान् है—वह स्थिर नहीं है। और मैं उस पर 'जो होना चाहिये' थोपकर उसके साथ हस्तक्षेप करता हूँ।

प्रश्नकर्ता : क्या आप यह कह रहे हैं कि जब मुझे क्रोध आता है तब यह सोचकर कि 'मुझे क्रोध नहीं करना चाहिये' मैं उसे रोक लेता हूँ। क्रोध को रोकना हिंसा है या इसे प्रकट करना हिंसा है ?

कृष्णमूर्ति : कृपया इसे जरा गौर से देखें। मैं क्रोधित हूँ और इस क्रोध को निकालने के लिये मैं आप पर प्रहार करता हूँ, और तब इसकी प्रतिक्रिया की एक शृंखला बन जाती है, और तब आप भी मुझ पर प्रहार करते हैं। क्रोध की यह अभिव्यक्ति ही हिंसा है। और यदि मैं क्रोधित हूँ और इस तथ्य पर 'मुझे क्रोध नहीं करना चाहिये' यह विचार आरोपित करता हूँ तो क्या यह भी हिंसा नहीं है ?

प्रश्नकर्ता : हाँ, है परन्तु जब आरोपण क्रूरतापूर्वक किया जाय। तभी वह हिंसा बनती है। इसके विपरीत यदि आप यह आरोपण धीरे-धीरे करें, तो यह हिंसक नहीं कहलायेगा।

कृष्णमूर्ति : मैं आपकी बात समझ रहा हूँ। आप कहना चाहते हैं कि यदि तथ्य पर आरोपण बड़ी नरमी से, बड़ी कुशलता से किया जाए तो हिंसा नहीं होगी। मैं इस तथ्य को कि 'मैं घृणा करता हूँ', धीरे-धीरे कोमलता से दबाकर इसका अतिक्रमण करता हूँ। किन्तु इन सज्जन का कहना है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यह हिंसा नहीं हागो । लेकिन आप यह कठोरता से करें या कोमलता से, यह तथ्य पर आरोपण ही कहा जायेगा । क्या हम इस पर कामोबेश सहमत हैं ?

प्रश्नकर्ता : नहीं ।

कृष्णमूर्ति : हम इसकी जाँच-पड़ताल करें । मान लीजिए कि मेरी यह महत्त्वाकांक्षा है कि मैं विश्व का सबसे बड़ा कवि बनूँ या और कुछ बनूँ । और मैं इस बात से निराश हूँ कि मैं नहीं बन सकता । यह निराशा, यह महत्त्वाकांक्षा, हिंसा का ही रूप है जो इस तथ्य के विरोध में है कि मैं विश्व का महानतम कवि नहीं हूँ । आप मुझसे ज्यादा अच्छे हैं अतः मैं कुंठाग्रस्त हूँ । क्या इससे हिंसा पैदा नहीं होती ?

प्रश्नकर्ता : किसी व्यक्ति के विरुद्ध या किसी वस्तु के विरुद्ध सभी कर्म हिंसा हैं ।

कृष्णमूर्ति : इस विषय में जो अड़चन है उसे कृपया समझें । यहाँ एक तथ्य है और उस तथ्य का अतिक्रमण एक दूसरी क्रिया द्वारा किया जा रहा है । उदाहरण के लिये रूसी या जर्मन या अमेरिकन व्यक्ति मुझे अच्छे नहीं लगते और इसके लिये मैं अपना विशिष्ट मत, या राजनैतिक निष्कर्ष उन पर आरोपित करता हूँ । यह हिंसा का ही रूप है । जब मैं आप पर कुछ आरोपित करता हूँ, तो हिंसा आरम्भ हो जाती है । जब मैं अपनी तुलना आपसे करता हूँ, क्योंकि आप मुझसे ज्यादा बुद्धिमान् और महान् हैं, तब मैं स्वयं का अतिक्रमण करता हूँ । क्या ऐसा नहीं होता ? यह हिंसा है । स्कूल में 'ब' की 'अ' से तुलना की जाती है, जो परीक्षा में कहीं बेहतर है और उच्च सफलता प्राप्त करता है । शिक्षक 'ब' से कहता है, तुम 'अ' जैसा बनो । इस प्रकार जब वह 'ब' की तुलना 'अ' से करता है, तब हिंसा का जन्म होता है और वह 'ब' को नष्ट करता है । आप देखें कि जब 'जो है' पर 'जो होना चाहिये' (आदर्श, पूर्णता, प्रतिमा आदि) थोपा जाता है, तब हिंसा का जन्म होता है ।

प्रश्नकर्ता (१) : मैं स्वयं में अनुभव करता हूँ कि यदि वहाँ कोई प्रतिरोध है, कोई ऐसी वस्तु जो विनाश कर सकती है, तब हिंसा का जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है । लेकिन यदि आप प्रतिरोध नहीं करते हैं तो भी संभव है कि आप स्वयं का अतिक्रमण कर रहे हों ।

प्रश्नकर्ता (२) : क्या यह सारी चर्चा 'स्वयं' या 'मैं' को लेकर ही नहीं हो रही है जो हिंसा का मूल कारण है ?

प्रश्नकर्ता (३) : मान लीजिए कि आपकी बात मैं स्वीकार कर लेता हूँ । अब मान लीजिए कि आप किसीसे नफरत करते हैं और इस नफरत को आप समाप्त करना चाहते हैं । इसके लिए दो मार्ग हैं—एक हिंसा का और दूसरा अहिंसा का । यदि आप इस नफरत को समाप्त करने के लिये स्वयं पर आरोपण करें तो आप अपने प्रति हिंसा करेंगे । इसके विपरीत यदि आप थोड़ा धीरज रखें, आप अपनी भावनाओं को पहचानें तथा उस व्यक्ति को समझें जिससे आप घृणा करते हैं, तो आप धीरे-धीरे घृणा से मुक्त हो जाएँगे । इस समस्या को तब आपने अहिंसा के ढंग से हल किया ।

कृष्णमूर्ति : मेरे सामने यह एकदम स्पष्ट है । क्या नहीं है, श्रीमान् ? हम फिलहाल इस पर नहीं सोच रहे हैं कि हिंसा की समाप्ति हिंसा से की जाय या अहिंसा से । हम तो यह पता लगा रहे हैं कि यह हिंसा पैदा कैसे होती है । हमारे अन्दर यह मनोवैज्ञानिक हिंसा क्या है ?

प्रश्नकर्ता : इस आरोपण की क्रिया में क्या कुछ खण्डित नहीं हो रहा है ? तब व्यक्ति बेचैन महसूस करता है और वह पहले से भी अधिक हिंसक हो जाता है ।

कृष्णमूर्ति : व्यक्ति के विचार, उसके जीने का ढंग इत्यादि खण्डित हो जाता है और इससे वह बेचैन हो जाता है । यही बेचैनी हिंसा उत्पन्न करती है ।

प्रश्नकर्ता (१) : हिंसा बाहर से आ सकती है या अन्दर से । मैं बहुधा बाहरी कारण को ही दोषी मानता हूँ ।

प्रश्नकर्ता (२) : क्या हिंसा का मूल विखंडन का परिणाम नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : हिंसा क्या है इसे अनेक तरीकों से दिखाया जा सकता है । उसके अनेक कारण भी ढूँढ़े जा सकते हैं । परन्तु क्या हम एक सरल तथ्य को नहीं देख सकते और वहीं से हम धीरे-धीरे इस विषय में आगे बढ़ें ? क्या हम यह स्पष्ट नहीं देख रहे हैं कि हर प्रकार का आरोपण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चाहे वह माता-पिता का अपने बच्चे पर हो या बच्चे का माता-पिता पर हो, चाहे शिक्षक का विद्यार्थी पर हो या फिर यह आरोपण किसी समाज का हो या धर्म-गुरु का, अन्ततः ये सब हिंसा के ही रूप हैं। क्या हम इस पर एकमत नहीं हो सकते ? और यहीं से क्या हम आगे नहीं बढ़ सकते ?

प्रश्नकर्ता : यह आरोपण बाहर से आता है।

कृष्णमूर्ति : हम यह आरोपण केवल बाहर से ही नहीं, भीतर से भी करते हैं। मैं स्वयं से कहता हूँ—'मैं क्रुद्ध हूँ' और फिर मैं इस पर 'मुझे क्रुद्ध नहीं होना चाहिये' का विचार थोपता हूँ। हम कह रहे हैं कि यह हिंसा है। इसी प्रकार, बाह्य रूप से, जब कोई तानाशाह जनता को दबाता है, तो यह भी हिंसा है। जब मैं भय के कारण अपनी भावना को दबाता हूँ, इसलिये कि वह बुरी है, अपवित्र है, तब यह भी हिंसा है। इस प्रकार तथ्य—'जो है'—की अस्वीकृति ही आरोपण को जन्म देती है। इसके विपरीत यदि मैं इस तथ्य को स्वीकार कर लूँ कि मैं ईर्ष्यालु हूँ और उसका किसी भी प्रकार से प्रतिरोध न करूँ, तो वहाँ आरोपण नहीं होगा। तब मुझे मालूम होगा कि मुझे इसके साथ क्या करना है। इसमें कोई हिंसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप तो शिक्षा को भी हिंसा कह रहे हैं ?

कृष्णमूर्ति : हाँ। क्या शिक्षित करने का कोई ऐसा मार्ग नहीं है जो हिंसा से मुक्त हो ?

प्रश्नकर्ता : परम्परा के अनुसार तो नहीं है।

कृष्णमूर्ति : समस्या यह है कि स्वभाव से, अपने विचारों में, जीने के तौर-तरीकों में, मैं वस्तुतः हिंसक हूँ। मैं आक्रामक हूँ, प्रतिस्पर्धी हूँ, क्रूर हूँ और न जाने क्या-क्या हूँ। अब मैं स्वयं से पूछता हूँ, "मैं किस प्रकार एक बिलकुल भिन्न ढंग से जिऊँ", क्योंकि हिंसा विश्व में भयंकर शत्रुता तथा विनाश को जन्म देती है। मैं इस हिंसा को समझना चाहता हूँ और इससे मुक्त होना चाहता हूँ ताकि एक भिन्न ढंग से मेरा जीना सम्भव हो सके। अतः मैं स्वयं से पूछता हूँ—"हममें यह हिंसा क्यों है ?" "क्या यह निराशा का ही एक रूप नहीं है क्योंकि मैं प्रसिद्ध होना चाहता हूँ, पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो नहीं पाता हूँ। अतः जो लोग प्रसिद्ध हैं, उनसे घृणा करता हूँ।" मैं ईर्ष्यालु हूँ और मैं ईर्ष्यामुक्त होना चाहता हूँ और इस ईर्ष्यापूर्ण अवस्था से, जो चिन्ता, भय तथा चिड़चिड़ापन से युक्त है, नफरत करता हूँ और उसका दमन करता हूँ। मैं यह सब करता हूँ और मैं अनुभव करता हूँ कि ये हिंसा के ही मार्ग हैं। अब मैं यह खोजना चाहता हूँ कि क्या यह हिंसा अनिवार्य है या इसे समझने का, इसे देखने का, इससे सामना करने का कोई मार्ग है ताकि मैं इससे मुक्त होकर एक नये ढंग से जी सकूँ ? अतः मुझे इसकी खोज करनी ही चाहिये कि यह हिंसा आखिर है क्या !

प्रश्नकर्ता : यह एक प्रतिक्रिया है।

कृष्णमूर्ति : आप उत्तर देने में शीघ्रता कर रहे हैं। क्या इससे मुझे हिंसा के स्वरूप को समझने में सहायता मिलेगी ? मैं इसमें गहराई से उतरना चाहता हूँ। मैं इसकी छानबीन करना चाहता हूँ। मेरे सामने जब तक यह हिंसा तथा अहिंसा का द्वैत है, तब तक द्वंद्व रहेगा और हिंसा बढ़ती रहेगी। जब तक मैं तथ्य पर—जैसे कि मैं मूढ़ हूँ—उस पर थोपता रहूँगा कि 'मुझे चतुर बनना चाहिए' तब तक हिंसा बनी ही रहेगी। जब मैं अपनी तुलना आपसे करता हूँ, क्योंकि आप मुझसे बहुत आगे हैं, तब मैं हिंसा करता हूँ। तुलना, दमन, नियंत्रण, ये सभी हिंसा के ही रूप हैं। मेरा स्वभाव ही ऐसा बन गया है। मैं तुलना करता हूँ, मैं दमन करता हूँ, मैं बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाएँ रखता हूँ। यह सब समझ लेने के बाद, मैं किस प्रकार बिना हिंसा के जिऊँ ? मुझे जीने का एक ऐसा मार्ग खोजना है जहाँ किसी भी प्रकार का संघर्ष न हो।

प्रश्नकर्ता : क्या यह 'मैं' या 'स्व' ही तथ्य के विरोध में नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : हम उस पर विचार करनेवाले हैं। आप तथ्य को देखें। जो अभी हो रहा है, उसे पहले देखें। मेरा पूरा जीवन—जब से मेरी शिक्षा प्रारम्भ हुई तब से आज तक—एक हिंसा की ही लम्बी कहानी है। समाज जिसमें मैं जीता हूँ वह भी हिंसा का ही रूप है, क्योंकि समाज मुझे अनुकरण करने के लिये, स्वीकार करने के लिये, अनुसरण के लिये तथा 'कुछ करने' तथा 'कुछ नहीं करने', के लिये कहता है। यह एक प्रकार की हिंसा ही है। और ज़ब मैं समाज के खिलाफ बगावत करता हूँ, वह भी हिंसा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप है, (बगावत इस अर्थ में कि समाज द्वारा निश्चित किये गये मूल्य मुझे मान्य नहीं हैं) मैं इन मूल्यों के खिलाफ विद्रोह करता हूँ और फिर मैं अपने मूल्यों की रचना कर लेता हूँ, जो अन्ततः आदर्श बनकर रह जाते हैं। ये ही आदर्श फिर मुझ पर तथा दूसरों पर आरोपित होते हैं, जो हिंसा के ही नये रूप बन जाते हैं। मैं इस प्रकार का जीवन जीता हूँ। अर्थात् मैं हिंसक हूँ। अब मैं क्या करूँ ?

प्रश्नकर्ता : सबसे पहले आपको स्वयं से यह पूछना चाहिये कि आप क्यों हिंसक बने रहना नहीं चाहते हैं ?

कृष्णमूर्ति : इसलिये कि मैं देखता हूँ कि इस हिंसा ने ही विश्व को ऐसा बना दिया है जैसा कि यह आज है—बाहर युद्ध है, अंदर द्वंद्व है, संबंधों में द्वंद्व है। सतत एक संग्राम चल रहा है। यह सब देखकर मैं स्वयं से कहता हूँ, 'जीने का कोई दूसरा मार्ग अवश्य होना चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : आप इस तरह की अवस्था को नापसन्द क्यों करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : क्योंकि यह अत्यन्त विनाशकारी है।

प्रश्नकर्ता : तब इसका अर्थ यह है कि आपने स्वयं पहले से ही प्रेम को सर्वोच्च मूल्य दे रखा है।

कृष्णमूर्ति : मैंने किसी चीज को कोई मूल्य नहीं दिया है। मैं तो सिर्फ अवलोकन कर रहा हूँ।

प्रश्नकर्ता : यदि आप एक को नापसन्द करते हैं—तो दूसरे को मूल्य भी देते हैं।

कृष्णमूर्ति : मैं किसी चीज को भी मूल्य नहीं दे रहा हूँ। मैं तो सिर्फ देख रहा हूँ कि युद्ध अत्यन्त विनाशकारी है।

प्रश्नकर्ता : इसमें गलत क्या है ?

कृष्णमूर्ति : मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि यह सही है या गलत।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आप इसको बदलना क्यों चाहते हैं ?

कृष्णमूर्ति : मैं इसे इसलिये बदलना चाहता हूँ कि मेरा लड़का युद्ध में मारा जाता है, और मैं पूछता हूँ, 'क्या जीने का कोई और मार्ग नहीं है जहाँ कोई एक-दूसरे को मारे नहीं' ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : इसका यह अर्थ है कि आप केवल जीने के एक अलग मार्ग के साथ प्रयोग करना चाहते हैं, और तब जीने के नये मार्ग की तुलना आप वर्तमान मार्ग से करेंगे ।

कृष्णमूर्ति : नहीं, श्रीमान् । मैं तुलना नहीं करता । मैं यह सब पहले ही कह चुका हूँ । मैं देखता हूँ कि मेरा लड़का लड़ाई में मारा जाता है और मैं पूछता हूँ, 'क्या जीने का दूसरा कोई मार्ग नहीं ?' मैं एक ऐसा मार्ग खोजना चाहता हूँ, जहाँ हिंसा का अस्तित्व ही न हो ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि मान लें कि......................

कृष्णमूर्ति : कुछ मानिये मत । मेरा लड़का युद्ध में मारा जाता है और इसलिये मैं जीने का कोई और मार्ग खोजना चाहता हूँ ताकि दूसरों के बच्चे न मारे जायें ।

प्रश्नकर्ता : अतः आप इन दो सम्भावनाओं में से एक का चुनाव करना चाहते हैं ।

कृष्णमूर्ति : सम्भावनाएँ तो एक दर्जन भी हो सकती हैं ।

प्रश्नकर्ता : जीने के नये मार्ग को पाने का आपका आग्रह इतना तीव्र है कि आप एक दूसरा मार्ग अपनाकर ही रहेंगे चाहे वह कैसा भी क्यों न हो ? आप उस मार्ग के साथ प्रयोग करना चाहते हैं और उसकी तुलना करना चाहते हैं ।

कृष्णमूर्ति : नहीं, श्रीमान् । मुझे लगता है कि आप एक ऐसे बिन्दु पर जोर दे रहे हैं, जिसे मैंने अभी तक स्पष्ट नहीं किया है ।

आपके सामने दो मार्ग हैं—या तो हम उस हिंसापूर्ण रास्ते को, जैसा कि हमारे सामने है, स्वीकार कर लें अथवा हम उस मार्ग के संबंध में सोचें जो हिंसा से पूर्णतया मुक्त है और जिसे मानवी प्रज्ञा खोजने की क्षमता रखती है । बस, यही हमने कहा है । हमने यह भी देखा कि जब तक तुलना है, दमन है, परम्परा की स्वीकृति है तथा सामाजिक ढाँचे के अनुसार स्वयं को अनुशासित करना ही हमारी जीवन-शैली है तब तक हिंसा रहेगी । इन सबमें द्वंद्व है और जहाँ द्वंद्व है, वहाँ हिंसा अवश्यंभावी है ।

प्रश्नकर्ता : भ्रम क्यों पैदा होता है ? क्या यह 'मैं' के आसपास ही पैदा नहीं होता ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : इस पर हम फिर कभी विचार करेंगे, श्रीमान् ।

प्रश्नकर्ता : हिंसा का आधार, उसकी जड़, उसका निचोड़ है यह तथ्य : प्रभावित करना । चूँकि हम विश्व में रहते हैं, अतः हम शेष विश्व को प्रभावित करते हैं । मैं अभी यहाँ हूँ । साँस लेने मात्र से मैं हवा के भीतर के अस्तित्व को प्रभावित करता हूँ । अतः मेरा मानना है कि इस 'प्रभाव-क्रिया' के तथ्य में ही हिंसा का मूल समाया हुआ है और यह तथ्य हमारे अस्तित्व में अंतर्निहित है । जब हम विरोध में प्रभावित करते हैं, जब हम अशान्ति में प्रभावित करते हैं, तब हिंसा उत्पन्न होती है । लेकिन यदि हम उसके साथ सामंजस्य साध लेते हैं तब हिंसा के दूसरे पहलू का आगमन होता है । परन्तु यह भी प्रभावित करना है । पहला प्रभाव तथ्य के विरोध में है, जो अतिक्रमण कर रहा है और दूसरा तथ्य के पक्ष में है ।

कृष्णमूर्ति : क्या मैं आपसे कुछ पूछूँ ? क्या आप हिंसा के बारे में सचमुच गम्भीर हैं ? क्या आप वस्तुतः इससे चिन्तित हैं ? क्या आप सचमुच हिंसा की समस्या में फँसे हैं ? क्या आप वास्तव में यह गहराई से महसूस करते हैं कि आपमें और विश्व में यह हिंसा न रहे ? क्या आप महसूस करते हैं कि हिंसा के मार्ग से आप सचमुच जीना नहीं चाहते ?

प्रश्नकर्ता : जब हम हिंसा के विरुद्ध विद्रोह करते हैं तब हम एक समस्या खड़ी कर लेते हैं, क्योंकि विद्रोह भी हिंसा है ।

कृष्णमूर्ति : आपका कहना ठीक है । परन्तु हम इस विषय के साथ आगे कैसे बढ़ें ?

प्रश्नकर्ता : समाज की मान्यताएँ मुझे मंजूर नहीं हैं । हिंसा का मेरा ढंग है : विचारधारा, धन-दौलत, कार्य-क्षमता इत्यादि के विरुद्ध विद्रोह ।

कृष्णमूर्ति : आप ठीक कह रहे हैं । वह विद्रोह—वर्तमान संस्कृति, शिक्षा आदि के खिलाफ विद्रोह—भी हिंसा ही है ।

प्रश्नकर्ता : मैं अपनी हिंसा को इसी रूप में देखता हूँ ।

कृष्णमूर्ति : ठीक, तो आप इस हिंसा के साथ क्या करेंगे ? इसी विषय पर तो हम यहाँ चर्चा करने की कोशिश कर रहे हैं ।

प्रश्नकर्ता : मैं भी तो वही जानना चाहता हूँ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : मैं भी यही खोजना चाहता हूँ। इसलिये हम दोनों इस बिन्दु पर स्थिर रहें।

प्रश्नकर्ता : यदि मेरी समस्या किसी व्यक्ति को लेकर है तो मैं इसे आसानी से समझ सकता हूँ। यदि मैं किसी व्यक्ति से घृणा करता हूँ तो मैं इसे जानता हूँ। मैं इसके खिलाफ प्रतिक्रिया करता हूँ। परन्तु समाज के साथ ऐसा करना सम्भव नहीं है।

कृष्णमूर्ति : ठीक है, हम पहले इसी को लें। मैं समाज की वर्तमान नैतिकता के विरुद्ध बगावत करता हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि जब तक सही नैतिकता क्या है मैं इसकी खोज नहीं कर लेता, तब तक इस नैतिकता के विरोध में महज विद्रोह करना हिंसा है। सही नैतिकता क्या है ? जब तक मैं उसे मालूम नहीं कर लेता और उसको जी नहीं लेता, तब तक इस वर्तमान सामाजिक नैतिकता के विरोध में बगावत करने का कोई खास अर्थ न होगा।

प्रश्नकर्ता : श्रीमान्, जब तक आप हिंसा को जी नहीं लेते, तब तक आप हिंसा को नहीं जान सकते।

कृष्णमूर्ति : ओह ! क्या आप यह कह रहे हैं कि हिंसा को समझने के लिये मुझे पहले हिंसक ढंग से जीना पड़ेगा ?

प्रश्नकर्ता : आपने ही तो कहा कि सच्ची नैतिकता को समझने के लिए आपको उसे जीना पड़ेगा। अतः यह देखने के लिए कि प्रेम क्या है आपको हिंसक ढंग से जीना पड़ेगा।

कृष्णमूर्ति : जब आप कहते हैं कि मुझे उस ढंग से जीना होगा तो आप मुझ पर प्रेम की अपनी धारणा को आरोपित कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं तो केवल आपके शब्दों को दुहरा रहा हूँ।

कृष्णमूर्ति : श्रीमान्, मेरे सामने यह सामाजिक नैतिकता है और इसके विरुद्ध मैं इसलिए बगावत करता हूँ कि यह बहुत ही व्यर्थ है। साथ ही मैं स्वयं से प्रश्न करता हूँ—सही नैतिकता क्या है, जिसमें हिंसा कतई न हो ?

प्रश्नकर्ता : हिंसा को नियंत्रित करना ही सच्ची नैतिकता नहीं है ? निश्चित रूप से हिंसा प्रत्येक प्राणी में है, तथाकथित ऊँचे प्राणी इसे नियंत्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे हैं । प्रकृति में यह सदा से है—चाहे तेज आँधी हो, दूसरों को मारनेवाला जंगली प्राणी हो, या सूखता हुआ एक वृक्ष हो—हिंसा सभी ओर है ।

कृष्णमूर्ति : हिंसा बहुत ऊँचे स्तर की हो सकती है, अत्यन्त गूढ़ या बहुत सूक्ष्म हो सकती है, अथवा यह बहुत क्रूर रूप में भी हो सकती है । पूरा जीवन ही हिंसा है—चाहे वह हिंसा छोटी हो या बड़ी । यदि कोई इस हिंसा के मार्ग से स्वयं को अलग करना चाहता है तो उसे हिंसा की गहराई में उतरना होगा । और यही हम यहाँ कर रहे हैं ।

प्रश्नकर्ता : श्रीमान्, इसकी गहराई में उतरने का क्या अर्थ है ?

कृष्णमूर्ति : 'गहराई में उतरने' का अर्थ है—प्रथम जाँच-पड़ताल करना अर्थात् 'जो है' की छानबीन करना । छानबीन के लिये यह आवश्यक है कि हम पूर्वाग्रहों एवं निष्कर्षों से पूर्णतया मुक्त हों । इसी स्वतंत्रता से तब हम इस हिंसा की समस्या का सही अवलोकन कर सकते हैं । यही है 'गहराई में उतरना ।'

प्रश्नकर्ता : तब क्या वहाँ कुछ घटित होता है ?

कृष्णमूर्ति : नहीं, कुछ नहीं घटित होता ।

प्रश्नकर्ता : युद्ध के बारे में मेरी प्रतिक्रिया यह है कि 'मैं लड़ना नहीं चाहती हूँ' । और मैं करती क्या हूँ कि यदि कहीं युद्ध होता है तो मैं उससे दूर चले जाने का प्रयत्न करती हूँ । किसी दूसरे देश में चली जाती हूँ या जो व्यक्ति मुझे पसन्द नहीं है उनसे दूर रहती हूँ । मैं अमरीकी समाज से अपने को दूर रखती हूँ ।

कृष्णमूर्ति : वे कहती हैं कि वे न प्रदर्शनकारी हैं और न तो विरोध प्रकट करनेवाली हैं, परन्तु जिस देश में यह सब हो रहा है वे वहाँ नहीं रहती हैं । और जो लोग उन्हें ठीक नहीं लगते उनसे वे दूर रहती हैं । यह सब हिंसा का ही रूप है । कृपया आप इस प्रश्न की ओर थोड़ा ध्यान दें । हम पूरे मन से इसे समझने का प्रयत्न करें । यह अच्छी तरह से देखकर कि किस प्रकार मनुष्य के सम्पूर्ण व्यवहार में—राजनैतिक, धार्मिक व आर्थिक व्यवहार—यह हिंसा न्यूनाधिक परिणाम में व्याप्त है, और यह समझकर कि आप अपने ही द्वारा निर्मित जाल में फँसे हैं, आप क्या करेंगे ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : क्या मैं कहूँ कि हिंसा वस्तुतः नहीं है, लेकिन विचार ही इसको खड़ा करता है ?

कृष्णमूर्ति : ओह ! मैं किसीकी हत्या करता हूँ—फिर इसके बारे में सोचता हूँ, और प्रश्नकर्ता का कहना है कि सोचने से ही यह हिंसा है। नहीं, श्रीमान्, ऐसा नहीं है। कहीं हम शब्दों के साथ खिलवाड़ तो नहीं कर रहे हैं ? क्यों न हम इस प्रश्न में जरा और गहरे उतरें ? हमने देखा है कि जब कभी हम मानसिक रूप से कुछ विचार या कोई निर्णय किसी पर थोपते हैं तब हिंसा पैदा होती है। मानिये कि मैं क्रूर हूँ—शब्दों से भी और भावनाओं से भी। फिर 'मुझे ऐसा नहीं होना चाहिए' यह विचार मैं अपने ऊपर थोपता हूँ। यही हिंसा का प्रारम्भ है। अब प्रश्न यह है कि मैं अपनी इस क्रूरता की भावना को पुनः बिना कोई दूसरा विचार उस पर थोपे कैसे समझूँ ? क्या मैं इसे बिना किसी दमन अथवा इससे पलायन किये या इसकी जगह किसी अन्य भावना को बिना थोपे समझ सकता हूँ ? मेरे सामने यथार्थ यही है कि 'मैं क्रूर हूँ।' मेरी यही समस्या है और इसे कोई यह कहकर कि 'ऐसा करो, ऐसा मत करो', हल नहीं कर सकता। मेरे समक्ष एक प्रश्न है, जो मुझे प्रभावित कर रहा है, और मैं इसका हल ढूँढ़ना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे लगता है कि जीने का कोई दूसरा मार्ग भी हो सकता है। अतः मैं स्वयं से पूछता हूँ, "मैं इस क्रूरता से किस प्रकार बिना किसी संघर्ष के मुक्त होऊँ", क्योंकि ज्योंही मैं संघर्ष को बीच में ले आता हूँ, त्योंही हिंसा आ जाती है। अतः पहले मुझे यह समझ लेना जरूरी है कि यह संघर्ष क्या है ? यदि क्रूरता के संबंध में, जिससे मैं मुक्त होना चाहता हूँ, किसी भी प्रकार का संघर्ष रहा तो उस संघर्ष में ही हिंसा जन्म लेती है। अतः प्रश्न यह है कि मैं बिना संघर्ष किये किस प्रकार क्रूरता से मुक्त होऊँ ?

प्रश्नकर्ता : आप इसे स्वीकार करें।

कृष्णमूर्ति : मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि इस क्रूरता को स्वीकार करने से आपका क्या अर्थ है। यह तो वहाँ है ! मैं इसे न स्वीकार कर रहा हूँ, न अस्वीकार। 'स्वीकार करें' यह कहने से क्या लाभ ? जैसे मेरी चमड़ी भूरी है, यह यथार्थ है। फिर मैं इसे स्वीकार या इन्कार क्यों करूँ। इसी प्रकार यह यथार्थ है कि 'मैं क्रूर हूँ'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : यदि मैं देखता हूँ कि मैं क्रूर हूँ तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ, इसे समझता हूँ; लेकिन क्रूरता से व्यवहार करने में तथा उसके साथ जीने में भी मुझे भय लगता है ।

कृष्णमूर्ति : ठीक है । मैंने कहा, "मैं क्रूर हूँ ।" अब मैं न तो इसे स्वीकार करता हूँ, और न तो अस्वीकार । यह एक यथार्थ है और दूसरा यथार्थ यह भी है कि क्रूरता से मुक्ति के लिए जब संघर्ष होता है तब हिंसा प्रारम्भ हो जाती है । अतः मुझे अब दो वास्तविकताओं से निपटना है । एक ओर हिंसा और क्रूरता है और दूसरी ओर बिना किसी प्रकार के संघर्ष के मुझे इससे मुक्त होना है । अब मैं क्या करूँ ? मेरा पूरा जीवन संघर्ष और संग्राम है ।

प्रश्नकर्ता : प्रश्न वस्तुतः हिंसा का नहीं है, बल्कि प्रतिमा की निर्मिति का है ।

कृष्णमूर्ति : उस प्रतिमा पर आरोपण हो जाता है या व्यक्ति स्वयं उसे 'जो है' पर आरोपित कर देता है । ठीक ?

प्रश्नकर्ता : यह व्यक्ति के 'सत्य स्वरूप' के अज्ञान से आता है ।

कृष्णमूर्ति : आपका इस 'सत्य स्वरूप' से क्या तात्पर्य है वह मैं नहीं जानता ।

प्रश्नकर्ता : 'सत्य स्वरूप' से मेरा अर्थ यह है कि मैं संसार से अलग नहीं हूँ । मैं ही संसार हूँ । अतः मैं ही विश्व में होनेवाली इस हिंसा के लिए जिम्मेदार हूँ ।

कृष्णमूर्ति : ठीक है । प्रश्नकर्ता के अनुसार सत्य स्वरूप का अर्थ यह है कि मैं ही विश्व हूँ और विश्व ही मैं है । अतः क्रूरता और हिंसा अलग नहीं है । वे 'मैं' के ही अंग हैं । आप यही कहना चाहते हैं न ?

प्रश्नकर्ता : नहीं ! ये अज्ञान के अंग हैं ।

कृष्णमूर्ति : तो आपका कहना है एक 'सत्य स्वरूप' है और दूसरा 'अज्ञान' है । वे दो भिन्न अवस्थाएँ हैं और यह 'अज्ञान', 'सत्य स्वरूप' को ढँके हुए है । परन्तु ऐसा क्यों ? यह तो भारत का प्राचीन सिद्धांत है । आप यह कैसे जानते हैं कि एक 'सत्य स्वरूप' है और दूसरा 'अज्ञान' या माया है, जो उसे आच्छादित किये हुए है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : यदि हम उतनी सी बात समझ लें कि हमारी समस्याएँ वस्तुतः विपरीतों के रूप में खड़ी हैं तो फिर इनका अस्तित्व ही न रहेगा ।

कृष्णमूर्ति : हमें केवल इतना करना है कि हम विपरीतों में नहीं सोचें । पर क्या हम ऐसा कर पाते हैं अथवा यह सिर्फ एक ख्याल है ?

प्रश्नकर्ता : श्रीमान्, क्या विचार में ही द्वैत अंतर्निहित नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : एक बिंदु तक पहुँचते ही हम फिर उससे दूर चले जाते हैं । मुझे मालूम है कि मैं कई मनोवैज्ञानिक कारणों से क्रूर हूँ । यह एक तथ्य है । प्रश्न यह है कि मैं इससे बिना किसी प्रयास के कैसे मुक्त होऊँ ?

प्रश्नकर्ता : बिना प्रयास से आपका क्या तात्पर्य है ?

कृष्णमूर्ति : मैंने पहले प्रयास का अर्थ स्पष्ट किया है । यदि मैं अपनी क्रूरता को दबाता हूँ, तो यह एक प्रयास है, क्योंकि वहाँ विसंगति है—क्रूर होना परंतु क्रूर न होने की इच्छा करना । इस प्रकार 'जो है' और 'जैसा होना चाहिये' के बीच द्वंद्व है ।

प्रश्नकर्ता : यदि मैं सचमुच इसका अवलोकन करूँ तो मैं क्रूर नहीं रह सकता ।

कृष्णमूर्ति : मुझे स्वयं इसकी खोज करनी है, न कि किसीका कथन स्वीकार करना है । मुझे यह पता लगाना है कि क्या क्रूरता से पूर्णतया मुक्त होना सम्भव है ? क्या बिना दमन, बिना पलायन तथा बिना जोर-जबरदस्ती के मैं इस क्रूरता से मुक्त हो सकता हूँ ? इसके लिए मुझे क्या करना है ?

प्रश्नकर्ता : केवल एक ही विकल्प रह जाता है कि मैं इसे अनावृत करूँ ।

कृष्णमूर्ति : अनावृत करने के लिये यह जरूरी है कि मैं इसे बाहर आने दूँ, इसे प्रकट होने दूँ—इस अर्थ में नहीं कि मैं और अधिक क्रूर बनूँ । मैं इसे बाहर क्यों नहीं आने देता हूँ ? इसलिए कि मैं इससे भयभीत हूँ । मुझे इस बात का डर है कि इसके बाहर आने से मैं शायद अधिक क्रूर बन जाऊँ अथवा इसे समझ ही न पाऊँ । क्या इस क्रूरता को मैं बहुत सावधानी से देख सकता हूँ, जिसका अर्थ है सजगता से देखना । यह मैं तभी कर सकता हूँ जब मेरी पूरी शक्ति, पूरी उत्कंठा तथा समस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को समझने की अनिवार्यता, तीनों एक साथ अनावरण के क्षण में घटित हों। अनावरण के इस क्षण में इसे समझने की मेरी प्रचण्ड लालसा हो तथा मेरा मन एकदम विकृतिरहित हो तथा अवलोकन के लिए मेरे पास प्रचण्ड ऊर्जा हो। अनावरण के समय ये तीनों तत्क्षण एक साथ घटित हों। जिसका अर्थ है, मैं अब असाधारण रूप से संवेदनशील हूँ तथा इस प्रचण्ड ऊर्जा, तीव्रता और सावधानता के साथ पूर्णतया स्वतंत्र हूँ। मुझमें इस गहन सावधानता का आगमन कैसे हो ? मैं उसे कैसे प्राप्त करूँ ?

प्रश्नकर्ता : उसे समझने के लिए यदि हमारी आकांक्षा असाधारण रूप से उत्कट है तो हम इस सावधानता को प्राप्त कर सकते हैं।

कृष्णमूर्ति : आपकी बात मैं समझ रहा हूँ। मैं बस पूछ रहा हूँ—क्या सावधान होना सम्भव है ? कृपया ठहरें और देखें कि इस सावधानता में किन-किन बातों का समावेश है ? कृपया इसमें कोई अर्थ न भरें, इसे किन्हीं नये शब्दों में न बाँधें। मैं यहाँ हूँ। मुझे नहीं मालूम है कि सावधानता का क्या अर्थ है। हो सकता है मैंने जीवन में कभी किसी चीज की ओर ध्यान ही न दिया हो, क्योंकि मैं बहुधा असावधान ही रहता हूँ। और अचानक मुझसे कोई पूछे और कहे—'देखिये, क्रूरता के प्रति सावधान रहिये' और मैं कहूँ, 'मैं रहूँगा', पर इसका अर्थ क्या है ? मैं इस सावधानता की अवस्था को प्राप्त कैसे करूँ ? क्या इसके लिये कोई उपाय है ? क्या मैं सावधान होने के लिये कोई अभ्यास करूँ ? अभ्यास में समय लगेगा और इस अभ्यास के दौरान मैं असावधान बना ही रहूँगा। अतः और ज्यादा विनाश करूँगा। अतः यह जरूरी है कि यह तत्क्षण घटित हो।

मुझमें क्रूरता है। मैं इसे दबा नहीं रहा हूँ, मैं इससे पलायन नहीं कर रहा हूँ, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं पलायन नहीं करने या दमन नहीं करने का दृढ़ संकल्प कर रहा हूँ। इसके विपरीत मैं तो यह बुद्धिमत्तापूर्वक देख और समझ रहा हूँ कि दमन, नियंत्रण तथा पलायन से कोई समस्या हल नहीं होती। अतः मैंने उन्हें एक ओर रख दिया है। अब मुझमें अवलोकन के लिये आवश्यक प्रज्ञा है, क्योंकि मैंने दमन, पलायन एवं प्रयासों की व्यर्थता गहराई से समझ ली है। इस प्रज्ञा से मैं अब क्रूरता का अवलोकन कर रहा हूँ, उसकी जाँच कर रहा हूँ। अब मैं स्पष्ट रूप से महसूस कर रहा हूँ कि अवलोकन के लिए गहरी सावधानता की आवश्यकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, और वह उपलब्ध हो, इसके लिये मुझे असावधानता के प्रति अत्यन्त सजग रहना होगा। इसका क्या अर्थ है ? यदि मैं सावधानता का अभ्यास करता हूँ तो यह क्रिया यांत्रिक होगी, जो मूर्खतापूर्ण है, निरर्थक है। इसके विपरीत यदि मैं अपनी असावधानता के प्रति सजग रहूँ तो मुझे यह मालूम होगा कि किस प्रकार मुझमें सावधानता का आगमन होता है। मैं अवलोकन करूँ कि दूसरों की भावनाओं के प्रति, उनके कुछ कहने व कुछ करने के प्रति, मैं इतना असावधान क्यों हूँ। बातचीत करते समय, भोजन करते समय, मैं इतना असावधान क्यों हूँ ? इस प्रकार इस असावधानता की स्थिति को समझने से मुझमें सावधानता का आगमन होगा। इस प्रकार मैं यह जाँच कर रहा हूँ और समझ रहा हूँ कि यह असावधानता कैसे उत्पन्न होती है।

यह अत्यन्त गम्भीर प्रश्न है, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व जला जा रहा है। यदि मैं इस विश्व का एक अंग हूँ और मैं ही विश्व हूँ, तो मुझे इस आग को समाप्त करना ही होगा। हम इस समस्या में बुरी तरह फँसे हैं। चूँकि हममें सावधानता का अभाव है, इसीलिये विश्व में यह सारी अराजकता है। आप इस विलक्षण तथ्य को देखें कि यह असावधानता ही निषेध है—सावधानता का अभाव, 'स्वयं' की उस क्षण-विशेष में अनुपस्थिति। यह कैसे सम्भव हो कि मैं इस असावधानता के प्रति इतनी पूर्णता से सजग हो जाऊँ कि यह सजगता में रूपान्तरित हो जाय ? मैं किस प्रकार इस क्रूरता के प्रति अपनी समग्रता तथा सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ सजग हो सकूँ ताकि वहाँ किसी भी प्रकार का संघर्ष अथवा विसंगति न रहे। वहाँ तो हो समग्रता और अखंडता—यह मैं कैसे उपलब्ध करूँ ? जैसा कि हमने कहा, यह तभी संभव है जब हम में पूर्ण सावधानता हो; और वह पूर्ण सावधानता हम में नहीं है क्योंकि हमारा जीवन असावधानता में शक्ति गँवाने में ही बीत जाता है।

सानन, स्विट्ज़रलैंड, अगस्त 3, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10

आमूल परिवर्तन
वह उपकरण क्या है जो देखता है ?

कृष्णमूर्ति : ऊपर से भले ही मानव बदल गया हो परन्तु अपनी आन्तरिक गहराइयों में वह अब भी वैसा ही है। अतः उचित होगा कि हम मानव में समग्र क्रांति के संबंध में चर्चा करें, न कि आचरण के किसी ऐसे ढाँचे के बारे में जो पुराने ढाँचे पर थोपा गया हो। हमारा संबंध हमारे अन्तर्जगत् में जो वस्तुतः घटित हो रहा है उसमें मौलिक परिवर्तन से है। जैसा कि हमने पहले बताया था, विश्व और हम दो अलग-अलग सत्ताएँ नहीं हैं। वस्तुतः 'हम' ही विश्व हैं और विश्व ही 'हम' है। हमारे अस्तित्व की गहराइयों में, उसकी जड़ों में, एक महान् क्रांति घटित हो, एक आमूल परिवर्तन आए, एक रूपान्तरण का जन्म हो, इसी उद्देश्य से हम ये चर्चाएँ कर रहे हैं। अतः इनमें शब्दों का विशेष महत्त्व नहीं है।

हम कल पूछ रहे थे : क्या आप स्वयं को बिना किसी विकृति के देख सकते हैं ? जिसका अर्थ है तथ्य का, बिना मूल्यांकन, बिना निर्णय, बिना कुछ पाने की, या 'जो है' से बिना पलायन की कामना किये हुए अवलोकन। ये सभी तथ्य के सही, स्पष्ट तथा गहरे अवलोकन में रुकावट डालते हैं। अतः आज की प्रातः हम इसी विषय पर चर्चा करें कि यह अवलोकन क्या है, इसका स्वरूप क्या है, अवलोकन तथा श्रवण कैसे घटित होता है। हम इस संभावना की भी खोज करेंगे कि हम सिर्फ अपने आंशिक अस्तित्व से नहीं बल्कि समग्रता से कैसे देखें। हम यह भी पता लगायेंगे कि क्या बिना किसी भी प्रकार की विकृति के अत्यन्त गहराई से देखना सम्भव है। यह खोज हमारे लिए निश्चित रूप से उपयोगी साबित होगी। यह देखना क्या है ? क्या हम अपनी वास्तविकताओं को—लोभ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईर्ष्या, चिन्ता, भय, ढोंग, कपट, महत्त्वाकांक्षा को—बिना किसी विकृति के देख सकते हैं ?

क्या हम आज प्रातः थोड़ा समय यह सीखने में लगायेंगे कि देखना क्या है । सीखना एक अविरत गति है । यह क्षण-क्षण नवीनीकरण है । इसमें 'सीख लिया' ऐसा कुछ भी नहीं होता है । आप वक्ता को सुन रहे हैं, इस सुनने के साथ ही आप स्वयं को देख रहे हैं और इससे आप कुछ सीखते हैं, कुछ अनुभव करते हैं और इसी परिप्रेक्ष्य से फिर देखते हैं । इस प्रकार हमने जो सीखा और अनुभव किया उसीकी स्मृति से हम देखते हैं । अतः ऐसा देखना वस्तुतः देखना नहीं है और न ऐसा सीखना सीखना ही है । सीखने की क्रिया एक ऐसे मन से संबंधित है जो हर बार कुछ नया सीख रहा है । अतः सीखना सदैव ताजा होता है । यह स्पष्ट हो गया है कि सीखने का अर्थ स्मृति को विकसित करना नहीं है अपितु जो यथार्थ में घटित हो रहा है, उसका अवलोकन करना है । अतः अवलोकन के समय अत्यन्त सजग और सावधान रहना आवश्यक है ताकि हमने जो देखा है और सीखा है वह स्मृति न बन पाए, जिसके माध्यम से हम साधारणतया देखते हैं । ऐसा देखना तो पहले से ही विकृत होता है । आप हर बार ऐसे देखें जैसे पहली बार देख रहे हों । 'जो है' उसे स्मृति के माध्यम से देखने से हमारा देखना स्मृति से प्रभावित होता है । अतः वह पहले से ही विकृत होता है । तो क्या अब हम यहाँ से आगे बढ़ें ?

हम यह पता लगाना चाहते हैं कि अवलोकन करने का क्या अर्थ है । कोई वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शन यन्त्र के द्वारा किसी वस्तु को अधिक निकटता से देखता है । वहाँ एक बाहरी वस्तु है और वह, उसका बिना किसी पूर्वाग्रह के परन्तु अर्जित ज्ञान के साथ अवलोकन करता है । परन्तु यहाँ हम जीने की सम्पूर्ण प्रक्रिया का तथा अपने पूरे अस्तित्व का अवलोकन कर रहे हैं । अतः यह अवलोकन हम केवल बौद्धिकता या केवल भावुकतावश न करें और न ही सही-गलत का निर्णय करते हुए करें । हम यह कहते हुए कि 'यह होना चाहिये', 'वह नहीं होना चाहिये', अवलोकन न करें । अत्यन्त गहराई से देखने के लिये हम इस मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रति पूर्णतः सजग रहें जो निर्णय तथा निष्कर्ष के रूप में हमारे मन में सतत चलती रहती है और यही अवलोकन के मार्ग में एक बड़ी रुकावट है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम उसके संबंध में चर्चा करें जिसके द्वारा देखा जाता है। क्या यह देखने का उपकरण अस्वच्छ है, विकृत है, खंडित है, बोझिल है ? महत्त्व देखने का नहीं है; महत्त्व तो है अवलोकन स्वयं का, जो देखनेवाला उपकरण है। यदि पहले से ही मैंने कोई मान्यता बना ली है, उदाहरण के लिये राष्ट्रीयता की मान्यता, और यदि मैं इसी राष्ट्रीयता के माध्यम से—जो एक प्रकार का गहरा संस्कार है तथा जातीय पृथकता का ही दूसरा रूप है—देखूँ तो निश्चित ही मेरा देखना साफ-स्पष्ट न होगा। इसी प्रकार यदि मैं देखने से भयभीत हूँ, तब भी निस्सन्देह मेरा देखना विकृत होगा। यदि संबोधि की उपलब्धि के लिये या किसी उच्चपद की प्राप्ति के लिये मैं महत्त्वाकांक्षी हूँ, तब भी मैं स्पष्टता से अवलोकन नहीं कर सकूँगा। अतः हम इन बातों के अतिरिक्त इस चीज के प्रति भी सजग रहें कि देखनेवाला उपकरण साफ-सुथरा हो।

प्रश्नकर्ता : यदि कोई देखता है और पाता है कि देखनेवाला उपकरण साफ-सुथरा नहीं है तो उसे क्या करना चाहिए ?

कृष्णमूर्ति : कृपया ध्यान से सुनें। हमने कहा कि आप 'जो है' उसे देखें, अपने अहमपूर्ण तथा स्वकेन्द्रित गतिविधि को देखें जो प्रतिरोध करता है, जो निराश होता है, जो क्रोध करता है। आप यह सब देखें। हमने यह भी बताया कि आप उस उपकरण को भी देखें जो देख रहा है और पता लगायें कि क्या वह साफ-सुथरा है। हमने पहले तथ्य को देखा, बाद में उस उपकरण को देखा जो देखनेवाला है। हम यह मालूम कर रहे हैं कि क्या वह उपकरण साफ है। और हमने पाया कि वह साफ नहीं है। ऐसी अवस्था में हम क्या करें ? इस प्रश्न के साथ ही हमारी प्रज्ञा तीक्ष्ण होने लगती है। पहले मेरा संबंध सिर्फ 'यथार्थ' को—'जो है'—उसे देखने से था। मैं उसे देखता रहा और वहाँ से आगे बढ़ा। फिर मैंने अवलोकन के उपकरण को देखा यह मालूम करने के लिये कि क्या वह साफ है। इस प्रश्न पूछने की क्रिया में ही प्रज्ञा प्रकट होती है। क्या आप यह सब समझ रहे हैं ? इस प्रकार हमारी प्रज्ञा तीक्ष्ण होती है, मन तीक्ष्ण होता है, मस्तिष्क तीक्ष्ण होता है।

प्रश्नकर्ता : क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारी चेतना का एक ऐसा स्तर भी है, जहाँ कोई विभाजन नहीं है, जहाँ कोई संस्कार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : मैं नहीं जानता हूँ कि इसका क्या अर्थ है । मैं तो सिर्फ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा हूँ । हमारी गति खण्डित नहीं है, विभाजित नहीं है । पहले जब मैंने देखा था तब प्रज्ञा वहाँ नहीं थी । मैं कहता था—'मैं इसे बदलूँ', 'उसे न बदलूँ', 'ऐसा नहीं होना चाहिये', 'यह अच्छा है', 'यह बुरा है', 'ऐसा ही होना चाहिए', आदि । और इन निष्कर्षों के कारण ही, जैसा कि मैंने देखा, कुछ भी घटित न हुआ । अब मेरी समझ में यह आया कि इस देखनेवाले उपकरण का असाधारण रूप से साफ होना आवश्यक है । अतः यह प्रज्ञा की एक सतत गति है, न कि एक खंडित अवस्था । हमें इसके साथ अब आगे बढ़ना है ।

प्रश्नकर्ता : क्या यह प्रज्ञा स्वयं ऊर्जा है ? यदि यह किसी पर निर्भर है तो यह समाप्त हो जाएगी ?

कृष्णमूर्ति : आप उसकी फिक्र छोड़ें । ऊर्जा का प्रश्न अभी रहने दें ।

प्रश्नकर्ता : आपने तो उसे पा लिया है, जब कि हमारे लिए तो यह परिष्कारों की एक अंतहीन श्रृंखला है । फिर भी प्रकृति ज्यों की त्यों है ।

कृष्णमूर्ति : ठीक है । क्या आपमें परिष्कार हो रहा है ? अथवा अनेक प्रकार के दबावों, प्रयत्नों, संघर्षों आदि से आपका मन, आपका मस्तिष्क तथा आपका पूरा अस्तित्व ही मन्द हो गया है ? हमारा कहना यह है कि आपके पूरे अस्तित्व को ही समग्र रूप से जागृत होना चाहिए ।

प्रश्नकर्ता : यही बात तो मुश्किल है ।

कृष्णमूर्ति : आप जरा ठहरें । आप देखेंगे कि मैं वहीं पर आ रहा हूँ । प्रज्ञा का विकास नहीं होता । प्रज्ञा समय का परिणाम नहीं है । प्रज्ञा एक गुणवत्ता है—यथार्थ के प्रति संवेदनापूर्ण सजगता की गुणवत्ता । मेरा मन मन्द है और मैं कहता हूँ—'मैं स्वयं का निरीक्षण करूँ' और यह मन्द मन स्वयं का निरीक्षण करने का प्रयत्न करता है । स्पष्ट है कि यह कुछ नहीं देख सकता । यह या तो प्रतिरोध करेगा और इन्कार करेगा या फिर मान लेगा । यह तो एक बड़ा प्रतिष्ठित मध्यमवर्गीय सांसारिक मन है, जो देख रहा है ।

प्रश्नकर्ता : आप पहले नैतिकता की वैचारिक पद्धतियों के बारे में बोल रहे थे और अब आप कह रहे हैं कि दूसरी समस्त पद्धतियों को एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर रखकर हम आत्मनिरीक्षण करें। क्या यह भी एक प्रकार की विचार-पद्धति नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : नहीं श्रीमान्‌जी, ऐसा नहीं है। इसके विपरीत हम तो यह कह रहे हैं कि यदि आप किसी विचार-पद्धति के माध्यम से, फिर वह चाहे मेरी ही क्यों न हो, देखते हैं तो आप चूक जायेंगे क्योंकि तब आप देख ही न सकेंगे। आपने न जाने कितने सिद्धान्त—सम्माननीय, निन्दनीय आदि—बना रखे हैं और उन सिद्धान्तों के बोझिल मस्तिष्क और हृदय से आप देख रहे हैं। इन सिद्धान्तों ने आपके मस्तिष्क तथा मन को और आपके सम्पूर्ण अस्तित्व को मन्द बना दिया है। अब केवल आपका मन्द मन देख रहा है और यह मन्द मन चाहे कुछ भी देखे, चाहे वह ध्यान करे, चाहे चन्द्रमा पर जाए, फिर भी यह मन्द ही रहेगा। इस प्रकार आपका यह मन्द मन देखता है और कोई आकर आपसे कहता है—'मेरे मित्र, जरा ध्यान दें, आप स्वयं यदि मन्द हैं, तो आप जो भी देखेंगे वह भी उतना ही मन्द होगा। क्योंकि यदि देखनेवाले का मन मन्द है तो जो भी वह देखेगा वह भी निश्चित रूप से मन्द होगा।' यह एक बहुत बड़ी खोज है कि मन्द मन, चाहे वह किसी असाधारण रूप से जीवन्त वस्तु को ही क्यों न देखे, वह उसे भी मन्द बना देगा।

प्रश्नकर्ता : परन्तु वही मन सतत प्रयत्नशील है।

कृष्णमूर्ति : कृपया ठहरें, यदि आप बुरा न मानें तो जरा धीरे-धीरे आगे बढ़ें। आप वक्ता के साथ एक-एक कदम चलें।

प्रश्नकर्ता : यदि एक मंद मन यह पहचान लेता है कि वह मंद है, तो वह मंद नहीं रह जाता।

कृष्णमूर्ति : पर मैं उसे पहचानता नहीं। कितना सुन्दर होता यदि मन्द मन यह पहचान लेता कि वह मन्द है। परन्तु वह पहचानता नहीं। या तो यह अधिक विद्वान् बनकर या वैज्ञानिक या और कुछ बनकर स्वयं को अधिकाधिक निखारने का प्रयत्न करता है या यदि वह अपनी मन्दता के प्रति सजग रहा, तो कहता है, "यह मन्द मन सही-सही नहीं देख सकता।" अतः प्रश्न यह उठता है : यह मन्द एवं दूषित मन किस प्रकार असाधारण रूप से प्रज्ञावान् बने, ताकि हमारे अवलोकन का उपकरण एकदम निर्मल हो जाय ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : क्या आप यह कह रहे हैं कि मन जब उस ढंग से प्रश्न पूछता है तब उसकी मन्दता समाप्त हो जाती है ? क्या कोई व्यक्ति गलत कारणों से सही चीजें कर सकता है ।

कृष्णमूर्ति : नहीं । कृपया आप अपनी मान्यताओं को एक ओर रख दें तथा यह देखें कि वक्ता क्या कह रहा है ।

प्रश्नकर्ता : नहीं श्रीमान्, आप ही मेरे साथ आगे बढ़ें ।

कृष्णमूर्ति : जैसा कि आप कह रहे थे, आप किसी ऐसी चीज को पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं जिससे कि मन्द मन अधिक तीक्ष्ण व स्पष्ट बन सके । लेकिन मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ । मैं तो कह रहा हूँ, आप इस मन्दता का निरीक्षण करें ।

प्रश्नकर्ता : क्या बिना सतत गति के ?

कृष्णमूर्ति : मन सतत विकृति की प्रक्रिया से गुजर रहा है । ऐसे मन को किस प्रकार देखा जाय ? क्या यह सम्भव है ? मेरा मन चूँकि मन्द है, अतः वह देखकर भी कुछ नहीं देख रहा है । और इसीलिये मैं स्वयं से पूछ रहा हूँ, 'इस मंद मन को किस प्रकार तीक्ष्ण बनाना सम्भव है ?' यह प्रश्न क्यों उपस्थित हुआ है ? क्या इसलिये तो नहीं कि मैंने अपनी तुलना किसी दूसरे अधिक चतुर मन से की है और मैंने उस जैसा बनना चाहा है ? आप समझ रहे हैं न ? यह तुलना वस्तुतः उस मंद मन का ही सातत्य है ।

प्रश्नकर्ता : क्या एक मंद मन अपनी तुलना किसी चतुर मन से कर सकता है ?

कृष्णमूर्ति : क्या यह सदैव अपनी तुलना किसी अधिक बुद्धिमान् मन से नहीं कर रहा है ? इसी को तो हम विकास कहते हैं । क्या नहीं कहते हैं ?

प्रश्नकर्ता : मंद मन तुलना न कर स्वयं से पूछता है—'मैं तुलना क्यों करूँ ?' या इसीको दूसरे ढंग से कहें तो मंद मन को विश्वास है कि यदि वह थोड़ा चतुर बन जाए तो वह ज्यादा पायेगा ।

कृष्णमूर्ति : हाँ, ऐसा ही है । अतः मैंने कुछ खोजा । मंद मन कहता है, मैं तुलना के कारण मंद हूँ, अमुक व्यक्ति अधिक बुद्धिमान् है, अतः मैं मंद हूँ । इस प्रकार मन स्वयं अपनी मंदता के प्रति सजग नहीं है । यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो अलग-अलग अवस्थाएँ हैं—यदि मैं इस बात के प्रति सजग हूँ कि मैं मंद हूँ, क्योंकि आप तीक्ष्ण हैं, तो यह एक चीज हुई, किन्तु मैं इस बात के प्रति सजग हूँ कि मैं मंद हूँ, जहाँ किसी प्रकार की तुलना नहीं है, तो यह पूर्णतया भिन्न अवस्था हुई। आपकी अवस्था किस प्रकार की है ? क्या आप स्वयं की दूसरे से तुलना कर रहे हैं और इसलिये कह रहे हैं—'मैं मंद हूँ' ? या आप बिना किसी प्रकार की तुलना के इस यथार्थ के प्रति सजग हैं कि आप मंद हैं ? सच क्या है ? कृपया आप इस प्रश्न के साथ थोड़ी देर ठहरें।

प्रश्नकर्ता : श्रीमान्, क्या यह सम्भव है ?

कृष्णमूर्ति : कृपया इस प्रश्न को दो मिनट का समय दें। क्या मैं इस बात के प्रति सजग हूँ कि 'मैं भूखा हूँ', क्योंकि आप मुझसे ऐसा कह रहे हैं या मैं स्वयं भूख का अनुभव कर रहा हूँ ? यदि आप मुझे मेरी भूख के बारे में कहते हैं तब मैं कुछ भूख महसूस करता हूँ, तो वह भूख वास्तविक भूख नहीं है। इसके विपरीत यदि मैं खुद भूखा हूँ तो मैं सही में भूखा हूँ। इसी प्रकार मुझे एकदम स्पष्ट होना चाहिये कि कहीं मेरी मंदता किसी तुलना का परिणाम तो नहीं है। तब हम वहाँ से आगे बढ़ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपको इन सब बातों की प्रतीति कैसे हुई कि आप बाकी चीजों को एक ओर रखकर केवल इससे मतलब रखते हैं कि आप मंद हैं या नहीं ?

कृष्णमूर्ति : इसलिये कि तुलना मन को मंद बना देती है, इसकी सत्यता मैंने समझ ली है। स्कूल में 'अ' बच्चे की तुलना जब आप 'ब' से करते हैं तब आप 'अ' को नष्ट कर देते हैं। यदि आप छोटे भाई को बड़े भाई जैसा होशियार बनने के लिये कहते हैं तब आप छोटे भाई को नष्ट कर देते हैं। क्या नहीं करते हैं ? आप छोटे भाई के संबंध में चिन्तित नहीं हैं। आप तो बड़े भाई की होशियारी से ही संबंधित रहना चाहते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या मंद मन यह देख और जान सकता है कि वह मंद है ?

कृष्णमूर्ति : हम इसे मालूम करने जा रहे हैं। हम पुनः अपने मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न पर आएँ। क्या हम आज की सुबह उसी एक प्रश्न के साथ टिके नहीं रह सकते हैं ?

प्रश्नकर्ता : जब तक हममें यह दौड़ है, तब तक इससे क्या अन्तर पड़ता है कि हम तुलना से मंद हैं या वस्तुतः मंद हैं ?

कृष्णमूर्ति : हम यह मालूम करने जा रहे हैं। कृपया आप कुछ समय वक्ता के साथ-साथ आगे बढ़ें। इसका अर्थ यह नहीं कि आप उसे मान लें या अस्वीकार कर दें। आप तो केवल स्वयं का अवलोकन करते चलें। जैसा कि हमने इस चर्चा के आरम्भ में कहा था कि हमारे अस्तित्व की जड़ों में क्रान्ति होनी चाहिए और यह तभी सम्भव है जब हम यह सीख लें कि हम जो हैं उसका अवलोकन हम कैसे करें। अवलोकन हमारे मन की तीक्ष्णता, स्पष्टता और उन्मुक्तता पर अवलम्बित है, क्योंकि वही अवलोकन का साधन है। परन्तु हममें से अधिकांश व्यक्ति मंद हैं और हम कहते हैं कि जब हम देखते हैं, तब हमें कुछ नहीं दिखायी देता। हम क्रोध को, ईर्ष्या को देखते तो हैं पर इस देखने से कुछ होता नहीं। अतः हम इस मंद मन को देखें, समझें, न कि उसे, जिसे वह देख रहा है। यह मंद मन कहता है,—'मुझे चतुर बनना होगा ताकि मैं अवलोकन कर सकूँ'। इससे यह स्पष्ट है कि इसने चतुरता के बारे में अपनी मान्यता बना रखी है और उसे प्राप्त करने के लिये वह प्रयत्नशील है। अब यदि उसे कोई कहता है—'तुलना से सदैव मन्दता आती है'। तब वह कहता है—'मुझे अब अत्यन्त सावधान रहना होगा, मैं तुलना नहीं करूँगा। मैंने तुलना के द्वारा ही इस मंदता को जाना। यदि मैं तुलना न करता तो कैसे जान पाता कि मैं मंद हूँ ?' अतः मैं स्वयं से कहता हूँ, 'मैं इसे मंद नहीं कहूँगा।' मैं 'मंद' शब्द का उपयोग ही नहीं करूँगा। मैं तो 'जो है' उसका अवलोकन करूँगा तथा इसे कोई नाम न दूँगा। क्योंकि ज्योंही मैं इसे 'मंद' कहता हूँ, त्योंही मैं इसे नाम दे देता हूँ और इसे 'मंद' बना देता हूँ। लेकिन यदि मैंने इसे कोई नाम नहीं दिया, सिर्फ इसका अवलोकन किया, मैंने तुलना नहीं की, 'मंद' शब्द का उपयोग भी नहीं किया, तो अन्ततः वहाँ 'जो है' वही बचा रहेगा। यह इतना कठिन नहीं है। कृपया आप स्वयं इसे देखें। देखें कि क्या घटित होता है। देखें कि अभी आपका मन कहाँ है।

प्रश्नकर्ता : मैं देख रहा हूँ कि मेरा मन बहुत धीमा है, सुस्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : कृपया आप ध्यान से सुने । मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ूँगा—एक-एक कदम । मैंने यह कैसे जाना कि मेरा मन 'मन्द' है ? क्या इसलिये कि आपने मुझे कहा है ? क्या इसलिये कि मैंने पुस्तकें पढ़ी हैं जो असाधारण रूप से विद्वत्तापूर्ण हैं, गहन हैं, दुर्बोध हैं ? अथवा इसलिए कि मैंने प्रतिभावान् व्यक्ति देखे हैं, जिनसे अपनी तुलना कर स्वयं को मन्द समझने लगा हूँ । मुझे अब चूँकि यह खोजना है, अतः अब मैं तुलना नहीं कर रहा हूँ । मैं किसीसे भी अपनी तुलना नहीं कर रहा हूँ । तब क्या मैं यह जान सकता हूँ कि मैं मन्द हूँ ? क्या यह शब्द ही मुझे अवलोकन करने से रोके हुए नहीं है ? क्या इस शब्द ने ही यथार्थ की जगह ले रखी है ? क्या आप यह समझ रहे हैं ? अतः मैं अब किसी शब्द का उपयोग नहीं करूँगा । मैं इसे मन्द नहीं कहूँगा । मैं इसे कुछ भी नहीं कहूँगा । मैं तो सिर्फ 'जो है' उसे देखूँगा । इस प्रकार अब मैं तुलना से मुक्त हो गया हूँ, जो बहुत ही सूक्ष्म चीज है । अब मेरा मन असाधारण रूप से प्रज्ञावान् बन गया है, क्योंकि अब यह तुलना नहीं कर रहा है, क्योंकि यह 'मन्द' शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा है, जिसके माध्यम से वह यथार्थ को देखता था, क्योंकि अब उसने यह समझ लिया है कि वर्णन वस्तुतः वर्णित नहीं है । अतः 'जो है' उसका वस्तुतः तथ्य क्या है ?

क्या हम इसके आगे बढ़ें ? मैं इसका निरीक्षण कर रहा हूँ, मन अपनी ही गतिविधि को देख रहा है । अब मैं निन्दा नहीं कर रहा हूँ, मूल्यांकन नहीं कर रहा हूँ, यह भी नहीं कह रहा हूँ कि 'यह होना चाहिए', 'वह नहीं होना चाहिए ?' अब मेरे सामने न कोई मान्यता है, न कोई आदर्श है और न कोई निष्कर्ष या संकल्प है । अतः निश्चित रूप से यथार्थ के—'जो है'—के विकृत होने का प्रश्न ही नहीं उठता । मैं इसकी जाँच कर लूँ । यदि मैं कोई निष्कर्ष निकालता हूँ मैं तो देख नहीं सकता । यदि मैं नैतिकतावादी हूँ, यदि मैं सम्माननीय व्यक्ति हूँ या ईसाई या वैदान्तिक हूँ या बौद्ध हूँ या और कुछ हूँ, तब भी मैं अवलोकन नहीं कर सकता । इसलिए मुझे इन सबसे मुक्त होना है । मैं इसका भी निरीक्षण कर रहा हूँ कि कोई निष्कर्ष तो मेरे मन में नहीं है । अतः मन अब असाधारण रूप से स्पष्ट हो गया है और यह कहता है, 'क्या वहाँ कोई भय है ?' मैं इसका निरीक्षण करता हूँ और कहता हूँ 'वहाँ भय है, वहाँ सुरक्षा की कामना है, वहाँ सुख की लालसा है, और इसी प्रकार की अन्य इच्छाएँ हैं ।' मैं यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखता हूँ कि यदि वहाँ कोई निष्कर्ष है, सुख की कोई इच्छा है तो सम्भवतः वहाँ अवलोकन नहीं हो सकता । अतः मैं निरीक्षण कर रहा हूँ और अब मुझे दिखाई देता है कि मैं अत्यन्त रूढ़िवादी हूँ, और यह महसूस करता हूँ कि ऐसा रूढ़िवादी मन अवलोकन नहीं कर सकता । मेरी अवलोकन की गहरी उत्कंठा है और यही उत्कंठा मुझे निष्कर्ष के खतरे भी बताती है । अतः खतरे को देखना ही खतरे को समाप्त करना है । अब मेरा मन भ्रमित नहीं है, इसका अपना कोई निष्कर्ष नहीं है, यह शब्दों के तथा वर्णन के माध्यम से नहीं सोच रहा है । यह तुलना नहीं कर रहा है । ऐसा ही मन अवलोकन कर सकता है और जिसका वह अवलोकन करता है वह भी वही है । इस प्रकार मन में एक महान् क्रांति घटित हो जाती है । तब आप खो जाते हैं—पूर्णतया खो जाते हैं ।

प्रश्नकर्ता : मैं नहीं समझता कि मुझमें वह क्रांति घटित हो गयी है । आज आपने जैसा बताया मैंने उस प्रकार मन का अवलोकन किया । उससे मन अधिक तीक्ष्ण हो गया, लेकिन कल मैं यह सब भूल चुका होऊँगा कि अवलोकन कैसे करूँ ।

कृष्णमूर्ति : श्रीमान्, आप इसे नहीं भूल सकते । क्या आप साँप को भूल सकते हैं ? क्या आप भयंकर खाई को भूल सकते हैं ? क्या आप उस बोतल को भूल सकते हैं जिस पर 'जहर' लिखा है ? आप नहीं भूल सकते हैं । उन सज्जन ने पूछा था कि मैं इस उपकरण को—मन को—कैसे साफ-सुथरा बनाऊँ ? हमने बताया कि इस उपकरण को स्वच्छ बनाने के लिए आवश्यकता इस बात के प्रति सजग रहने की है कि यह मन कैसे मन्द बनता है, कैसे धुँधला होता है ? किस प्रकार अस्पष्ट होता है ? हमने इसका वर्णन किया है कि मन किस तरह से मन्द बनता है और हमने इसके लिए भी सचेत किया है कि आप शब्दों में न फँसें, क्योंकि 'वर्णन' वस्तुतः 'वर्णित' अर्थात् जिसका वर्णन किया गया है—नहीं है । आप तो वर्णित वस्तु के—मन के—साथ रहें जो अवलोकन का उपकरण है, और जिसे मन्द बनाया गया है ।

प्रश्नकर्ता : आपने जिस प्रकार वर्णन किया उसी तरह से यदि हमने स्वयं का अवलोकन किया, तो निश्चित ही कुछ अपेक्षा हम करने लगते हैं ।

कृष्णमूर्ति : मैं किसी रूपान्तरण, बुद्धत्व या उत्क्रमण की अपेक्षा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा हूँ। मैं कुछ भी अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ; क्योंकि मुझे नहीं मालूम कि क्या घटित होनेवाला है। मुझे तो सिर्फ एक ही बात मालूम है कि अवलोकन का उपकरण स्वच्छ नहीं है, वह धुँधला है, खंडित है। मुझे तो केवल इतना ही मालूम है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। और मेरा सरोकार एकमात्र इसीसे है कि यह उपकरण किस प्रकार स्वस्थ एवं समग्र बनाया जाय ?

प्रश्नकर्ता : आप अवलोकन क्यों कर रहे हैं ?

कृष्णमूर्ति : पूरा विश्व जल रहा है और विश्व मैं हूँ। मैं भयानक रूप से बेचैन हूँ, भ्रमित हूँ और कहीं न कहीं कोई व्यवस्था इन सबके बीच अवश्य होगी। इसलिये मैं अवलोकन कर रहा हूँ। लेकिन यदि आप कहें—विश्व बिलकुल ठीक है, आप नाहक इसकी चिन्ता करते हैं, आपका स्वास्थ्य अच्छा है, आपके पास धन है, आपके बीबी-बच्चे हैं, आपका अपना घर है, अतः आप इसकी चिन्ता न करें—तब आपको भले ही लगे कि विश्व सचमुच नहीं जल रहा है, लेकिन वह वस्तुतः जल रहा है। आप इसे चाहें या न चाहें। और इसलिए मैं देखने के लिये विवश हूँ। मैं किसी बौद्धिक अवधारणा के लिये या भावनात्मक उत्तेजना के लिये नहीं देख रहा हूँ अपितु मात्र इस यथार्थ के लिये कि विश्व जल रहा है—युद्ध, घृणा, छल-प्रपंच में वह जल रहा है; वह मूर्तियों तथा झूठे देवी-देवताओं का निर्माण किये जा रहा है। और बाहरी विश्व में जो कुछ घटित हो रहा है उसका दर्शन मुझे आन्तरिक विश्व के अवलोकन के लिए सजग कर रहा है। बाह्य एवं आंतरिक अवस्थाएँ एक ही हैं। वे अविभाज्य हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं मूल विषय पर लौटना चाहूँगा। तथ्य यही है कि मन्द मन यह नहीं समझ पाता कि तुलना से भिन्न होने की चाह पैदा होती है।

कृष्णमूर्ति : नहीं, यह गलत है। अतः मैं भिन्न होना नहीं चाहता। मैं तो सिर्फ इतना देखता हूँ कि उपकरण मंद है। मैं यह नहीं जानता कि उसे कैसे ठीक करूँ। अतः मैं खोजबीन कर रहा हूँ, जिसका यह अर्थ नहीं कि मैं उपकरण को बदलना चाहता हूँ। मैं ऐसा नहीं चाहता।

प्रश्नकर्ता : क्या अवलोकन में किसी भी शब्द का प्रयोग बाधा पैदा करता है ?

कृष्णमूर्ति : शब्द वस्तु नहीं है। अतः यदि आप देख रहे हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दों को एक ओर रख देते हैं तो आपका देखना असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : मुझे लगता है कि मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। जब कोई देखता है तो वह पाता है कि उपकरण के—मन के—दो भाग हैं। एक भाग का संबंध देखने से है और दूसरे का संबंध अभिव्यक्ति से है। इन दोनों भागों को अलग-अलग करना असम्भव है। अतः यह भाषा की समस्या है न कि मंदता की। कठिनाई भाषा को लेकर है, अनुपयुक्त अभिव्यक्ति को लेकर है।

कृष्णमूर्ति : क्या आप यह कहना चाहते हैं कि अवलोकन में दर्शन और अभिव्यक्ति दोनों हैं, ये दोनों अविभाज्य हैं ? इसलिये जब हम देखते हैं तब अभिव्यक्ति भी सुस्पष्ट हो, भाषा की सही समझ हो, दर्शन तथा अभिव्यक्ति कभी भी अलग न हों; दोनों सदैव साथ-साथ चलें। अतः आपका कहना है कि सही शब्दों का उपयोग बहुत जरूरी है।

प्रश्नकर्ता : मैं अभिव्यक्ति के संबंध में कह रहा हूँ, आशय के बारे में नहीं।

कृष्णमूर्ति : मैं समझ रहा हूँ। आप अभिव्यक्ति के बारे में कह रहे हैं। इससे एक और पहलू सामने आता है—वह है कर्म का। अब हमारे सामने तीन पहलू हैं—अवलोकन, अभिव्यक्ति और कर्म। यदि कर्म अभिव्यक्ति तथा अवलोकन नहीं है—अभिव्यक्ति यानी शब्दों में व्यक्त करना—तब विभाजन पैदा होता है। इसलिये क्या देखना ही वस्तुतः करना नहीं है ? देखने में ही कर्म निहित है। जैसे कि जब मैं एक गहरी खाई देखता हूँ तब तत्क्षण कर्म होता है और वह कर्म दर्शन की ही अभिव्यक्ति है। अतः दर्शन तथा कर्म कभी अलग नहीं किये जा सकते। लेकिन आदर्श के बारे में ऐसा नहीं है। वह कर्म से भिन्न है। उन दोनों का अर्थात् आदर्श एवं कर्म का एक होना असम्भव है। यदि मैं आदर्श की मूर्खता का अवलोकन करूँ तो यह मूर्खता का अवलोकन ही प्रज्ञा के कर्म को जन्म देगा। अतः मन की मंदता का निरीक्षण और उसका अवलोकन ही उस मंदता का विसर्जन है, अर्थात् मन को मंदता से मुक्त कर लेना है, और यही कर्म है।

सानन, स्विट्ज़रलैंड, अगस्त 6, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11

देखने की कला

समय के अन्तराल से मुक्त सजगता : बाघ के द्वारा बाघ का पीछा

कृष्णमूर्ति : अवलोकन के यानी देखने के स्वरूप को, तथा उसके सौन्दर्य को समझना बहुत जरूरी है । और यह तब तक संभव नहीं, जब तक हमारा मन किसी भी प्रकार से विकृत है—फिर यह विकृति चाहे रुग्ण चेतना की उकसाहट से या भावुकता से उत्पन्न हुई हो अथवा यह भय, दुःख, बीमारी, महत्त्वाकांक्षा, मिथ्याभिमान तथा सत्ता की लालसा से उत्पन्न हो । यह अवलोकन, श्रवण तथा निरीक्षण की कला अभ्यास द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती और न यह क्रमिक विकास का ही परिणाम है । जब हमारे सामने कोई खतरा उपस्थित होता है तब तत्क्षण क्रिया होती है और हमारा शरीर तथा हमारी स्मृति सहजता से तत्काल प्रतिक्रिया करते हैं । बचपन से ही, खतरे से निपटने के लिये हम पर संस्कार डाले जाते हैं ताकि हमारा मन तत्काल प्रतिक्रिया कर सके । यदि ऐसा नहीं किया गया तो हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं होगा । अब हम पूछ रहे हैं क्या यह सम्भव है कि हम बिना किसी भी विकृति के देख सकें और देखने के साथ ही हमारी क्रिया घटित हो सके ? क्या यह सम्भव है कि मन प्रत्येक विकृति का, बिना किसी विलम्ब के, स्वतंत्रतापूर्वक उत्तर दे सके और इस प्रकार क्रियाशील हो सके ? वस्तुतः दर्शन, कर्म और अभिव्यक्ति तीनों एक ही हैं । वे विभाजित या खंडित नहीं हैं । देखना ही करना है । यह कर्म दर्शन की अभिव्यक्ति है । जब आप भय के प्रति सजग होते हैं, तब आप उसे इतनी आत्मीयता से देखें कि यह 'देखना' ही उससे मुक्ति बन जाय, जो कर्म है । क्या हम आज की सुबह इस विषय में उतरें ? मैं अनुभव करता हूँ कि यह अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्वपूर्ण है। इससे हम अज्ञात की परतों को भेदने में समर्थ हो सकेंगे। लेकिन वह मन जो भय, महत्त्वाकांक्षा, लोभ, निराशा आदि से बुरी तरह लदा है, इस विषय में गहराई से नहीं उतर सकता, क्योंकि इसके लिए असाधारण रूप से स्वस्थ, सक्षम, संतुलित तथा सुसंगत मन की आवश्यकता है।

अतः हमारा प्रश्न है : क्या मन—समग्र मन—किसी भी प्रकार की विकृति के प्रति, या किसी भी संघर्ष अथवा हिंसा के प्रति, पूर्णतया सजग रहकर, उसका अवलोकन कर, उसे तत्क्षण-क्रमिक रूप से नहीं—समाप्त कर सकता है ? इसका अर्थ है—दर्शन तथा कर्म के बीच समय को कतई न आने देना। जब आप खतरा देखते हैं, तब तत्क्षण कर्म होता है। वहाँ दर्शन एवं कर्म के बीच समय नहीं होता।

हमने पहले से ही यह मान रखा है कि हम धीरे-धीरे निरीक्षण और अभ्यास करते-करते प्रज्ञावान् बन सकते हैं, प्रबुद्ध बन सकते हैं। और इसी धारणा के हम आदी बन गये हैं। यही हमारी संस्कृति की मान्यता है, यही हमारा संस्कार है। इसके विपरीत हम कह रहे हैं कि मन को भय तथा हिंसा से धीरे-धीरे मुक्त नहीं किया जा सकता। भय या हिंसा से अपने को धीरे-धीरे मुक्त करने का अर्थ है : और अधिक भय, और अधिक हिंसा।

तो क्या यह सम्भव है कि हम हिंसा को केवल बाहरी विश्व से ही नहीं, अपितु हमारे आन्तरिक विश्व की गहराइयों से भी समाप्त कर दें ताकि हममें न आक्रमण का विचार रहे, न सत्ता पाने की होड़ ? क्या बिना किसी समय के अन्तराल के, केवल अवलोकन द्वारा, हम इस हिंसा से तत्क्षण मुक्त हो सकते हैं ? क्या हम आज की प्रातः इस संबंध में चर्चा करें ? बहुधा हम अवलोकन और कर्म के बीच के अन्तराल में समय को ले आते हैं। 'जो है' और 'जो होना चाहिए' के बीच अवकाश पैदा कर लेते हैं। हमारा स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि हम 'जो हैं' उससे छुटकारा पाना चाहते हैं और 'कुछ विशेष' बनने के लिए जीवनभर भाग-दौड़ करते रहते हैं। अतः आप समय की इस धारणा को अच्छी तरह से समझ लें। हमारा यह स्वभाव इसलिये ऐसा है, क्योंकि बचपन से हमारा पालन-पोषण ही इस प्रकार होता है और 'हम धीरे-धीरे' अन्त में अवश्य कुछ बन जायेंगे' इस प्रकार से सोचने के लिये हम शिक्षित किये जाते हैं। यह ठीक है कि बाहरी विश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तकनीकी दृष्टि से आप समय को आवश्यक मानें क्योंकि बिना कई वर्ष के श्रम के मैं एक उत्कृष्ट मिकैनिक या भौतिकशास्त्री या गणितज्ञ नहीं बन सकता। हाँ, यह सम्भव है कि कोई व्यक्ति-विशेष कम उम्र में भी गणित के प्रश्नों को अधिक स्पष्टता से समझ ले। आप यह भी अनुभव करते हैं कि किसी नयी तकनीक या किसी नयी भाषा को सीखने के लिये स्मृति की बहुत आवश्यकता होती है, जिसके लिये समय चाहिए। मैं एक दिन में जर्मन नहीं सीख सकता। मुझे इसके लिए महीनों श्रम करना पड़ेगा। मैं इलेक्ट्रानिक्स के संबंध में कुछ नहीं जानता और इसे सीखने के लिये मुझे कई वर्ष बिताने होंगे। अतः हमें इस समय की धारणा को ठीक-ठीक समझ लेना चाहिए। समय किसी तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति के लिये तो निश्चित ही आवश्यक है, लेकिन यही समय जब अवलोकन व कर्म के अन्तराल में प्रवेश करता है तब खतरनाक बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्या हम बच्चों के बारे में तथा उनके विकास के बारे में चर्चा करें ?

कृष्णमूर्ति : बच्चों को बड़ा होना है। उन्हें ढेर सारी बातें सीखनी हैं। परन्तु जब उन्हें कोई कहता है—'तुम्हें बड़ा होना चाहिए' तो यह वस्तुतः एक अपमानजनक अभिव्यक्ति है।

प्रश्नकर्ता : श्रीमान्, हममें आंशिक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन तो होता ही है।

कृष्णमूर्ति : निश्चित होता है ! आपको क्रोध आया या अभी आप क्रोध कर रहे हैं और आप स्वयं से कहते हैं—'मुझे क्रोध कतई नहीं करना चाहिये' और यदि आप इस दिशा में प्रयत्न करते चले जाएँ तो आप अपने में आंशिक परिवर्तन ला सकते हैं। तब आप कम क्रोधी, कम चिडचिड़े तथा अधिक नियंत्रित होंगे।

प्रश्नकर्ता : मेरा आशय यह नहीं था।

कृष्णमूर्ति : तो फिर आप क्या कहना चाहती हैं ?

प्रश्नकर्ता : मेरा मतलब यह था कि मुझमें कुछ था और उसे मैंने छोड़ दिया। यह बात दूसरी है कि भ्रम फिर से पैदा हो जाए; लेकिन यह वही नहीं होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : ठीक है । लेकिन क्या भ्रम सदैव वही नहीं होता, भले ही उसमें थोड़ा परिवर्तन हो गया हो ? सातत्य परिवर्तित हो सकता है । आश्रित होने तथा अकेलेपन के दुःख से गुजरकर आप किसी व्यक्ति पर आश्रित होना बन्द कर सकते हैं और आप स्वयं से कह सकते हैं 'अब मैं किसी व्यक्ति पर आश्रित नहीं रहूँगा ।' और यह सम्भव है कि आप उस आश्रय को छोड़ भी दें । और इसलिये आप कहते हैं कि आपमें एक परिवर्तन हुआ । आप फिर दूसरा आश्रय खोजेंगे । लेकिन अगला आश्रय जरूरी नहीं कि पहले जैसा ही हो । तब आप फिर उसमें प्रवेश करेंगे और उसे छोड़ेंगे । इस प्रकार यह शृंखला चलती ही रहेगी । अब हम यहाँ यह पूछ रहे हैं कि क्या इस सम्पूर्ण आश्रित होने की प्रक्रिया से ही अविलम्ब मुक्त हुआ जा सकता है—धीरे-धीरे नहीं अपितु तत्क्षण ? जैसे कि आप किसी खतरे के उपस्थित होते ही तत्काल क्रियाशील हो जाते हैं । सचमुच यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इसलिए हमें इसकी गहराई में प्रवेश करना होगा । हम केवल शाब्दिक चर्चा करके ही न रह जायँ । आप इसमें छिपे अर्थ को समझें । सम्पूर्ण एशिया पुनर्जन्म में विश्वास करता है, जिसका अर्थ है पुनः जन्म लेना, जो आपके पूर्व जन्म में किये गये कर्मों पर आधारित है । यदि आप इस जन्म में क्रूरता, आक्रामकता तथा विध्वंसकता से जीते हैं तो आपको अगले जन्म में इसकी कीमत चुकानी होगी । यह जरूरी नहीं कि आप अगले जन्म में पशु बनें, आपने यदि पुनः मनुष्य-जन्म प्राप्त किया तो वह अधिक पीड़ाकारी और अधिक विनाशकारी होगा, क्योंकि आपने अपना पूर्व जीवन सौन्दर्य के साथ नहीं जिया है । जो व्यक्ति इस पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं उनका विश्वास केवल शाब्दिक है, शब्दों के अर्थ की गहनता में नहीं । आप जो आज करते हैं, उसका कल के लिये, अगले जन्म के लिये अत्यन्त महत्त्व है, क्योंकि आपको उसका फल आगे के जन्म में भोगना होगा । अतः चाहे पूर्व हो या पश्चिम, वहाँ क्रमशः अनेक रूपों की उपलब्धि की मान्यता समान ही है । यह समय की धारणा हमेशा से रही है, जिसका अर्थ है—'जो है' से 'जैसा होना चाहिए' की ओर गति करना । 'जैसा होना चाहिए' की प्राप्ति के लिये समय की आवश्यकता है, जिसका अर्थ है, प्रयत्न करना, एकाग्र होना, ध्यान देना । चूँकि व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान नहीं दे सकता, एकाग्र नहीं हो सकता, अतः वह सतत प्रयत्न करता है, अभ्यास करता है और इसके लिये समय आवश्यक है।

इस समस्या को हल करने का एक बिलकुल ही दूसरा मार्ग निश्चित होगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम अवलोकन को समझें। क्योंकि अवलोकन में देखना और कर्म दोनों समाहित हैं, वे अलग-अलग नहीं हैं। हम साथ ही साथ इस कर्म के प्रश्न की भी छानबीन करें। कर्म यानी करना क्या है ?

प्रश्नकर्ता : एक अन्धा आदमी जो देख ही नहीं सकता, क्रियाशील कैसे हो सकता है ?

कृष्णमूर्ति : क्या आपने कभी अपनी आँखों पर एक सप्ताह तक पट्टी बाँधकर इसका प्रयोग किया है ? हमने यह प्रयोग एक खेल की तरह किया है। तब आपकी संवेदनाएँ, आपकी इन्द्रियाँ अधिक तीक्ष्ण हो जाती हैं। इसके पहले कि आप दीवार या कुर्सी या डेस्क के करीब पहुँचें, आपको पहले से ही उनका बोध हो जाता है। लेकिन हम यहाँ अपने आन्तरिक अन्धेपन के संबंध में चर्चा कर रहे हैं। कर्म क्या है ? क्या कर्म सदैव किसी विचार, किसी सिद्धान्त, किसी विश्वास, किसी निष्कर्ष, किसी आशा या किसी निराशा पर आधारित है ? यदि आपके पास पहले से ही कोई विचार या कोई आदर्श है तो फिर आप उस आदर्श के अनुसार कार्य करेंगे। इस प्रकार कर्म और आदर्श में अन्तराल होगा। यह अन्तराल ही समय है। यह कहकर कि 'मैं उस आदर्श के अनुसार कार्य करूँगा' मैं स्वयं को आदर्श से बाँध लेता हूँ और अन्ततः यही 'आदर्श' कर्म करवाता है। इस प्रकार आदर्श और कर्म दोनों मिल जाते हैं। दोनों में यहाँ अलगाव नहीं होता। यहाँ एक आदर्श है और कर्म स्वयं को आदर्श के समीप पहुँचने का प्रयत्न करता है। ऐसी स्थिति में क्या घटित होता है ?

प्रश्नकर्ता : वहाँ सतत तुलना होती रहती है।

कृष्णमूर्ति : हाँ, वहाँ तुलना के साथ-साथ और भी बहुत कुछ होता है। परन्तु यदि आप अवलोकन करते हैं तो क्या घटित होता है ?

प्रश्नकर्ता : हम वर्तमान की अवहेलना करते हैं।

कृष्णमूर्ति : तब, और क्या होता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नकर्ता : विसंगति ।

कृष्णमूर्ति : यह विसंगति पाखंड को जन्म देती है । मैं क्रोध में हूँ और आदर्श कहता है—'क्रोध मत करो' । फिर मैं क्रोध को दबाता हूँ, नियंत्रित करता हूँ, अनुकरण करता हूँ और आदर्श के अनुसार स्वयं को ढालने का प्रयत्न करता हूँ । इस प्रकार मैं सदैव संघर्ष में रहता हूँ और स्वयं को धोखा देता हूँ । आदर्शवादी व्यक्ति को बहाने बनाने पड़ते हैं । इस 'जो है' और 'जैसा होना चाहिये' में—इस विभाजन में—द्वंद्व है । इसमें और भी कई बातों का समावेश है ।

प्रश्नकर्ता : हम अपने पिछले जीवन की स्मृतियाँ क्यों नहीं जान पाते हैं ? यदि हम उन्हें जान पाते तो हमारा विकास अधिक सरल हो जाता ।

कृष्णमूर्ति : क्या सचमुच ?

प्रश्नकर्ता : हम गलतियों से अपने को बचा लेते ।

कृष्णमूर्ति : पिछले जीवन से आपका क्या तात्पर्य है ? क्या कल का जीवन, चौबीस घण्टे पूर्व का जीवन ?

प्रश्नकर्ता : पिछला जन्म ।

कृष्णमूर्ति : इसका अर्थ हुआ सौ वर्ष पूर्व का जीवन । उसकी स्मृतियों से कैसे हमारा जीना आसान हो जाता ?

प्रश्नकर्ता : हम अपेक्षाकृत अधिक समझ पाते ।

कृष्णमूर्ति : कृपया इसे आप आहिस्ता-आहिस्ता समझें । आपने सौ वर्ष पूर्व जो किया, या जो नहीं किया, जो आपने दुःख सहन किये, उन्हें याद करना चाहते हैं । परन्तु यह कल की बातों को याद करने जैसा ही है । कल आपने बहुत कुछ किया, उनमें से कुछ आप चाहते हैं और कुछ के लिये पश्चात्ताप करते हैं; क्योंकि उन्होंने आपको दुःख दिया, पीड़ा पहुँचाई, निराशा दी । वहाँ ये सारी स्मृतियाँ हैं । और आप हैं कि हजार वर्षों की स्मृतियाँ जानना चाहते हैं । वे समस्त स्मृतियाँ निश्चित रूप से कल जैसी ही हैं । फिर आप कल को, जिसके गर्भ से आज का उदय हो रहा है, छोड़कर पूर्वजन्म को क्यों बुलाना चाहते हैं ? हमें यह कल पसन्द नहीं है क्योंकि हमें लगता है कि हम कुछ 'विशेष' व्यक्ति हैं या हमारे पास विकास के लिये, कुछ बनने के लिये, पुनर्जन्म के लिये, बहुत समय है । क्या आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी इस पर गौर किया है कि वह कौन सी वस्तु है, जिसका पुनर्जन्म होता है ? वह वस्तु है हमारी स्मृति । इसमें कोई बहुत पवित्र या महान् वस्तु हो, ऐसी बात नहीं । आपकी कल की स्मृतियों में से आपके आज का जन्म हो रहा है और कल ही आपके आज को नियंत्रित कर रहा है । आपकी हजारों वर्षों की स्मृतियाँ भी आपके इसी कल और आज के माध्यम से प्रकट हो रही हैं । इस प्रकार अतीत का सतत पुनर्जन्म हो रहा है । कृपया इसे कोई बचाव का मार्ग अथवा चतुर दलील न समझ लें । जब कोई स्मृति का अर्थ व उसकी व्यर्थता समझ लेता है, तब वह कभी पुनर्जन्म की चर्चा न करेगा ।

हम यह पूछ रहे थे, कर्म क्या है ? क्या कर्म कभी मुक्त, सहज और तत्क्षण होता है ? अथवा यह सदैव समय यानी विचार और स्मृति से बँधा होता है ?

प्रश्नकर्ता : मैंने एक बिल्ली को एक चूहा पकड़ते हुए देखा । वह सोचती नहीं है कि यह चूहा है । वह तत्क्षण सहज उसे पकड़ लेती है । मुझे लगता है कि हमें भी उसी प्रकार सहज रूप से क्रियाशील होना चाहिए ।

कृष्णमूर्ति : ऐसा नहीं कि 'हमें करना चाहिए' या 'हमें अवश्य करना चाहिए' । जब हम समय के प्रश्न को मूल रूप से समझ लेते हैं, तब हम कभी ऐसा कहते ही नहीं हैं । हम अपने-आपसे अत्यन्त गहराई से—केवल शाब्दिक या बौद्धिक रूप में नहीं—पूछ रहे हैं, कर्म क्या है ? क्या कर्म सदैव समय से बँधा है ? वह कर्म जो स्मृति से, भय से, निराशा से पैदा होता है, सदैव समय से बँधा होता है । क्या ऐसा कोई कर्म सम्भव है, जो पूर्णतया मुक्त हो—और इसीलिये समय से भी मुक्त हो ?

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं—साँप को देखते ही व्यक्ति तत्क्षण कार्य करता है । परंतु कर्म के साथ साँप भी बढ़ते हैं ? जीवन इतना सरल नहीं है, उसमें केवल एक साँप नहीं, दो-दो साँप हैं । अतः यह गणित की समस्या की भाँति कठिन बन जाता है । तब समय का सवाल उठ खड़ा होता है ।

कृष्णमूर्ति : आपका कहना है, हम बाघों से भरी दुनिया में रहते हैं, जहाँ एक नहीं अपितु मनुष्य रूप में दर्जनों बाघों के साथ संघर्ष करना पड़ता है, जो बड़े क्रूर हैं, हिंसक हैं, ईर्ष्यालु हैं, लोभी हैं । जो अपनी ही खुशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पीछे भागे जा रहे हैं । और ऐसे विश्व में जीने के लिये तथा कार्य करने के लिये समय चाहिये, ताकि आप एक-एक कर सभी बाघों को खत्म कर सकें । मैं स्वयं वह बाघ हूँ, वह मुझमें ही है, मुझमें दर्जन भर बाघ हैं, और आपने बताया कि इन बाघों से एक-एक कर मुक्ति पाने के लिये समय की आवश्यकता है । इसी प्रश्न पर हम साथ मिलकर चर्चा कर रहे हैं । हम यह माने बैठे हैं कि हममें जो साँप हैं, उन्हें एक के बाद एक मारने के लिये समय की आवश्यकता है । 'आप' ही 'मैं' हूँ—अतः आपके समस्त बाघ और समस्त साँप भी 'मैं' ही हूँ । और हम कह रहे हैं, आप इन सभी पशुओं को, जो आपमें हैं, एक-एक कर क्यों मारते हैं ? मुझमें हजारों 'मैं' हैं, सहस्रों साँप हैं और यदि मैं उन्हें एक-एक कर मारता रहूँगा तो इसके पहले कि मैं उन सभी को मार सकूँ, मैं खुद ही मर जाऊँगा ।

अतः क्या ऐसा कोई मार्ग है—कृपया ध्यान से सुनें, उत्तर न दें—जिससे हम इन समस्त साँपों से तत्काल मुक्त हो सकें—धीरे-धीरे नहीं ? क्या मैं इन समस्त साँपों के भयंकर खतरे को, इन विसंगतियों के भीषण परिणामों को देख सकता हूँ और उनसे तत्क्षण मुक्त हो सकता हूँ ? यदि मैं ऐसा नहीं कर सकता तो फिर मेरे लिये कोई आशा नहीं है । मैं चाहे कितने ही बहाने बना लूँ, लेकिन यदि मैं अपने अन्दर के समस्त साँपों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो जाता तो मैं सदा-सदा के लिये गुलाम बना रहूँगा । फिर चाहे मैं एक जन्म लेता हूँ या दस हजार, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा । अतः मुझे अवलोकन का, कर्म का, कोई ऐसा मार्ग खोजना होगा जहाँ देखने के साथ ही हर खतरे का, हर भयानक जानवर का अंत हो जाता है ।

प्रश्नकर्ता : ऐसा ही करें !

कृष्णमूर्ति : नहीं, यह सचमुच एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है । इसके संबंध में 'यह करें', 'वह न करें' कहने से कुछ न होगा । इसके लिये गहरी खोज की आवश्यकता है । आप यह न कहें कि आपको वह मिल गया है, या आप ऐसा करें या वैसा करें । मेरी इनमें कोई रुचि नहीं है । मुझे तो पता लगाना है ।

प्रश्नकर्ता : यदि मैं इसे देख पाता !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : नहीं, कृपया 'यदि' न कहें ।

प्रश्नकर्ता : यदि मुझे कुछ दिख जाय तो उसे मैं शब्दों में व्यक्त करूँ या उसे अपने अन्दर ही रहने दूँ ?

कृष्णमूर्ति : जो आपको एकदम सरल भाषा में कहा गया है उसकी आप पुनरावृत्ति क्यों कर रहे हैं ? जो कहा जा रहा है उसे आप देख क्यों नहीं पा रहे हैं ? हमारे अन्दर अनेक पशु हैं, अनेक खतरे हैं । क्या मैं उन सबको एक क्षण में देखकर उनसे तत्काल मुक्त नहीं हो सकता ? आपने सम्भवतः यह कर लिया हो ! मैं आपसे यह नहीं पूछ रहा हूँ कि आपने यह किया है या नहीं । ऐसा पूछना मेरे लिये अशिष्टता होगी । मैं तो यह पूछ रहा हूँ कि क्या यह सम्भव है ?

प्रश्नकर्ता : कर्म के दो भाग हैं । एक है आन्तरिक, जो तत्काल निर्णय लेने का काम करता है और दूसरा है बाहरी, जिसे समय की आवश्यकता होती है । निर्णय लेने का अर्थ है आन्तरिक कर्म । इन दोनों को जोड़ने में समय की आवश्यकता होती है । यह भाषा की यानी सम्प्रेषण की समस्या है ।

कृष्णमूर्ति : मैं आपकी बात समझ रहा हूँ, श्रीमान् । दो प्रकार के कर्म हैं—एक बाहरी, जो समयसापेक्ष है और दूसरा आन्तरिक है, जिसमें देखना ही करना है । आप पूछ रहे हैं कि किस प्रकार इस आन्तरिक कर्म को—जिसके साथ अवलोकन, निर्णय और तत्क्षण क्रिया जुड़ी है—समय-सापेक्ष बाह्य कर्म के साथ जोड़ा जाए ?

मेरे अनुसार इन्हें जोड़ने की आवश्यकता ही नहीं है । उन्हें परस्पर जोड़ने तथा मिलाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । मैं इसे स्पष्ट देख रहा हूँ । यह सच है और स्पष्ट है कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में, किसी भाषा को सीखने में या किसी भी शारीरिक काम को करने में समय लगता है । परन्तु क्या हमारे आन्तरिक जगत् में समय की आवश्यकता है ? यदि मैं समय के स्वरूप को ठीक तरह से समझ लूँ, तब मैं बाहरी जगत् में इसका सही ढंग से उपयोग कर सकूँगा, लेकिन उसे मैं आन्तरिक जगत् में हस्तक्षेप न करने दूँगा । अतः मैं बाहरी विश्व से प्रारम्भ नहीं कर रहा हूँ, जिसे समय की आवश्यकता है । लेकिन मैं पूछ रहा हूँ, क्या इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्तरिक विश्व में घटित होनेवाले अवलोकन, निर्णय व कर्म में समय की आवश्यकता है ? क्या निर्णय सचमुच जरूरी है, क्योंकि निर्णय समय का ही एक भाग है। यह एक दूरस्थ बिन्दु है। 'मैं निर्णय करता हूँ' कहने में ही समय समाया हुआ है। निर्णय वस्तुतः इरादा और इच्छा पर आधारित है, इसका अर्थ ही है कि यह समयसापेक्ष है। अतः मैं पूछ रहा हूँ यह 'निर्णय' बीच में क्यों आता है ? अथवा यह हमारे संस्कार का ही एक भाग तो नहीं जो कहता है 'आप समय लें' ?

अतः क्या निर्णय की अनुपस्थिति में अवलोकन और कर्म सम्भव है ? जैसे कि, मैं भय के प्रति सजग हूँ, यह भय जो विचार से, अतीत की स्मृतियों से, अनुभवों से उत्पन्न होता है, जो कल की घटनाओं द्वारा आज को प्रभावित किये जाने से पैदा होता है। मैं इस भय को, उसके पूरे स्वरूप और उसके ढाँचे को, उसके आन्तरिक रूप को समझ चुका हूँ। और इसके समग्र दर्शन के साथ ही तत्क्षण कर्म घटित हो जाए और भय समाप्त हो जाए, क्या यह सम्भव है ? कृपया आप इसे एकदम मान न लें। 'ऐसा मैंने किया है' या 'किसी अन्य ने किया है', ऐसा भी न कहें। इसका कोई अर्थ नहीं है। प्रश्न है : क्या यह सम्भव है कि भय उत्पन्न होते ही विसर्जित हो जाए ? अनेक प्रकार के छिछले सांसारिक भय हैं। संसार बाघों से भरा है और ये बाघ, जो मेरे ही अंग हैं, विनाश ढा रहे हैं। अतः मुझमें—जो समग्र बाघ का एक भाग है—तथा अन्य बाघों के बीच युद्ध हो रहा है।

एक और भी भय है जो आंतरिक है। वह है मानसिक असुरक्षा एवं मानसिक अनिश्चितता का भय—जो विचार द्वारा उत्पन्न होता है। विचार वस्तुतः सुख को भी जन्म देता है और भय को भी। मैं यह सब देखता हूँ। मैं भय के खतरे को उसी प्रकार पूर्ण रूप में देखता हूँ, जिस प्रकार कि साँप के भय को अथवा गहरी खाई या नदी के बाढ़ के खतरे को देखता हूँ। और यह देखना ही भय का विसर्जन है, जहाँ निर्णय लेने के लिए क्षणभर के समय के अंतराल की भी लेशमात्र आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी हम किसी भयविशेष को पहचान लेते हैं फिर भी वह भय हमारे साथ बना रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमूर्ति : हमें इसकी छानबीन बड़ी सावधानी से करनी है। सर्वप्रथम तो मुझे भय से मुक्त होने की जल्दी नहीं है। मुझे तो इसे समझना है, इसे प्रकट होने देना है, इसे बहने देना है, इसे सतह पर आने देना है और इसे उभरने देना है। मुझे इसके संबंध में कोई जानकारी नहीं है, सिवाय इसके कि मैं भयभीत हूँ। अब मुझे यह देखना है कि मैं किस स्तर तक, किस गहराई तक भयभीत हूँ। मुझे यह खोजना है कि मैं केवल चेतन मन में भयभीत हूँ या अचेतन मन की गहराइयों में, उसकी जड़ों में, उसकी अज्ञात गुफाओं में भी भयभीत हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह पूरा भय बाहर आ जाए। यह स्वयं को पूर्णतया उघाड़ दे। यह कैसे घटित हो ? इसके लिये मुझे कुछ करना होगा—तत्काल करना होगा—धीरे-धीरे नहीं। आप समझ रहे हैं न ? इस भय का पूर्णतया बाहर आ जाना जरूरी है।

प्रश्नकर्ता : यदि एक हजार बाघ हैं और मैं जमीन पर बैठकर उन्हें देखूँ तो देख नहीं सकता। लेकिन यदि मैं कुछ ऊँचा उठकर देखूँ तो इनसे आसानी से निपट सकता हूँ।

कृष्णमूर्ति : कृपया आप 'यदि' न कहें। यदि मैं आकाश में उड़ पाता तो धरती के सौंदर्य को देख पाता। परन्तु मैं उड़ नहीं सकता। मैं तो यहाँ हूँ। मेरी समझ में इन सैद्धांतिक प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं है और यही बात हम स्पष्टतः नहीं समझ पाते। मैं भूखा हूँ और आप विचारों से मेरी भूख मिटाना चाहते हैं। आपके सामने यह भय है, इसे कृपया आप देखें। हम सभी किसी न किसी प्रकार से भयभीत हैं। हममें गहरे और गुप्त भय भी हैं। हम तो केवल ऊपरी भय से यानी सांसारिक भय, नौकरी छूटने का भय, बीबी-बच्चे को खो देने का भय—से परिचित हैं। इन सभी भय को तो हम अच्छी तरह से जानते हैं। सम्भवतः भय की और भी गहरी परतें हैं। प्रश्न यह है : मन किस प्रकार इन समस्त भय को अविलम्ब उघाड़ दे ? आपका क्या कहना है ?

प्रश्नकर्ता : क्या आप यह कहना चाहेंगे कि हम पशु को अपने अन्दर से सदा-सदा के लिये बाहर निकाल दें, या हमें बार-बार उसका शिकार करना पड़ेगा ?

कृष्णमूर्ति : प्रश्नकर्ता पूछ रहे हैं कि क्या इस पशु को पूर्ण रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा के लिये बाहर निकाल देना संभव है ताकि वह फिर कभी लौटे नहीं। हम भी यही कह रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि आप इस पशु को बार-बार निकालते रहें। हमारे सभी मत-मतांतर, सभी संत, सभी धर्म, सभी मनस्विद् यही कहते आये हैं कि इस पशु को आहिस्ता-आहिस्ता बाहर करें। देखे यह गलत है। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि इस पशु को किस प्रकार तत्क्षण बाहर किया जाये ताकि यह फिर कभी न लौटे। और यदि कभी वह आ भी जाये तो मैं उससे ठीक तरह से निपट सकूँ। उसे घर में पुनः प्रवेश न करने दूँ। आप समझ रहे हैं न ?

प्रश्नकर्ता : अब हम इस पशु को सही नाम दें। इसका नाम है विचार और जब यह पुनः आएगा तब हम उससे ठीक तरह से निपट सकेंगे !

कृष्णमूर्ति : मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूँ। हम इसे देखेंगे। आप सभी बहुत उत्सुक जान पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा ही हमारा जीवन है। हमें उत्सुक रहना है।

कृष्णमूर्ति : मेरा मतलब था कि आप उत्तर देने में बहुत उत्सुक हैं। निश्चित ही हमें अत्यन्त उत्सुक होना होगा। एक अत्यन्त कठिन विषय पर हम चर्चा कर रहे हैं, अतः केवल ढेर सारे शब्दों से काम नहीं चलेगा। हमें सावधानी बरतनी होगी।

प्रश्नकर्ता : वस्तुतः क्यों न हम अभी ही अवलोकन करें ?

कृष्णमूर्ति : यही तो मेरा भी सुझाव है।

प्रश्नकर्ता : यदि मैं आपको देखूँ तो क्या घटित होता है ? पहले मुझे आपकी उपस्थिति का अहसास होता है। कृपया आप मेरी ओर देखें। सर्वप्रथम आपको मेरा दृष्टिगत अहसास होता है। फिर क्या घटित होता है ? तब इस अहसास के बारे में विचार पैदा होता है।

कृष्णमूर्ति : यही बात तो वह महिला कह रही थी। ठीक यही चीज। यह विचार ही पशु है। आप कृपया उस पशु को ही पकड़ें। यह न कहें कि विचार पशु है, या 'अहम्' या 'मैं' पशु है या भय या लोभ या ईर्ष्या पशु है। वस्तुतः यह सभी पशु हैं, जिससे हमें निपटना है। हमने यह देखा कि यह पशु धीरे-धीरे बाहर नहीं निकाला जा सकता। ऐसा करने से वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग-अलग रूपों में बार-बार लौट आता है। यह सब मैं सजगता से देखता हूँ और मुझे स्पष्ट दिखायी देता है कि इस पशु को बार-बार निकालना कितना मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि यह बार-बार निकाले जाने पर भी पुनः पुनः लौट आता है। अतः मैं पता लगाना चाहता हूँ कि क्या इस पशु को पूर्णतय बाहर निकालना सम्भव है, ताकि वह फिर कभी लौट नहीं सके ?

प्रश्नकर्ता : मैं अपने भीतर अनेक व्यापारों को देखता हूँ, जिनकी अलग-अलग गति है। यदि एक व्यापार दूसरे व्यापार का पीछा करता है, तब कुछ घटित नहीं होता। जैसे विचार का भावुकता द्वारा पीछा किया जाना। अतः हमें अपने मन के समस्त व्यापारों को देखना होगा।

कृष्णमूर्ति : आप उसी बात को भिन्न शब्दों में रख रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : आप कुछ कहने जा रहे थे कि बीच में हमने आपका ध्यान दूसरी ओर खींच लिया। आप तब बता रहे थे कि आप भय से मुक्त होने की जल्दी में नहीं हैं।

कृष्णमूर्ति : मैंने कहा था कि मैं इस पशु से मुक्त होना नहीं चाहता। मैं उसे भगाना भी नहीं चाहता। इसके पहले कि मैं अपने हाथ में चाबुक लूँ या मखमली दस्ताने पहनूँ, मुझे यह देख लेना होगा कि यह भगानेवाला कौन है। कहीं ऐसा तो नहीं कि यह स्वयं एक बहुत बड़ा बाघ है जो उसे बाहर निकाल रहा है। अतः मैं स्वयं से कहता हूँ, मैं किसीको बाहर नहीं निकालना चाहता हूँ। कृपया इसके महत्त्व को समझें।

प्रश्नकर्ता : संभवतः इसको बाहर निकालना स्वयं आपका सूली पर चढ़ जाना हो।

कृष्णमूर्ति : नहीं, मैं नहीं जानता। आप धीरे-धीरे आगे बढ़ें। कृपया मुझे स्पष्ट करने दें। मैं कह रहा हूँ कि इसके पहले कि मैं पशु को बाहर निकालूँ, मैं यह देख तो लूँ कि यह निकालनेवाला कौन है। हो सकता है यह निकालनेवाला स्वयं एक बड़ा बाघ हो। यदि मैं सचमुच समस्त बाघों को बाहर निकालना चाहता हूँ तो फिर किसी बड़े बाघ का किसी छोटे बाघ को बाहर निकालने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिये मैंने कहा कि जरा ठहरें, मैं किसीको भी बाहर निकालना नहीं चाहता। कृपया देखें कि मन में क्या घटित हो रहा है। मैं किसी भी बाघ को बाहर नहीं निकालना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहता । मैं तो सिर्फ देखना चाहता हूँ, निरीक्षण करना चाहता हूँ । मैं यह भी स्पष्ट रूप से देखना चाहता हूँ कि कहीं बड़ा बाघ ही छोटे बाघ को तो नहीं निकाल रहा है । यह खेल बड़े बाघ का छोटे बाघ को बाहर निकालने का खेल—सदैव चलता रहता है । जैसा कि सारे विश्व में चल रहा है, एक बड़ा तानाशाह देश दूसरे छोटे देश को कुचले जा रहा है ।

अतः अब मैं अत्यंत सजग हूँ—कृपया इसे समझें—मुझे किसी भी पशु को भगाना नहीं है, उसे हराना नहीं है । इस विचार को—मुझे किसीको बाहर निकालना है, उसे पराजित करना है, उस पर अधिकार जमाना है—समूल उखाड़ फेंकना होगा । क्योंकि यही विचार कल एक बड़ा बाघ बन जायेगा । अतः किसीसे छुटकारा पाने तथा किसीको बाहर निकालने संबंधी समस्त निर्णयों से मुझे मुक्त होना होगा । तभी मैं सही अवलोकन कर सकता हूँ । तब मैं स्वयं से कहता हूँ कि मैं किसीको भी बाहर नहीं निकालूँगा । इस प्रकार मैं समय के बोझ से मुक्त हो जाता हूँ । अब कोई एक बाघ दूसरे बाघ को नहीं निकाल रहा है । यह सब समयसापेक्ष है । अतः मैं स्वयं से कहता हूँ कि मैं बाहर नहीं निकालूँगा, मैं प्रयत्न नहीं करूँगा, मैं निर्णय नहीं करूँगा । मैं तो सबसे पहले अवलोकन करना चाहता हूँ ।

मैं अवलोकन कर रहा हूँ । यहाँ 'मैं' का अर्थ 'अहम्' नहीं है, अपितु मन है, मस्तिष्क है, जो देख रहा है । मैं अब अलग-अलग बाघों को—बाघ की माँ, उसके बच्चे, उसके पति—सबको देख सकता हूँ । मैं उन सभी बाघों को देख सकता हूँ । परन्तु मुझमें और भी बहुत सी गहरी चीजें छिपी हैं, जिन्हें मुझे उघाड़ना है । क्या उन्हें मैं कर्म के द्वारा यानी कुछ करके उघाड़ सकता हूँ ? मैं अधिकाधिक क्रोध करूँ, फिर उसे शांत करूँ और एक सप्ताह के बाद फिर से क्रोध करूँ, और फिर से उसे शांत करूँ ? यह मार्ग ठीक है अथवा इन समस्त बाघों को—बड़े को, छोटे को, अभी-अभी जन्मे हुए को—एक साथ देखने का भी कोई मार्ग है ? क्या मैं इन सभी को इतनी पूर्णता से देख सकता हूँ कि मैं इस पूरे व्यापार को ही तत्क्षण समझ लूँ और इससे मुक्त हो जाऊँ ? यदि मैं यह नहीं कर सकता हूँ तो मेरा पूरा जीवन ही मध्यमवर्गीय मानसिकता में, जटिलता, मूर्खता, और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चालाकी के साथ जीने में बीतेगा । इतना ही मुझे कहना था । इसलिए आपने यदि ठीक-ठीक सुना है, तो प्रातः का प्रवचन समाप्त होता है ।

क्या आप उस गुरु की कथा जानते हैं जो प्रति प्रातः अपने शिष्यों से धर्मचर्चा किया करता था ? एक दिन ज्योंही वह अपने आसन पर बैठा कि एक छोटी सी चिड़िया आती है और खिड़की की देहली पर बैठकर गाने लगती है । गुरु उसे गाने देता है । कुछ समय गाने के बाद वह उड़ जाती है और तब गुरु अपने शिष्यों से कहता है—आज प्रातः का प्रवचन समाप्त हुआ ।

सानन, स्विट्ज़रलैंड, अगस्त 7, 1969

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12

अज्ञात में प्रवेश

दमन, निश्चलता से उत्पन्न कर्म, स्वयं के भीतर यात्रा, झूठी यात्राएँ एवं प्रक्षेपित 'अज्ञात'

कृष्णमूर्ति : पिछले दिन हम चर्चा कर रहे थे कि हम उन समस्त जानवरों के झुंड को कैसे बाहर निकालें जो हमारे भीतर मौजूद हैं। मेरी दृष्टि से इस विषय पर चर्चा करने का उद्देश्य यह था कि हम अज्ञात में प्रवेश कर सकें। कोई भी अच्छा गणितज्ञ हो या भौतिक वैज्ञानिक, आखिरकार वह अज्ञात की खोज करता ही है। यही बात कलाकार के बारे में भी सच है, यदि वह अपनी भावनाओं और कल्पनाओं से बहुत ज्यादा बँधा न हो। और हम साधारण व्यक्तियों को भी अपने दैनिक जीवन की समस्याओं को समझते हुए एक गहरी बोध क्षमता के साथ जीना है। अत: हमें भी अज्ञात में प्रवेश करना है। लेकिन एक ऐसा मन—जो सदैव अपने ही द्वारा आविष्कृत पशुओं, साँपों, बन्दरों, मगरमच्छों को उनके उत्पातों और उनकी विसंगतियों के साथ बाहर करने में लगा है—कभी अज्ञात में प्रवेश नहीं कर सकता। हम साधारण व्यक्ति हैं, हमें प्रकृति ने न तो प्रखर बुद्धिमत्ता दी है और न ही बृहत् दृष्टि दी है; हम नीरसता और कुरूपताभरा छिछला जीवन जी रहे हैं, परन्तु हमारा सरोकार इस बात से है कि हम अपने मौजूदा जीवन में तत्क्षण परिवर्तन कैसे लायें। हम इसी पर चर्चा करेंगे।

लोग नये आविष्कारों, नये प्रभावों, नये विचारों तथा नवीन राजनैतिक परिस्थितियों के साथ बदलते हैं। ये सभी चीजें मानव में एक परिवर्तन की गुणवत्ता लाती हैं। लेकिन हम यहाँ अपने अस्तित्व में एक आमूल और समग्र क्रांति के संबंध में चर्चा कर रहे हैं और यह खोज कर रहे हैं कि क्या यह क्रांति तत्काल लायी जा सकती है या आहिस्ता-आहिस्ता ? कल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम चर्चा कर रहे थे कि यह आहिस्ता-आहिस्ता परिवर्तन क्या है, वहाँ तक पहुँचने की दूरी तथा प्रयत्न और समय के माध्यम से उस दूरी को तय करना। हमने यह भी बताया कि लाखों वर्षों के प्रयत्नों के बावजूद भी मानवो में, कुछ छोड़कर, आमूल और समग्र परिवर्तन क्यों नहीं हो सका। अत: यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि क्या हममें से प्रत्येक व्यक्ति और इस प्रकार पूरा विश्व—क्योंकि विश्व हम हैं और हम ही विश्व हैं, ये दोनों भिन्न अवस्थाए नहीं—तत्क्षण अपने समस्त दुःख, सम्पूर्ण क्रोध, सारी घृणा पूरी की पूरी दुश्मनी और कटुता, जिसका हमी ने निर्माण किया है, अविलम्ब मिटा सकता है। स्पष्टः कटुता एक अत्यन्त सामान्य वस्तु बन गयी है। क्या हम इस कटुता को, इसके समस्त कारणों तथा इसके स्वरूप को समझकर, तत्काल समाप्त कर सकते हैं ?

हमने कहा था कि वह सब अवलोकन से ही सम्भव है। जब मन अत्यन्त गहनता से देखता है, तब यह देखना ही कर्म बन जाता है जो कटुता को समाप्त कर देता है। हमने कर्म के विषय की भी छानबीन की थी, यह पता लगाते हुए कि क्या कोई ऐसा कर्म है जो पूर्णरूप से स्वतंत्र है, सहज है और उत्स्फूर्त है। अथवा वह हमारी स्मृति, हमारे आदर्श, हमारी विसंगति, हमारे आघात तथा हमारी कटुता पर ही आधारित है ? हमने यह भी देखा था कि क्या कर्म सदैव किसी आदर्श, किसी सिद्धांत अथवा किसी ढाँचे के अनुरूप होता है। और हमने यह भी बताया था कि ऐसा कर्म वस्तुत: कर्म नहीं है, क्योंकि यह 'जो है' और 'जैसा होना चाहिए' में विसंगति पैदा करता है। जब आपके सामने कोई आदर्श होता है तब आप 'जो है' और आपको 'जैसा होना चाहिए' में एक दूरी होती है जिसे आप तय करके अपने आदर्श तक पहुँचना चाहते हैं। इस आदर्श तक—'जैसा होना चाहिए' तक यानी उस परम यूटोपिया तक—पहुँचने में वर्षों लग सकते हैं और बहुतों के अनुसार तो उसे प्राप्त करने में अनेक जन्म बीत जाते हैं। हमने यह भी देखा था कि कल का पुनर्जन्म आज के माध्यम से हो रहा है, फिर चाहे वह कल पिछले लाखों वर्षों तक फैला हुआ हो या पिछले चौबीस घंटे तक सीमित हो। और यह तब तक होता रहेगा जब तक हमारा कर्म समय के तल पर अर्थात् अतीत, वर्तमान और भविष्य पर आधारित है। भविष्य यानी जैसा होना चाहिए। यह सब हमारे जीवन में विसंगति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वंद्व और दु:ख पैदा करता है। अत: हम इसे 'कर्म' नहीं कहेंगे। अवलोकन में ही कर्म है। बल्कि अवलोकन ही कर्म है, जैसे कि आपने कोई खतरा देखा कि उस देखने के साथ तत्क्षण कर्म घटित होता है। हमने इन सभी बातों पर कल चर्चा की थी।

यह कर्म—तत्क्षण घटित होनेवाला कर्म—तब घटित होता है जब कोई महान् संकट, कोई महान् चुनौती या कोई महान् दु:ख उपस्थित होता है। तब हमारा मन क्षणभर के लिये असाधारण रूप से शांत हो जाता है, उसे एक झटका-सा लगता है। मुझे नहीं मालूम कि आपने कभी यह अनुभव किया है या नहीं। जब आप संध्या के समय अथवा प्रात: सूर्योदय के समय किसी पर्वत को, उस पर पड़नेवाले प्रकाश को, उसकी परछाइयों को, उसकी अनन्तता, उसकी गरिमा तथा उसकी गहन एकान्तता को देखते हैं, तब आपका मन—जो इस अनन्त सौन्दर्य को अपने भीतर नहीं समा पाता—एकदम स्तब्ध और शांत हो जाता है। परन्तु थोड़े ही समय में वह इस स्तब्धता से बाहर आता है और पुन: अपने पूर्व संस्कारों के अनुसार अपनी व्यक्तिगत समस्याओं तथा अन्य चुनौतियों का उत्तर देने लग जाता है। इस प्रकार हमने देखा कि क्षणभर के लिए मन शांत अवश्य हो जाता है, परन्तु वह उस परम निश्चलता को बनाये नहीं रख पाता। किसी जबरदस्त आघात के द्वारा ऐसी निश्चलता उत्पन्न की जा सकती है। हममें से अधिकांश व्यक्तियों को यह बोध है कि जब प्रचण्ड आघात होता है, तब मन एकदम निश्चल हो जाता है। ऐसी निश्चलता या तो किसी बाहरी घटना से उत्पन्न की ज़ा सकती है या फिर किसी कृत्रिम प्रयोग से लायी जा सकती है, जैसे कि ज़ेन सम्प्रदाय में असम्भव प्रश्नों की शृंखला से मन को शांत कर दिया जाता है। मन को इस प्रकार जोर-जबरदस्ती से शांत करने के लिए और भी कई काल्पनिक अवस्थाएँ हैं, तरीके हैं, लेकिन ये सभी निश्चित रूप से बचकाने और छिछले हैं। हमारा कहना है कि उस मन के लिये, जो सही अर्थों में अवलोकन की कला जानता है, उसके लिये यह अवलोकन स्वयं कर्म है। अवलोकन के लिये यह अत्यावश्यक है कि हमारा मन एकदम निश्चल हो। अन्यथा वह देख नहीं सकता। यदि मैं सचमुच आप जो कह रहे हैं, उसे सुनना चाहता हूँ तो यह जरूरी है कि मैं मौन होकर सुनूँ। यदि उस समय मेरा मन इधर-उधर भटकता रहे, आप जो कह रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी व्याख्या करता रहे, प्रतिरोध करता रहे, तो निश्चित ही मैं आपको वस्तुत: नहीं सुन पाऊँगा ।

अत: जो मन सुनना या निरोक्षण करना या अवलोकन करना चाहता है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह असाधारण रूप से निश्चल रहे । यह निश्चलता किसी आघात से अथवा मन को एकदम लीन कर देनेवाले किसी विचार से सम्भवत: नहीं लायी जा सकती । यह ऐसा ही है जैसे कि एक बच्चा तब तक शांत रहता है, खेलता रहता है, जब तक कि अपने खिलौने में खोया हुआ है । वस्तुत: वह बच्चा शांत नहीं है, लेकिन खिलौने ने उसे अपने में लीन कर लिया है, उसे शांत कर दिया है । मन के निश्चल होने के लिए किसी ड्रग के सेवन करने अथवा किसी कृत्रिम साधन के उपयोग का अर्थ है किसी अपेक्षाकृत बड़ी वस्तु में फिर चाहे वह कोई सुन्दर चित्र हो, उत्कृष्ट मूर्ति हो या कोई मोहक कल्पना हो, खो जाना, लीन हो जाना । हमारा मन एकदम शांत और निश्चल तभी हो सकता है जब वह समस्त विसंगतियों, विकृतियों, विपर्यासों, भय तथा समस्त संस्कारों को समझ लेता है । हम पूछ रहे हैं : क्या ये समस्त भय, सम्भ्रम, दु:ख आदि क्षणभर में समाप्त किये जा सकते हैं ताकि मन अवलोकन करने के लिये तथा स्वयं के भीतर प्रवेश करने के लिए शांत हो ?

क्या कोई सचमुच यह कर सकता है ? क्या वास्तव में आप स्वयं को पूर्ण मौन के साथ देख सकते हैं ? जब तक हमारा मन चंचल है, तब तक वह जो भी देखेगा—उसे अपनी व्याख्या में ढालकर या यह कहकर कि मैं इसे चाहता हूँ, 'उसे नहीं चाहता हूँ'—विकृत कर देगा । इस प्रकार मन भयंकर रूप से उत्तेजित और भावुक हो जाता है । और वह किसी भी वस्तु को उसके यथार्थ रूप में नहीं देख सकता ।

अत: हम पूछ रहे हैं : क्या हम जैसे साधारण व्यक्ति यह कर सकते हैं ? क्या मैं स्वयं को जैसा भी मै हूँ उसी रूप में देख सकता हूँ ? क्या भय तथा कटुता जैसे शब्दों के खतरे को जानते हुए और यह समझते हुए कि वे अवलोकन में रुकावट डालते हैं, मैं यथार्थ का अवलोकन कर सकता हूँ ? क्या मैं भाषा की कमियों और सीमाओं के प्रति सजग रहते हुए अवलोकन कर सकता हूँ ? क्या यह सम्भव है कि मेरे अवलोकन में समय का किंचित् मात्र भी हस्तक्षेप न हो, कहीं पहुँचने की तमन्ना न हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसीसे छुटकारा पाने की कोई इच्छा न हो । बस, केवल देखना हो— शांति से, तत्परता से, सावधानता से देखना । ऐसी गहन सावधानता की अवस्था में ही मन के गुप्त मार्ग, उसकी अज्ञात परतें दृष्टिगोचर होने लगती हैं । उस अवस्था में किसी भी प्रकार का विश्लेषण नहीं होता, वहाँ तो विशुद्ध अवलोकन है । विश्लेषण समय-सापेक्ष है और वह विश्लेषक और विश्लेषित का द्वंद्वं खड़ा कर देता है । क्या विश्लेषक उससे भिन्न है जिसका विश्लेषण किया गया है ? और यदि ऐसा नहीं है तो फिर विश्लेषण का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता । अत: हमें इन सभी के प्रति सजग रहना होगा और समय, विश्लेषण, प्रतिरोध, कहीं पहुँचने की महत्त्वाकांक्षा, किसीको पराजित करने की इच्छा, आदि को परे कर देना होगा; क्योंकि ये ही वे द्वार है जहाँ से दु:ख का आगमन होता है ।

यह सब सुनने के बाद क्या सचमुच इस प्रकार देख सकते हैं ? यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है । कृपया आप यह न पूछें कि यह कैसे करें ? कोई भी व्यक्ति न तो आपको इसका कोई मार्ग बता सकता है और न ही आपको इसके लिये आवश्यक शक्ति दे सकता है । अवलोकन के लिये चाहिये प्रचण्ड ऊर्जा और एक निश्चल मन ही प्रचण्ड ऊर्जा का भण्डार है, क्योंकि वहाँ ऊर्जा का कोई अपव्यय ही नहीं होता । यह ऊर्जा का अपव्यय ही है जिससे मन निश्चल नहीं हो पाता । क्या आप अपने-आपको इस समग्र ऊर्जा के साथ इतनी पूर्णता से देख सकते हैं कि यह देखना ही कर्म बन जाए और उसका अंत भी ?

प्रश्नकर्ता : क्या आपका प्रश्न उतना ही असम्भव नहीं है ?

कृष्णमूर्ति : क्या सचमुच यह एक असम्भव प्रश्न है ? यदि सचमुच ही यह प्रश्न आपको असम्भव लगता है तो फिर आप यहाँ क्यों बैठे हैं ? क्या केवल एक व्यक्ति की आवाज सुनने के लिये, निकट बहते हुए झरने की ध्वनि सुनने के लिए, इन पर्वतों में, पहाड़ियों में, इन हरे-भरे मैदानों में मजे से छुट्टियाँ बिताने के लिए ? आखिर आप यह क्यों नहीं कर सकते ? क्या यह सचमुच ही बहुत कठिन है ? क्या इसके लिए अत्यन्त चतुर मन की आवश्यकता है ? अथवा ऐसा तो नहीं कि आपने कभी सचमुच अपना निरीक्षण ही नहीं किया है, अत: आपको यह असम्भव लगता है ? श्रीमान्, जब आपका घर जल रहा हो, तब कुछ करना ही होता है । तब आप यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कहते, 'यह असम्भव है', 'मेरा इसमें विश्वास नहीं', 'मैं इस संबंध में कुछ नहीं कर सकता'। तब आप यह कहकर बैठ नहीं जायेंगे कि मैं इसे जलता हुआ देखूँगा। आपके सामने जो यथार्थ है, उसके संबंध में आपको कुछ करना ही होगा और यथार्थ यह है कि आपका घर जला जा रहा है। यह हो सकता है कि फायरब्रिग्रेड के पहुँचने के पहले आप आग को पूर्णतया न बुझा सकें, लेकिन आपको आग बुझाने के लिए कुछ करना तो अवश्य होगा।

अतः जब आप यह कहते हैं कि यह प्रश्न उतना ही कठिन है जितना कि किसी छोटी-सी बोतल में एक बत्तख को घुसाना—तो इसका अर्थ ही यह हुआ कि आपको पता नहीं कि आपका घर जल रहा है। आप इस बात के प्रति सजग क्यों नहीं हैं कि आपका घर जल रहा है ? इस घर का अर्थ है विश्व और विश्व का अर्थ है आप ! आप ही विश्व हैं—क्या आप अपने असन्तोष तथा अन्य ढेर सारी बातों में, जो आपके अन्दर तथा आपके चारों ओर घटित हो रही हैं, नहीं जल रहे हैं ? यदि आप इन सभी बातों के प्रति सजग नहीं है, तो इसका कारण क्या है ? क्या इसलिए कि आप इतने होशियार नहीं हैं या इसलिए कि आपने असंख्य पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं अथवा इसलिए कि आप इतने संवेदनशील नहीं हैं कि आप अपने अन्दर तथा अपने चारों ओर घटनेवाली घटनाओं के प्रति सजग रह पाएँ। यदि आप यह कहते हैं, 'मुझे अफसोस है कि मैं सजग नहीं हूँ' तो आप स्वयं से पूछें कि आप सजग क्यों नहीं हैं ? जब आपको भूख लगती है अथवा जब आपका कोई अपमान करता है, तब तो आप सजग हो उठते हैं। उस समय आप बहुत सजग हो उठते हैं जब कोई आपकी चापलूसी करता है या जब आपको अपनी कामवासना तृप्त करनी होती है। लेकिन आप यहाँ कह रहे हैं कि आप सजग नहीं हैं। इसके लिए कोई क्या करे ? क्या आप किसीके द्वारा उत्तेजित अथवा प्रोत्साहित किये जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ?

प्रश्नकर्ता : आप उत्परिवर्तन की बात करते हैं और कहते हैं कि इसका आगमन तभी हो सकता है जब हम अपने विचारों और इच्छाओं का क्षण-क्षण निरीक्षण करें। मैने एक बार यह किया भी, पर उससे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आप जैसा कह रहे हैं यदि वैसा ही हमने किया, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हमें वह स्थायी रूप से मिल जाएगा अथवा उसके लिये हमें प्रतिदिन, नियमित रूप से अभ्यास करना होगा ?

कृष्णमूर्ति : यह अवलोकन, जो स्वयं कर्म है, केवल एक ही बार अंतिम रूप से करना होगा अथवा इसे प्रतिदिन करना होगा ? आप क्या सोचते हैं ?

प्रश्नकर्ता : मेरे विचार से यह संगीत सुनने के बाद किया जा सकत है ।

कृष्णमूर्ति : इस प्रकार संगीत भी किसी मादक द्रव्य की भाँति आवश्यक बन जाता है और फिर संगीत इस मादक द्रव्य से कहीं ज्यादा सम्माननीय भी है । प्रश्न यह है : क्या आप प्रतिदिन, प्रति मिनट, अवलोकन करें अथवा एक ही दिन इतनी पूर्णता से अवलोकन कर लें कि सब कुछ का अंत हो जाए ? यदि आप एक बार किसी वस्तु को पूर्णता से देख लेंगे तो फिर हमेशा के लिए क्या सो जाएँगे, असजग हो जाएँगे ? आप प्रश्न समझ रहे हैं न ? श्रीमान्, आप सो नहीं सकते, आपको तो प्रतिदिन, प्रतिक्षण, अवलोकन करना होगा । आपको अपने अपमानों तथा अपनी खुशामदों के प्रति, अपने क्रोध तथा अपनी निराशा के प्रति, सजग रहना होगा । आपको हर क्षण अपने भीतर तथा अपने बाहर घटनेवाली समस्त घटनाओं के प्रति सजग रहना होगा । आप यह नहीं कह सकते कि बस, अब मैं पूर्णत: संबुद्ध हो गया, अब दुनिया की कोई वस्तु मुझे छू नहीं सकती ।

प्रश्नकर्ता : किसीने आपका अपमान किया, आपमें इसकी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई और उस क्षण आपने इसका अवलोकन करने का तथा समझने का प्रयास किया कि क्या घटित हुआ—तो ऐसा करके क्या आप उस प्रतिक्रिया का दमन नहीं कर रहे हैं ? अन्तर इतना ही है कि आपने प्रतिक्रिया को प्रकट करने के बजाय उसका अवलोकन किया । क्या अवलोकन प्रतिक्रिया का दमन नहीं हो सकता है ?

कृष्णमूर्ति : इस संबंध में काफी विस्तार के साथ चर्चा की गयी है । क्या नहीं की गयी है ? मान लीजिये, मैं किसी व्यक्तिविशेष को नहीं चाहता, मैं आपको नहीं चाहता और इस 'नहीं चाहने की प्रतिक्रिया' का निरीक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हूँ। अब यदि मैं बड़ी सजगता से इस प्रतिक्रिया का निरीक्षण करूँ तो यह स्वयं को उभाड़ने लगेगी, मेरे संस्कारों को, मेरी संस्कृति को, जिसमें मैं पाला-पोसा गया हूँ, उद्घाटित करने लगेगी। यदि मैं और भी निरीक्षण करता चला जाऊँ, और सो न जाऊँ तो मन इन उद्घाटित वस्तुओं का निरीक्षण करेगा, जिससे मन की अज्ञात परतें प्रकट होने लगेंगी। इसमें दमन का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि मेरी रुचि तो मन में जो घटित हो रहा है, उसके अवलोकन करने में है, न कि प्रतिक्रियाओं से छुटकारा पाने में। मेरी दिलचस्पी तो यह मालूम करने में है कि क्या मन देख सकता है ? क्या यह इस 'मेरे' के स्वरूप को, इस 'अहम्' को, इस 'मैं' को, देख सकता है ? अत: इस अवलोकन की अवस्था में दमन का अस्तित्व ही नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी मुझे निश्चलता की अवस्था का अनुभव होता है। क्या उस निश्चलता से कर्म उत्पन्न हो सकता है ?

कृष्णमूर्ति : क्या आप यह पूछ रहे हैं कि उस निश्चलता को कैसे टिकाये रखा जा सकता है ? उसे कैसे सँजोये रखा जा सकता है और सतत बनाये रखा जा सकता है ?

प्रश्नकर्ता : क्या मैं अपने दैनंदिन कार्य को भी साथ-साथ कर सकता हूँ ?

कृष्णमूर्ति : क्या इसी मौन में से हमारे दैनिक जीवन के कार्य हो सकते हैं ? आप सभी इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि मैं इसका उत्तर दूँ। आपने 'देववाणी' के भयानक कार्य से मेरा संबंध जोड़ दिया है। मैं मंच पर बैठा हूँ, इसका यह अर्थ नहीं कि मैं प्रामाण्य बन गया हूँ। प्रश्न यह है : क्या एक निश्चल मन रोजमर्रा के जीवन में कार्य कर सकता है ? यदि आप-अपने रोजाना के जीवन को इस निश्चलता से अलग कर देते हैं, तो फिर ये कभी मिल न सकेंगे। क्या मैं इन दोनों को अलग-अलग रख सकता हूँ ? क्या मैं यह कह सकता हूँ कि यह मेरा रोजाना का जीवन है और यह मौन है—जिसका मैंने अनुभव किया है, जिसका अहसास किया है। क्या आप उस मौन को अपने रोजाना के जीवन में उतार सकते हैं ? आप ऐसा नहीं कर सकते। लेकिन यदि ये दोनों अलग-अलग नहीं हैं—दाहिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ और बायाँ हाथ—और इन दोनों में अर्थात् मौन और रोजाना के जीवन में पूर्ण सामंजस्य है, पूर्ण एकता है, तब आप कभी यह न पूछेंगे, क्या मैं मौन कर्म कर सकता हूँ ?

प्रश्नकर्ता : आप तीव्र सजगता, तीव्र अवलोकन एवं तीव्रता से देखने की बात के संबंध कह रहे हैं । क्या ऐसा कहा जा सकता है कि जो चीज मुख्य रूप से इसे संभव बनाती है वह है, तीव्रता का हमारा स्तर ?

कृष्णमूर्ति : आप निश्चित रूप से तीव्र हैं और आपमें वह गहरी, बुनियादी तीव्रता है—क्या आपका प्रश्न यह है ?

प्रश्नकर्ता : हम इस चीज तक बड़ी उत्कटता के साथ आते हैं, स्वयं इसकी खातिर नहीं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक प्राथमिक आवश्यकता है ।

कृष्णमूर्ति : जो कि हमारे पास पहले से ही है । यही न ?

प्रश्नकर्ता : है भी और नहीं भी ।

कृष्णमूर्ति : श्रीमान्, हम क्यों इतनी सारी बातें मान लेते हैं ? क्या यह सम्भव नहीं कि बिना कुछ जाने यात्रा करें और खोजें ? क्या आप यह बिना जाने कि 'अच्छा क्या है', 'बुरा क्या है', 'गलत क्या है', 'सही क्या है', 'क्या होना चाहिए', 'क्या अवश्य ही होना चाहिए', स्वयं के भीतर यात्रा कर सकते हैं ? बिना किसी भी प्रकार के भार के आतंरिक यात्रा करना अत्यन्त कठिन है और ज्योंही आप यात्रा आरम्भ करते हैं, त्योंही पता लगाने लगते हैं । यात्रा के आरम्भ करने के पूर्व आप यह नहीं कहते—'यह नहीं होना चाहिए', 'यह होना चाहिए' । क्या यह हमें सचमुच अत्यन्त कठिन लगता है ? मुझे नहीं मालूम ऐसा क्यों है ? कृपया देखें । कोई भी व्यक्ति, जिसमें वक्ता भी शामिल है, आपकी सहायता नहीं कर सकता । विश्व में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसमें हमें आस्था रखनी है और मुझे आशा है कि आप किसी में भी आस्था नहीं रखते । ऐसा कोई प्रामाण्य नहीं है, जो आपको यह बता सके, 'यह सही है', 'इसे करना चाहिए', 'आप इस दिशा में जाएँ', 'उस दिशा में नहीं जायँ', 'इसमें अमुक-अमुक जगह त्रुटियाँ हैं', 'उन्हें इस प्रकार दूर करें' आदि । आपको अकेले ही यात्रा करनी है । क्या आप यह कर सकते हैं ? आप कहते हैं—मैं यह नहीं कर सकता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि मैं भयभीत हूँ । तब आप भय को ही लें और उसी की जाँच-पड़ताल करें और उसे पूर्णतया समझें । तब आप यात्रा को भूल जायँ, प्रामाण्य को भूल जायँ । आप तो इस सम्पूर्ण भय की ही छानबीन करें । क्योंकि आपको सहारा देनेवाला कोई नहीं है । कोई भी व्यक्ति आपका मार्गदर्शन करनेवाला नहीं है । क्या आपको इस बात का डर है कि कहीं आपसे गलती न हो जाय ? आप गलती करें और उस गलती का अवलोकन करके ही आप तत्क्षण उससे बाहर निकल आयेंगे ।

आप इस प्रकार पता लगाते हुए आगे बढ़ें । इसमें महान् सृजन है, जो चित्र बनाने, पुस्तकें लिखने अथवा स्टेज पर आकर बोलने की कला से कहीं ज्यादा बढ़कर है । उसमें महानृतर उत्तेजना है, उसमें महानृतर..........

प्रश्नकर्ता : उल्लास का बोध है ?

कृष्णमूर्ति : ओह ! शब्द की आपूर्ति न करें ।

प्रश्नकर्ता : यदि दैनिक जीवन द्रष्टा निर्मित किये बिना बिताया जाय तो फिर कोई भी चीज मन के मौन को खंडित नहीं कर सकती ।

कृष्णमूर्ति : यही तो समस्या है । द्रष्टा सदैव कुछ न कुछ चालबाजी करता रहता है । यह हमेशा अपना प्रभाव डालता रहता है और इस प्रकार और ज्यादा समस्याएँ पैदा किये चला जाता है । हम पूछ रहे हैं, क्या आप और मैं दोनों कुछ भी साथ न ले जाते हुए, कुछ भी न जानते हुए, साथ-साथ यह आंतरिक यात्रा कर सकते हैं ? क्या अपनी कामवासनाओं, लालसाओं तथा इरादों का पता लगाते हुए हम आगे बढ़ सकते हैं ? यह एक प्रचंड साहसपूर्ण कार्य है—चाँद की यात्रा से भी ज्यादा साहसपूर्ण ।

प्रश्नकर्ता : यहाँ एक समस्या है, चाँद के यात्रियों को यह ज्ञात था कि वे कहाँ जा रहे हैं । उन्हें यात्रा पर जाने के पूर्व यात्रा की दिशा का ज्ञान था; परन्तु आन्तरिक यात्रा में कोई दिशा ही नहीं है ।

कृष्णमूर्ति : सज्जन का कहना है कि चन्द्रमा तक पहुँचना वस्तुगत है; हम जानते हैं कि हमें कहाँ जाना है । लेकिन इस आंतरिक यात्रा में हम नहीं जानते हैं कि हम किधर यात्रा कर रहे हैं ? अतः इस यात्रा में भय और असुरक्षा है । यदि आप यह जानते हैं कि आप कहाँ जा रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो आप कभी अज्ञात में प्रवेश नहीं कर पायेंगे और इस प्रकार आप वस्तुत: वह व्यक्ति कभी नहीं बन पायेंगे जो यह पता लगाता है कि शाश्वत क्या है।

प्रश्नकर्ता : क्या गुरु की सहायता के बिना समग्र तथा तत्क्षण प्रत्यक्ष बोध हो सकता है?

10318

कृष्णमूर्ति : इसी विषय पर तो हम चर्चा करते रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : हमने पिछले प्रश्न पर पूरी तरह से चर्चा नहीं की। यह एक समस्या है क्योंकि हम जानते हैं कि हम कहाँ जा रहे हैं; हम सुख को भी पकड़े रहना चाहते हैं; हम वस्तुत: अज्ञात को नहीं चाहते।

कृष्णमूर्ति : हाँ, हम सुख के दामन को पकड़े रहना चाहते हैं। हम उन वस्तुओं को पकड़े रहना चाहते हैं, जिन्हें हम जानते हैं और उन्हींके साथ यात्रा करना चाहते हैं। क्या कभी आप पहाड़ पर चढ़े हैं? जितना ज्यादा बोझ आपके साथ होगा उतना ही आपके लिए चढ़ना कठिन होगा। यहाँ की इन छोटी पहाड़ियों पर चढ़ना भी कठिन हो जाएगा यदि आपके साथ भारी सामान है। अत: आपको यदि पहाड़ पर चढ़ना है तो आपको और भी ज्यादा हल्का होना होगा। मैं सचमुच नहीं समझ पा रहा हूँ कि कठिनाई क्या है। हम अपने साथ वे सारी वस्तुएँ ले जाना चाहते हैं जिन्हें हम जानते हैं—हमारे अपमान, हमारे प्रतिरोध, हमारी मूर्खताएँ, हमारी खुशियाँ, हमारे हर्षोल्लास, इत्यादि। जब आप यह कहते हैं—'मैं यह सब साथ लेकर यात्रा पर निकल रहा हूँ' तब आपकी यात्रा किसी दूसरी दिशा में हो रही है, न कि उन चीजों में जिन्हें आप ढो रहे हैं। अत: आपकी यात्रा काल्पनिक होगी, अवास्तविक होगी। उचित यह होगा कि आप उन्हींमें प्रवेश करें जिन्हें आप अपने साथ ढो रहे हैं यानी आपकी ज्ञात वस्तुएँ, उनमें नहीं जो अज्ञात हैं। आप तो उनमें प्रवेश करें जो आपको पहले से ज्ञात हैं—आपके सुख, आपकी खुशियाँ, आपकी निराशाएँ, आपके दुःख। आप उनके भीतर यात्रा करें, वे ही तो आपके पास हैं। लेकिन आप कहते हैं—"मैं इन सबके साथ अज्ञात की ओर यात्रा करना चाहता हूँ और अज्ञात को तथा उसके समस्त सुखों और खुशियों को ज्ञात के साथ जोड़ देना चाहता हूँ।" अथवा यह इतना भयानक हो सकता है कि आप कहें, "मैं ऐसा करना नहीं चाहता।"

सानन, स्विट्जरलैंड, अगस्त 8, 1969

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Acc		
		19.6.99
		19.6.99
		19.6.99
ing		24/6/99
E.A.R		
Any other		19.6.99
Checked		19.6.99

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरुड़ अपनी उड़ान में कोई भी चिह्न नहीं छोड़ता, जब कि वैज्ञानिक छोड़ता है। स्वतंत्रता के प्रश्न को गहराई से समझने के लिये दोनों जरूरी हैं—एक ओर वैज्ञानिक परीक्षण तथा दूसरी ओर गरुड़ की उड़ान—एक ऐसी उड़ान जो अपने पीछे कोई चिह्न न छोड़े।

प्रश्नकर्त्ता : इस विश्व में आप हमसे किस कार्य की अपेक्षा करते हैं ?

कृष्णमूर्ति : सर्वप्रथम मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं आपसे कोई अपेक्षा नहीं करता। दूसरी बात, आप जिएँ, इस विश्व में जी भर कर जिएँ। यह विश्व बड़ा अद्‌भुत है, बड़ा सुन्दर है यह हमारा विश्व है, यह हमारी पृथ्वी है, यह हम सबके जीने की जगह है, किन्तु हम जीते नहीं। हम क्षुद्र हैं, हम विभाजित हैं, हम चिन्तित हैं, हम भयभीत इन्सान हैं और इसीलिये हम न सही अर्थों में जीते हैं और न सही अर्थों में सम्बन्धित हैं। हम अलग-थलग, निराश मानव हैं। हम नहीं जानते कि अपरिमित आनन्द और उल्लास के अर्थों में जीने का क्या मतलब है ? मेरे देखे वही व्यक्ति इस प्रकार जी सकता है जो अपनी समस्त नासमझियों से मुक्त होना जानता है और यह तभी सम्भव है जब हम अपने समस्त सम्बन्धों में—केवल मानवों के साथ के ही नहीं अपितु विचारों के साथ के, प्रकृति के साथ के, विश्व की प्रत्येक वस्तु के साथ के—पूर्णतया सजग हों।

मूल्य : पचास रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar